प्रकाशक
ज्ञानलोक दारागंज,
प्रयाग

प्रथमावृत्ति
मूल्य १॥

मुद्रक
गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव,
हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग

महाभारत

द्रोणपर्व

(द्रोणाभिषेक पर्व)

अध्याय १-७

कर्ण की सलाह से द्रोण सेनापति

जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायनजी बोले—'भीष्म के गिरने के समाचार से, धृतराष्ट्र को बड़ा शोक हुआ। वे विलाप कर रहे थे, इसी समय सञ्जय युद्ध स्थल से आये। धृतराष्ट्र ने उनसे युद्ध के समाचार पूछे। सञ्जय बोले—'भीष्म के शरशैया पर सो जाने के बाद कौरव सेना में बड़ी विशृङ्खलता उत्पन्न हो गई। पाण्डवों से बचने के लिए सभी वीरवर कर्ण को पुकारने लगे। कर्ण ने प्रतिज्ञा की थी कि भीष्म के रहते मैं युद्ध न करूँगा। भीष्म के गिरने तथा सबके अनुरोध करने पर कर्ण युद्ध के लिए तैयार हुए। उन्होंने पहले जाकर भीष्म से युद्ध के लिए आज्ञा ली। फिर वे कौरव सेना में आकर युद्ध की व्यवस्था करने

लगे। दुर्योधन ने उनसे पूछा कि किसे सेनापति बनाना उचित तथा हितकर होगा। कर्ण ने कहा कि कौरव सेना में सेनापति के पद के लिए उपयुक्त अनेकानेक योद्धा मौजूद हैं। किन्तु ऐसा न हो कि एक के सेनापति बनाये जाने पर दूसरे डाह के मारे उसके अधीन रहकर ठीक से युद्ध न करें। अन्त में कर्ण की सलाह से दुर्योधन ने गुरु द्रोणाचार्य को विधिवत सेनापति बनाया। सभी इससे प्रसन्न हुए। द्रोण ने सेनापति बनकर युद्ध के लिए सेना का व्यूह बनाया। उधर से भी व्यूह बनाया गया। यथा समय दोनों सेनाएँ आमने-सामने आ युद्ध करने लगीं।

अध्याय ८-१६

श्री कृष्ण का गुण-गान, युधिष्ठिर को पकड़ने की प्रतिज्ञा

सञ्जय बोले—'सेनापति पद पर अभिषिक्त होकर महाबली द्रोण ने कौरव सेना की रक्षा करते हुए भीषण संग्राम किया और पाण्डव दल के अनेकानेक वीरों को तथा एक अक्षौहिणी सेना को मार कर अन्त में वे मारे गये।'

द्रोण का निधन सुनकर धृतराष्ट्र बहुत व्याकुल और चिन्तित हुए। वे अनेक प्रकार से विलाप करते हुए बार-बार मूर्छित हो भूमि पर गिरने लगे। अन्त में उन्होंने

विलाप करते हुए कहा—'महापराक्रमी, अनन्तवीर्यशाली, सर्वगुणसंपन्न भगवान श्रीकृष्णजी पाण्डवों की ओर हैं। लड़कपन में श्रीकृष्णजी का लालन-पालन गोपों के यहाँ हुआ है। उन्होंने बाल्यावस्था में ही मायावनी राक्षसी-पूतना; उच्चैःश्रवा के समान वेग तथा बलशाली केशी; छली शकटासुर; दुर्द्धर्ष धेनुकासुर; दुष्टशिरोमणि अरिष्टासुर; उपद्रवी ऋषभ (वृष रूपी राक्षस); कामरूपी प्रलम्बासुर आदि को खेलते-खेलते सहज में नष्ट किया था। समुद्र-वासी पञ्च, अजेय कंस, जम्भ, नरकासुर, महाबली पीठासुर, यम सदृश मुर आदि को मार कर भूभार उतारा है। उन्होंने दुर्वासा ऐसे महाक्रोधी को प्रसन्न कर अमोघवर प्राप्त किया है। अनेक प्रसिद्ध वीर राजाओं को हरा, गांधार राज कन्या को हर कर उन्होंने उसके साथ विवाह किया है। उन्होंने सबके देखते-देखते अद्वितीय वीर शिशुपाल का वध किया है। उन्होंने सभी देशों के राजाओं को अकेले हराया है। देवलोक में देवगण सहित इंद्र को हराकर वे पारिजात को उखाड़ लाये थे। संसार में जिन्हें कोई नहीं हरा सकता, वे ही श्रीकृष्ण जब पाण्डवों की ओर हैं तब मेरे पुत्रों का कल्याण नहीं है। यदि पाण्डव हार भी गये तो सर्व-शक्तिमान श्रीकृष्णजी स्वयं शस्त्र धारण कर सेना सहित मेरे पुत्रों को नष्टकर पाण्डवों को पृथ्वी का राज्य दे

देंगे । श्रीकृष्ण और अर्जुन अभिन्न हृदय हैं । इस कारण अब मेरे पुत्रों की रक्षा का कोई उपाय नहीं है । खैर ! अब तुम विस्तार से द्रोणाचार्य के निधन का वर्णन करो ।'

सञ्जय बोले—'सेनापति बनाये जाने पर द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से कहा कि मैं तुम्हारा क्या प्रिय कार्य करूँ ?' दुर्योधन ने आपस में सलाह करके उनसे वर माँगा कि आप युधिष्ठिर को जीवित ही पकड़ लाइये । द्रोण ने प्रसन्न होकर कहा कि युधिष्ठिर बड़े भाग्यशाली हैं जो तुम उनकी मृत्यु नहीं चाहते, वरन् उन्हें जीवित पकड़वाना चाहते हो, वे सचमुच अजातशत्रु हैं । दुर्योधन ने कहा कि मैं केवल इसी कारण युधिष्ठिर को जीवित पकड़वाना चाहता हूँ कि उनको विवश कर उनसे जुआ खेलूँ तथा उन्हें हरा कर फिर दीर्घकाल के लिए वन में भेजूँ और इस प्रकार निष्कंटक राज्य करूँ, क्योंकि यदि वे मारे गये तो महावीर अर्जुन हम लोगों को जीवित न छोड़ेगा, इससे युधिष्ठिर का मारा जाना हमारे लिए हितकर नहीं है । खिन्न हो द्रोण ने वर दिया कि यदि अर्जुन बाधा न देंगे तो मैं अवश्य ही युधिष्ठिर को जीवित पकड़ लाऊँगा ।

'उधर जासूसों द्वारा यह समाचार पाण्डवों के पास तुरंत पहुँच गया । अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि मैं किसी तरह भी द्रोण की इस प्रतिज्ञा को पूरी न होने दूँगा । इसके

अनन्तर घमासान युद्ध प्रारंभ हुआ। दोनों दल के योद्धा भीषण युद्ध करने लगे। लहू की नदियाँ बह चलीं। अन्त में सिंहसेन, व्याघ्रदत्त आदि अनेक वीर राजाओं को मार कर द्रोणाचार्य युधिष्ठिर के पास जा पहुँचे। कौरव सेना यह कहकर प्रसन्नता से चिल्लाने लगी कि अब आचार्य द्वारा युधिष्ठिर पकड़े गये और युद्ध बन्द हुआ। युधिष्ठिर को संकट में देख अर्जुन दौड़ पड़े और अपने बाणों से द्रोण तथा कौरवों को उन्होंने विह्वल कर दिया। अर्जुन की मार न सह सकने के कारण कौरव सेना विचलित हो गई। इसी बीच में सूर्यास्त हो गया। दोनों सेनाएँ युद्ध बन्दकर अपने-अपने स्थानों को लौट गईं।

संशप्तक वधपर्व

अध्याय १७-३२

संशप्तकों से युद्ध, भगदत्त, नील आदि का नाश

सञ्जय बोले—'द्रोणाचार्य ने लज्जित होकर दुर्योधन से कहा कि जब तक अर्जुन सेना में रहेंगे तब तक युधिष्ठिर को पकड़ना सम्भव नहीं है, क्योंकि श्रीकृष्ण तथा अर्जुन को कोई नहीं जीत सकता, ऐसा उपाय करना

चाहिए कि अर्जुन कहीं अन्यत्र चले जायँ। आचार्य के वचन सुनकर सब रणक्षेत्र से अर्जुन के हटाने का उपाय सोचने लगे। अन्त में त्रिगर्त देश के राजा सुशर्म्मा ने कहा कि हम अर्जुन को युद्ध के लिए ललकार कर यहाँ से दूसरे स्थान पर ले जायँगे और वहाँ उन्हें मार डालेंगे। इस बात को सब ने मान लिया। सुशर्म्मा तथा संशप्तकगण ने अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अर्जुन ने उनसे युद्ध करना स्वीकार कर लिया। युधिष्ठिर ने द्रोण की प्रतिज्ञा का स्मरण दिला कर अर्जुन को रोकना चाहा, किन्तु अर्जुन ने उत्तर दिया कि सत्यजित तथा अन्य योद्धागण आपकी रक्षा करेंगे, कौरव किसी प्रकार भी आपको छू तक न सकेंगे। युधिष्ठिर ने प्रतिज्ञा पालन का विचार कर अर्जुन को संशप्तकगण से युद्ध करने के लिए सहर्ष विदा किया। कुरु-क्षेत्र से दूर अर्जुन और संशप्तकगण का घोर युद्ध हुआ।

इधर सवेरा होने पर द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को पकड़ने के लिए घोर युद्ध प्रारम्भ किया। यह देख युधिष्ठिर बहुत घबराये। तब धृष्टद्युम्न ने उन्हें यह समझा कर धीरज बंधाया कि मेरे रहते द्रोणाचार्य आपको नहीं पकड़ सकेंगे। फिर उन्होंने अभेद्य व्यूह रचकर उसके बीच में युधिष्ठिर को रक्खा और भीषण वेग से द्रोण पर आक्रमण किया।

द्रोण ने हजारों महारथियों, वृक, सत्यजित, विराट के भाई शतानीक, दृढ़सेन, क्षेम, क्षत्रवर्मा, सुदक्षिण आदि अनेकानेक महारथी योद्धाओं को मार गिराया। यह देख पाण्डवों की ओर के अनेक वीर द्रोण की ओर झपटे। कौरव दल के अनेकानेक योद्धाओं ने पाण्डव दल के विभिन्न योद्धाओं का सामना कर उन्हें द्रोणाचार्य के पास जाने से रोका। भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ। भीम ने दुर्योधन के अनेक भाइयों को तथा कौरव दल के बहुत से वीरों को मार गिराया। यह देख राजा भगदत्त ने अपने विशाल-काय हाथी के द्वारा पाण्डव सेना पर आक्रमण किया और बड़े-बड़े वीरों को मार गिराया। भगदत्त के हाथी ने सात्यकि को रथ सहित फेंक दिया, भीम को रोकना चाहा और अनेक वीरों को मार डाला। भगदत्त ने भी अस्त्रशस्त्रों के द्वारा पाण्डव सेना को विचलित कर डाला।

'यह देख, श्रीकृष्णजी की सहायता से अर्जुन ने संशप्तकगण को नष्ट कर तथा सुशर्मा को मूर्छित कर आगे बढ़ भगदत्त का सामना किया। भगदत्त ने अर्जुन से भीषण युद्ध किया और उन पर वैष्णवास्त्र चलाया। श्रीकृष्णजी ने उस अस्त्र को अपनी छाती पर रोक लिया। अर्जुन बच तो गये पर उन्हें बड़ा खेद हुआ कि मेरे कारण श्रीकृष्णजी अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर युद्ध करते हैं। तब श्रीकृष्णजी ने

समझाते हुए कहा—'मैंने पृथ्वी के कहने से उसके पुत्र नरकासुर को वैष्णवास्त्र दिया था। नरकासुर से यह अस्त्र भगदत्त को प्राप्त हुआ। यह अस्त्र अमोघ है। मुझे छोड़ कर और दूसरा कोई इस शस्त्र से बच नहीं सकता। इसी कारण तुम्हारी रक्षा के लिए मैंने इस अस्त्र को अपने ऊपर ओढ़ा है।' श्रीकृष्णजी के वचनों से प्रोत्साहित होकर अर्जुन ने भगदत्त को हाथी सहित मार गिराया। फिर उन्होंने शकुनि के भाइयों का संहार किया। शकुनि ने माया-युद्ध द्वारा अंधकार प्रकट कर सबको व्याकुलकर दिया। किन्तु अन्त में अर्जुन के बाणों की मार के सामने न टिक सकने के कारण वह रणभूमि छोड़कर भाग खड़ा हुआ। फिर उधर से लौट कर अर्जुन ने बचे हुए संशप्तकों का संहार किया। इधर अश्वत्थामा ने महावीर राजा नील को युद्ध में मार गिराया। पाण्डव सेना विचलित हो उठी। इसी समय संशप्तकों का संहार कर अर्जुन लौट आये और घोर बाणवर्षा द्वारा कौरव सेना को विचलित कर दिया। कर्ण ने आगे आकर उन्हें रोका। किन्तु कर्ण के देखते-देखते अर्जुन ने उसके अनेक भाइयों को तथा हज़ारों वीरों को नष्ट कर डाला। दोनों ओर के असंख्य वीर मारे गये। अन्त में संध्या समय युद्ध रोककर दोनों सेनाएँ अपने-अपने स्थान को चली गईं।

अभिमन्युवध पर्व

अध्याय ३३-५०

चक्रव्यूह भेद अभिमन्यु का अनेक महारथियों द्वारा मारा जाना

सञ्जय बोले—'सवेरा होने पर दुर्योधन ने द्रोणाचार्य से कहा कि यदि आप सावधान होकर पराक्रम दिखलायँ तो इन्द्र भी आपके सामने नहीं ठहर सकते, पाण्डवों की तो बात ही कितनी है; आप ने युधिष्ठिर को पकड़ लाने का वचन दिया था, अब अर्जुन का मोह छोड़कर आप उसे पूरा कीजिये। दुर्योधन के कथन से खिन्न होकर द्रोणाचार्य ने परम अभेद्य चक्र (पद्म) व्यूह की रचना की। इधर बचे हुए संशप्तकगण युद्ध के लिए ललकार कर अर्जुन को अलग ले गये और उनसे युद्ध करने लगे। चक्रव्यूह बनाकर द्रोण आदि ने पाण्डवों की सेना को युद्ध में विचलित कर दिया। हजारों वीरों का संहार देख भीम, धृष्टद्युम्न आदि ने कौरवों के व्यूह को भंग करने की अनेक प्रकार से चेष्टा की, किन्तु कोई भी व्यूह तोड़ने में सफल न हुआ। तब यह जानकर कि केवल अभिमन्यु ही चक्रव्यूह को तोड़ना जानते हैं, युधिष्ठिर ने उनसे व्यूह तोड़ने का अनुरोध किया। अभिमन्यु रूप तथा अस्त्र-शस्त्र-विद्या में अर्जुन के, पराक्रम में भीम के, नीति तथा गुणों

में श्रीकृष्ण जी के, नम्रता में नकुल के, शास्त्र ज्ञान में सहदेव के समान थे। उन्होंने कहा कि जब मैं माता के उदर में था तभी पिता ने मुझे इस व्यूह के तोड़ने की कला बतला दी थी, किन्तु मैं इसमें से निकलने का उपाय नहीं जानता। युधिष्ठिर ने कहा कि मैं, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, भीम आदि सभी वीर तुम्हारे साथ रहेंगे, तुम एक बार व्यूह को तोड़ दो, तो हम सब उसमें प्रवेश करके शत्रुओं को नष्ट करेंगे। अभिमन्यु ने सबके कहने से भीषण युद्ध कर हज़ारों वीरों को काट द्रोणाचार्य के सामने ही व्यूह को तोड़ डाला और उसके भीतर प्रवेश किया। अभिमन्यु की मार से घबरा कर कौरव सेना भागने लगी। यह देख दुर्योधन अभिमन्यु के सामने आकर युद्ध करने लगा, किन्तु अभिमन्यु के बाणों ने उसे जर्जरित कर दिया। दुर्योधन के प्राण संकट में देख द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, शकुनि आदि अनेक वीर अभिमन्यु को घेरकर उनपर नाना प्रकार के अस्त्र, शस्त्र की वर्षा करने लगे। किन्तु अभिमन्यु ने सब के अस्त्र-शस्त्रों को काटकर अपने बाणों से सबको घायल और विकल कर दिया तथा सबके देखते-देखते शल्य के छोटे भाई को, राजा अश्मकेश्वर को, कर्ण के भाई को, दुर्योधन के पुत्र राजकुमार लक्ष्मण को, कोशलेश्वर बृहद्बल को, मगधराज

के पुत्र को तथा अन्यान्य हज़ारों राजाओं और राजकुमारों एवं वीरों को मार गिराया। अनेक वार कर्ण, दुःशासन, दुर्योधन, शकुनि, शल्य आदि ने अभिमन्यु से युद्ध किया और उन्हें हर बार हार कर अभिमन्यु के सामने से भागना पड़ा।

'जिस स्थान पर अपने पराक्रम से व्यूह को तोड़ कर अभिमन्यु कौरव सेना में घुसे थे उसी स्थान पर जयद्रथ ने आकर फिर से मोर्चेबन्दी कर दी और अपने पराक्रम से भीम, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, सात्यकि आदि को अभिमन्यु के पीछे जाने से रोक दिया। भीम आदि ने बड़ा प्रयत्न किया, किन्तु जयद्रथ के कारण पाण्डव दल का कोई भी वीर अभिमन्यु की सहायता के लिए व्यूह के अन्दर न जा सका। जयद्रथ ने घोर तपस्या कर शिवजी से पाण्डवों को हराने का जो वर प्राप्त किया था वह आज सफल हुआ, सबको परास्त कर वह उन्हें व्यूह के बाहर ही रक्खे रहा।'

'इधर व्यूह के अन्दर अकेले अभिमन्यु ने अपने पराक्रम से कौरव दल के सभी महारथियों के छक्के छुड़ा दिए। अपने पुत्र लक्ष्मण के मारे जाने पर दुर्योधन बहुत ही कुपित हुआ। उसने कर्ण आदि से झुंझला कर कहा कि दुष्ट अभिमन्यु को मारने के लिए हम सब को मिलकर एक साथ प्रयत्न करना चाहिए। कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा आदि छः

महारथियों तथा अनेकानेक वीरों ने एक साथ आक्रमण किया। द्रोणाचार्य ने कहा कि जब तक अभिमन्यु के हाथ में धनुष रहेगा और वह रथपर सवार रहेगा तब तक उससे इन्द्र भी नहीं जीत सकते। द्रोण के कहने से कर्ण ने अभिमन्यु का धनुष काट डाला, भोज ने घोड़ों को मार डाला, कृप ने सारथी का संहार किया। फिर सब ने मिल कर उस धनुपहीन, रथ-रहित बालक पर एक साथ मिलकर चारों तरफ से अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा की। अभिमन्यु ने निडर होकर सब का सामना किया। वे ढाल-तलवार लेकर शत्रुओं का संहार करने लगे। तब द्रोण ने तलवार को और कर्ण ने ढाल को काट डाला। तब अभिमन्यु ने चक्र से शत्रुओं का संहार करना प्रारम्भ किया। कुछ देर बाद महारथियों ने चक्र को भी काट डाला। तब अभिमन्यु ने गदा लेकर युद्ध करना प्रारम्भ किया और सैकड़ों योद्धाओं को गदा से मार गिराया। किन्तु महारथियों के अस्त्र-शस्त्र की चोटों से उनका प्रत्येक अंग छिद गया था। दुःशासन के पुत्र के साथ गदा-युद्ध करते हुए वे मूर्छित होकर गिर पड़े, इसी समय दुःशासन के पुत्र ने उनके मस्तक पर जोर से गदा का प्रहार किया। वीर अभिमन्यु के प्राण निकल गए। इस प्रकार कौरव दल के छः प्रसिद्ध महारथियों तथा अनेक योद्धाओं ने मिलकर वीर अभिमन्यु

का संहार किया। अभिमन्यु के गिरते ही सन्ध्या समय युद्ध बन्द हुआ। उस दिन के भीषण युद्ध में वीर अभिमन्यु के द्वारा काटे गए वीरों, हाथियों, घोड़ों आदि से रण भूमि पट गई थी और खून की नदियाँ बह चली थीं।

अध्याय ५१-७१

मृत्यु की उत्पत्ति; अकम्पन, शिवि, भागीरथ आदि की कथा

सञ्जय बोले—'अभिमन्यु की मृत्यु से पाण्डवों को बड़ा दुःख हुआ। युधिष्ठिर उनके गुणों का वर्णनकर तथा यह कहकर कि अर्जुन को हम लोग किस तरह से मुँह दिखायेंगे, जोर-जोर से विलाप करने लगे। उनको दुखी देख व्यासदेव प्रकट हुए और उन्हें समझाकर कहने लगे—'अभिमन्यु वीरगति को प्राप्त हुए हैं, इस कारण उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। जो जन्म लेता है वह मरता अवश्य है। विधाता के इस नियम को कोई नहीं टाल सकता। प्राचीन समय में अकम्पन नामक राजा का पुत्र युद्ध में मारा गया था। पुत्र-शोक से व्याकुल अकम्पन को समझाते हुए देवर्षि नारद ने कहा कि तुम्हारा शोक करना उचित नहीं है। ब्रह्माजी ने सृष्टि के संहार के लिए ही आदि काल में मृत्यु को उत्पन्न किया था। पहले ब्रह्माजी

ने सृष्टि की रचना की। अधिक उत्पत्ति होते रहने के कारण पृथ्वी का बोझ बहुत बढ़ गया। ब्रह्माजी को बड़ी चिन्ता हुई। भू-भार हलका होते न देख उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। उनके क्रोध से उत्पन्न होकर अग्नि तीनों लोक के प्राणियों को जलाने लगी। सब को कष्ट में देख शिवजी ने समझा-बुझाकर ब्रह्माजी को शान्त किया। ब्रह्माजी ने अपने क्रोध को अपने में लीन कर लिया। सृष्टि को भस्म करने वाली अग्नि शान्त हो गई। किन्तु ब्रह्माजी का क्रोध एक विचित्र स्त्री के रूप में प्रकट हुआ। उसे देख कर ब्रह्मा जी ने उसे मृत्यु के नाम से पुकारा और उससे प्रजा का संहार करने को कहा। स्त्री ने रोकर ब्रह्माजी से कहा कि मुझसे सृष्टि का संहार न हो सकेगा, क्योंकि यह बहुत ही क्रूर कर्म है। फिर उसने जाकर अनेक तीर्थों में घोर तप किया। ब्रह्माजी ने उसे जाकर समझाया कि तुम जगत के कल्याण के लिए मेरी आज्ञा मानकर सृष्टि का संहार करना आरम्भ करो। तुम्हें इसमें न तो पाप ही लगेगा और न तुम्हारी निन्दा ही होगी। लोभ, क्रोध, असूया, ईर्ष्या, द्रोह, मोह, कठोर वचन आदि प्राणियों के शरीर को क्षीण करते रहेंगे और तुम्हारे आँसू नाना प्रकार के रोग बन कर तुम्हारी सहायता करेंगे। ब्रह्माजी के शाप के डर से मृत्यु ने उनकी बात मान ली। तभी

से मृत्यु के द्वारा सभी प्राणियों को संहार होने लगा। विधि का विधान समझ कर मृत-प्राणी के लिए शोक करना व्यर्थ है। नारदजी के समझाने से राजा अकम्पन ने अपने पुत्र के लिए शोक करना छोड़ दिया। हे युधिष्ठिर! महा पराक्रमी अभिमन्यु के लिए शोक करना व्यर्थ है। इस संसार में एक-से-एक बढ़कर गुणवान और प्रतापी राजा हुए हैं, किन्तु मृत्यु ने किसी को भी नहीं छोड़ा। पूर्व समय में शैव्य के पुत्र सृञ्जय नामक बड़े प्रतापी राजा थे। एक दिन देवर्षि नारद और देवर्षि पर्वत सृञ्जय के पास बैठे थे। उसी समय राजा की परम सुन्दरी कन्या वहाँ आई। उसे देखकर दोनों महर्षियों का मन चंचल हो उठा। नारद ने राजा से कहा कि तुम इस कन्या को मुझे दे दो। राजा कन्या को देने के लिए तैयार हो गये। यह देख देवर्षि पर्वत ने कहा कि मैं अपने मन में इस कन्या को अपनी पत्नी बना चुका हूँ, तुमने मेरे कार्य में विघ्न डाला, इस कारण तुम स्वर्ग न जा सकोगे। नारद ने क्रोधित होकर कहा कि केवल मन से वरण कर लेने से ही कोई किसी को अपनी पत्नी नहीं बना सकता। तुमने अन्याय पूर्वक मुझे शाप दिया इस कारण तुम मेरे बिना स्वर्ग न जा सकोगे। राजा ने दोनों को शान्त कर अपने महल में रक्खा। कुछ समय

बाद ब्राह्मणों के कहने से नारदजी ने राजा सृञ्जय को ऐसा प्रतापी पुत्र दिया जिसके मल, मूत्र, थूक, कफ, पसीना आदि सभी स्वर्ण हो जाते थे। पुत्र का नाम स्वर्णष्ठीवी पड़ा। उस पुत्र के कारण राजा को इतना स्वर्ण प्राप्त हुआ कि उन्होंने दीवाल आदि तक स्वर्ण की बनवाई। यह जान कर कि उस पुत्र के कारण ही राजा को इतना अधिक स्वर्ण प्राप्त होता है, डाकुओं का एक दल उसे उठा ले गया और स्वर्ण प्राप्त करने की इच्छा से उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। पुत्र की मृत्यु से राजा को बहुत दुःख हुआ। उन्हें दुखी देख नारद ने कहा कि इस सृष्टि का कोई भी प्राणी मृत्यु से बच नहीं सकता, एक-न-एक दिन सभी को मरना पड़ता है। पूर्वकाल में अविक्षित के महाप्रतापी पुत्र मरुत्त को मृत्यु के मुख में जाना पड़ा था। राजा मरुत्त इतने प्रतापी थे कि देवगण तक उनकी आज्ञा का पालन करते थे और शिवजी के कृपा से सोने का पर्वत प्राप्त कर उन्होंने ऐसा यज्ञ किया था जिसमें सभी छोटे-बड़े पदार्थ सोने के ही बनाये गये थे। इसी प्रकार महादानी, पृथ्वी भर को जीतनेवाले महाराज सुहोत्र भी मृत्यु से नहीं बच सके थे। उनके राज्य में मगर, मछली, कछुआ आदि सभी सोने के थे। सुहोत्र ने हजार अश्वमेध, सौ राजसूय तथा अनेक अन्य प्रकार के यज्ञ किए थे। पुरुवंशीय महादानी राजा अंग,

असंख्य गोदान करने वाले महाराज शिवि; रावण ऐसे पराक्रमी का नाशकर धर्म से प्रजा को पालने वाले भगवान् रामचन्द्र; गंगाजी को पृथ्वी पर लानेवाले दृढ़-प्रतिज्ञ राजा भगीरथ; पृथ्वी मंडल को दान करने वाले दिलीप; देव, दानव और तीनों लोकों को जीतकर सैकड़ों अश्वमेध और राजसूय यज्ञ करने वाले मान्धाता; देवासुरसंग्राम में देवताओं की सहायता करने वाले राजा ययाति; दस लाख वीरों को अकेले हरानेवाले तथा अपरिमित दक्षिणा देने वाले अम्बरीष; अपने धन, धान्य, रथ, हाथी, दासी, घोड़ों सहित लाखों पुत्रों को दान करने वाले राजा शशिविन्दु; यज्ञ में स्वर्ण की वेदियों को दान करने वाले तथा सौ वर्ष तक केवल यज्ञ से बचे हुए अन्न को ग्रहण करने वाले महाराज गय; प्रति दिन लाखों स्वर्ण के सिक्के दान करने वाले राजा रन्तिदेव; लड़कपन में ही सिंहों को पकड़कर खेलने वाले तथा युवावस्था में हजारों अश्वमेध एवं राजसूय यज्ञ करने एवं हजारों स्वर्ण के बने हुए कमलों को दान करने वाले महाराज भरत; पृथ्वी को दुहकर प्रजा को यथेष्ट पदार्थों को देने वाले तथा स्वर्ण के साठ हजार हाथी बनवाकर दान करने वाले महाराज पृथु आदि सभी को मृत्यु के मुख में जाना पड़ा है। मृत्यु से कोई भी नहीं बच सकता। इस कारण मृत प्राणी के लिए शोक

करना व्यर्थ है। नारद जी के समझाने से राजा सृञ्जय का पुत्र-शोक दूर हो गया। फिर नारद जी ने अपने योग बल से राज के पुत्र को जीवित कर दिया। इसका कारण यह था कि वह राज-पुत्र न तो युद्ध ही में मारा गया था और न उसने यज्ञ, तप, दान आदि के द्वारा अपने जीवन को कृतार्थ ही किया था। पुत्र को पाकर राजा सृञ्जय बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पुत्र के साथ अनेक धर्मानुष्ठान कर शान्ति प्राप्ति की। हे युधिष्ठिर! अभिमन्यु ने तो अपने जीवन में बहुत से शुभ कर्म किये हैं और युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त की है। वे चन्द्र-लोक में सुख भोग रहे हैं। उनके लिए शोक करना व्यर्थ है।'

युधिष्ठिर को समझाकर व्यासदेव अन्तर्धान हो गए। युधिष्ठिर का मोह तो दूर हो गया किन्तु वे इस सोच में पड़ गए कि अर्जुन के आने पर मैं उनसे क्या कहूँगा।

प्रतिज्ञापर्व

अध्याय ७२-८४

अर्जुन का शोक और जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा, पाशुपतास्त्र

सञ्जय बोले—'संशप्तक गणों को नष्ट कर अर्जुन लौटे। रास्ते में अनिष्ट-सूचक उत्पात देख उन्हें बड़ी चिंता

हुई। शिविर में सब को शोक-मग्न देख उन्हें बड़ी शंका हुई। उन्होंने मन-ही-मन विचार किया कि यदि मैं सर्व गुणसम्पन्न, महापराक्रमी पुत्र अभिमन्यु को न देख सकूंगा तो मैं अपने प्राणों को न रखूँगा। शिविर में जाकर उन्हें जब यह मालूम हुआ कि अभिमन्यु वीरगति को प्राप्त हुए हैं तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने बड़ा विलाप किया। इस प्रकार बार-बार विलाप कर मूर्छित होते देखकर श्रीकृष्णजी ने उन्हें अनेक प्रकार से समझा कर शान्त किया। युधिष्ठिर ने उन्हें विस्तार से सारा हाल बतलाया। जयद्रथ को अभिमन्यु की मृत्यु का कारण समझ कर अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं कल सूर्यास्त के पहले जयद्रथ का वध न कर लूँगा तो अग्नि में जल कर अपने प्राण दे दूँगा।

'अर्जुन की इस प्रतिज्ञा को सुनकर जयद्रथ बहुत भयभीत हुआ। उसने युद्ध से भाग, अपने देश में जाकर छिपने का विचार किया। तब दुर्योधन, कर्ण, द्रोणाचार्य आदि ने उसे समझाकर शान्ति किया और प्रतिज्ञा की कि हम सब मिलकर अर्जुन से तुम्हारी रक्षा करेंगे। द्रोण ने प्रतिज्ञा की कि मैं ऐसा व्यूह रचूंगा जिसे अर्जुन भेद न सकेंगे। द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा को सुनकर जयद्रथ शान्त हुआ। इस भय से कि कहीं अर्जुन रात ही में युद्ध प्रारम्भ

न कर दें कौरव उसी समय युद्ध के लिए तैयार गए।'

'इधर जासूसों द्वारा श्रीकृष्ण जी को जब यह मालूम हुआ, तो उन्होंने अर्जुन को सलाह दी कि तुम ऐसा उपाय सोचो जिसमें कर्ण आदि महारथियों के सामने तुम्हें नीचा न देखना पड़े। अर्जुन ने कहा कि आप मेरे पराक्रम को तो जानते ही हैं, मैं इन महारथियों को सहज में ही हरा सकता हूँ, केवल आप मुझे सफलता दिलाने का उपाय कीजिये।

'वह रात श्रीकृष्ण और अर्जुन ने जागकर काटी। नर-नारायण को कुपित जानकर इन्द्रादि देवगण को तथा कौरव पक्ष के वीरों को बड़ी चिन्ता हुई। सभी शंकित थे कि न जाने क्या घटना घटे। अभिमन्यु के लिए सुभद्रा, उत्तरा, द्रौपदी आदि बहुत विलाप कर रहीं थीं। किसी तरह से समझा-बुझाकर तथा मृत्यु को निश्चित बतला कर श्रीकृष्णजी ने उन्हें शान्त किया।

'सब को शान्तकर तथा अर्जुन को विश्राम कराकर श्रीकृष्ण अपने शिविर में गये। वहाँ उन्होंने अपने सारथी दारुक से कहा कि कल अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए यदि आवश्यकता हुई तो मैं स्वयं युद्ध कर कौरवों का संहार करूँगा, तुम मेरे दिव्य रथ को मेरे पास ले आना।

'इधर अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करने के उपाय सोचते-

सोचते अर्जुन को रात के पिछले पहर झपकी लग गई। उन्होंने स्वप्न में देखा कि उन्हें श्रीकृष्णजी समझा-बुझाकर आकाश मार्ग से कैलाश पर्वत पर शिवाजी के पास ले गये हैं। वहाँ शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें वर माँगने को कहा। अर्जुन ने पाशुपतास्त्र माँगा। शिवजी ने उन्हें एक पर्वत पर अमृत के कुण्ड से उस दिव्य अस्त्र को लाने के लिए कहा। अर्जुन और श्रीकृष्णजी ने उस कुण्ड के पास जाकर देखा कि वहाँ दो भयंकर नाग बैठे हैं। अर्जुन के विधि पूर्वक अनुष्ठान करने पर वे दोनों नाग धनुष-बाण होकर उनके पास आ गये। अर्जुन ने उन्हें लाकर शिव जी के सामने रख दिया। शिवजी के शरीर से उनके अंश ने प्रकट होकर दिव्य अस्त्र को पकड़ने, प्रयोग करने आदि की क्रिया विधिवत बतलादी। अस्त्र के मंत्र आदि जानकर तथा शिवजी से प्रतिज्ञा पूरी होने का वर प्राप्तकर श्रीकृष्ण जी के साथ अर्जुन अपने स्थान को लौट आये।

'प्रातःकाल वन्दि-मागध आदि की स्तुतियों तथा बाजों के शब्दों को सुनते हुए महाराज युधिष्ठिर उठे। उन्हें स्नान कुशल एक सौ आठ नहलाने वालों ने औषधिओं के तथा सुगंधित जल से स्नान कराया। फिर उनके शरीर में चन्दन, अंगराग आदि लगाकर दिव्य वस्त्राभूपण पहनाये। विधिवत जप, अग्निहोत्र, दान आदि कर युधिष्टिर

सभा में आकर दिव्य सिंहासन पर विराजे। यथा समय श्रीकृष्णजी, सात्यकि, धृष्ठद्युम्न को लाकर द्वारपालों ने यथायोग्य स्थानों पर बैठाला। इसी समय अर्जुन ने आकर अपने अद्भुत स्वप्न की बात बतलाई। सब को विश्वास हो गया कि श्रीकृष्णजी की कृपा से अर्जुन अवश्य ही अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे। श्रीकृष्णजी की स्तुति कर युधिष्ठिर ने सब को युद्ध के लिए चलने की अनुमति दी। श्रीकृष्ण जी के द्वारा सजाये गये नन्दिघोष रथ पर बैठकर अर्जुन ने सात्यकि से कहा कि जहाँ श्रीकृष्णजी हैं वहाँ किसी भी प्रकार का भय नहीं है, इस कारण आप लोग सब मिल कर महाराज युधिष्ठिर की रक्षा करें, मैं अकेले ही शत्रुओं का नाश करूँगा। सात्यकि आदि युधिष्ठिर की रक्षा के लिए उनके पास चले गये।

अध्याय ८५-१४६

जयद्रथ-वध, अर्जुन, सात्यकि, भीम, द्रोणाचार्य आदि का पराक्रम

धृतराष्ट्र ने वंश-नाश से दुखी हो विलाप करते हुए युद्ध का वर्णन सुनना चाहा। सञ्जय बोले—'प्रातःकाल द्रोण के रचे हुए व्यूह के बीच में जयद्रथ लाखों वीरों से घिरकर अपनी रक्षा के उपाय करने लगा। इधर अर्जुन रणक्षेत्र में आये। उन्हें सामने दुःशासन की अध्यक्षता में

हाथियों की सेना देख पड़ी। वे उससे युद्ध करने लगे। अर्जुन के बाणों ने हजारों हाथियों, घोड़ों, सवारों को काट डाला। अपनी सेना को नष्ट और विचलित होते देख दुःशासन स्वयं उग्ररूप धरकर युद्ध करने लगा। किन्तु अर्जुन की मार से घबराकर वह अपनी सेना के साथ शकट-व्यूह के अन्दर घुस कर द्रोण को रक्षा के लिए पुकारने लगा।

'दुःशासन की रक्षा के लिए द्रोण दौड़ पड़े। अर्जुन उन्हें प्रणाम कर उनसे युद्ध करने लगे। दोनों में भीषण युद्ध होने लगा। देर तक युद्ध होता रहा। तब श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन से कहा कि महापराक्रमी द्रोण को हरा कर व्यूह के अन्दर जाना कठिन है, इधर समय निकला जाता है। यह कह उन्होंने गुरु के दाहिनी ओर से रथ को व्यूह में आगे बढ़ाया। अर्जुन को इस प्रकार आगे जाते देख कौरव दल के अनेक वीरों ने उनका सामना किया। अर्जुन कृतवर्मा आदि को मूर्छित कर और आगे बढ़े। आगे उन्हें श्रुतायुध ने रोका। घोर संग्राम हुआ। श्रुतायुध वरुणदेव तथा पर्णाशा नामक नदी के पुत्र थे। वरुणदेव ने उन्हें एक अमोघ गदा देकर वर दिया था कि जब तक तुम्हारे हाथ में यह गदा रहेगी तब तक तुम अजेय रहोगे। किन्तु यदि तुम इस गदा को किसी ऐसे व्यक्ति पर चलाओगे जो युद्ध न करता हो तो यह लौट कर तुम्हारा

ही संहार कर देगी। अर्जुन के बाणों की चोटों से घबरा कर श्रुतायुध ने श्रीकृष्णजी पर उस गदा का प्रहार किया। गदा श्रीकृष्णजी के कंधे को छूकर लौट पड़ी और उसने श्रुतायुध का ही संहार कर डाला।

'आगे बढ़ने पर कम्बोजराज सुदक्षिण ने अर्जुन से भीषण युद्धकर उन्हें घायल किया। किन्तु अन्त में अर्जुन ने महावीर सुदक्षिण को मार गिराया। यह देख बहुत-सी सेना भाग खड़ी हुई। किन्तु फिर अनेक वीरों ने उन्हें घेर कर मारना शुरू किया। अर्जुन ने हजारों वीरों को देखते-देखते काट डाला। यह देख श्रुतायु, अच्युतायु नामक वीरों ने दो तरफ से आक्रमण कर उन्हें घायल कर मूर्छित कर दिया। अर्जुन को मरा हुआ समझ कौरव सिंहनाद कर हर्ष मनाने लगे। इसी बीच में अर्जुन ने सचेत हो युद्ध में श्रुतायु, अच्युतायु तथा उनके पुत्रों को मार गिराया। फिर वे हजारों वीरों को काटते हुए आगे बढ़ने लगे।

'अपने वीरों का संहार देख दुर्योधन ने द्रोण से जाकर कहा—'आप अर्जुन के स्नेह के कारण उन्हें रोकते नहीं। इधर हमारी सेना का संहार हो रहा है। यदि आप वचन न देते तो मैं जयद्रथ को न रोकता। आपके कार्यों से तो सिद्ध होता है कि आप उस छुरे के समान हैं जिस पर शहद का लेप लगा हुआ हो। आप मेरी दी हुई वृत्ति से तो

निर्वाह करते हैं, किन्तु हित चाहते हैं पाण्डवों का।' द्रोणाचार्य ने खिन्न होकर कहा—'मैं तुम्हें अपने पुत्र के समान समझता हूँ इस कारण तुम्हारी बातों से रुष्ट नहीं होता। किन्तु तुम्हारा संदेह व्यर्थ है। मैं इस वृद्धावस्था में अर्जुन के समान फुर्ती नहीं दिखला सकता। फिर श्रीकृष्णजी अर्जुन के सहायक हैं। इस समय व्यूह के द्वार पर युधिष्ठिर आ गये हैं, इस कारण मैं यहाँ से हटकर भीतर जा भी नहीं सकता। तुम स्वयं अपने अन्य वीरों के साथ जाकर अर्जुनको रोको। मैं यहाँ रहकर युधिष्ठिर को पकड़ने की चेष्टा करूँगा।' यह कह तथा दुर्योधन को अभेद्य कवच पहनाकर उसे अर्जुन से लड़ने को भेज दिया। यही कवच था जिसे ब्रह्माजी ने इन्द्र को वृत्रासुर से लड़ने के दिया था।

'इधर धृष्टद्युम्न की अध्यक्षता में भीम, सात्यकि आदि ने कौरव सेना पर भीषण वेग से आक्रमण किया। द्रोण ने अपनी सेना की रक्षा करते हुए शत्रुओं के हजारों वीरों को काट डाला। किन्तु धृष्टद्युम्न ने हजारों वीरों को मार कर कौरव सेना को विचलित कर डाला और उसे तीन भागों में बाँट दिया। द्रोणाचार्य ने बहुत चेष्टा की कि कौरव सेना फिर से एक हो जाय, पर वे अपने उद्योग में सफल न हुए। दोनों ओर के वीर प्राणों का मोह छोड़कर भीषण युद्ध करने लगे।

'व्यूह के अन्दर घुसकर अर्जुन ने अपने बाणों से अगनित वीरों को मारा और घायल किया। रुण्डमुण्ड से पृथ्वी पट गई। उनके घोड़े बराबर दौड़ते रहने के कारण थककर बेदम हो गये। इसी समय विन्द-अनुविन्द तथा उनके साथी वीरों को मारकर अर्जुन रथ से उतर पड़े और बाणों से पृथ्वी को फोड़कर जल निकाला। उनके कहने से श्रीकृष्णजी ने घोड़ों को रथ से खोल मला, टह-लाया, जल पिलाया तथा नहलाया। फिर खिला-पिला कर ताज़ा किया और अन्त में उन्हें रथ में जोता।

'इस बीच में कौरव पक्ष के बड़े-बड़े योद्धा अर्जुन को मारने के लिए रथों, हाथियों आदि पर सवार होकर चारों ओर से दौड़े, किन्तु गांडीव धनुष से छूटे हुए बाणों ने सब को दूर ही रक्खा। रथ तैयार होने पर अर्जुन उस पर चढ़कर आगे बढ़े। कौरवगण उनका ऐसा अद्भुत कार्य देखकर दंग रह गये। अर्जुन अपने सामने पड़ने वाले योद्धाओं, रथों, हाथियों को मारते-काटते आगे बढ़े। अर्जुन का परा-क्रम देख कौरव जयद्रथ के जीवन से निराश हो गये।

'इसी समय दुर्योधन गुरु द्वारा दिया गया दिव्य कवच पहन कर अर्जुन को रोकने के लिए आगे आया। श्रीकृष्णजी ने अर्जुन से कहा कि इसी नराधम के कारण सब उपद्रव हुआ है, तुम इस समय सब अपकारों का बदला

निकाल लो। अर्जुन ने कुपित होकर युद्ध करना प्रारंभ किया। अभेद्य कवच पहने रहने पर भी दुर्योधन अर्जुन के सामने न ठहर सका, वह अपने प्राण लेकर भाग खड़ा हुआ। राजा को बचाने के लिए लाखों वीर रथ-हाथियों पर सवार होकर अर्जुन पर टूट पड़े। उस अपार सेना को कठिनाई तथा कौशल से नष्ट कर श्रीकृष्णजी की सहायता से अर्जुन जयद्रथ के निकटतम रक्षक अश्वत्थामा आदि महारथियों के पास जा पहुँचे। इधर अश्वत्थामा आदि अर्जुन को इतने समीप देख व्याकुल होकर उन्हें रोकने की चेष्टा करने लगे। शल्य, भूरिश्रवा आदि आठ महारथियों ने अपने सहायकों के साथ अर्जुन पर भीषण आक्रमण किया। अस्त्र-शस्त्र से अर्जुन का रथ ढक गया।

'इधर व्यूह के द्वार पर युधिष्ठिर तथा द्रोण का भीषण युद्ध चल रहा था। युधिष्ठिर ने शक्ति, गदा, ब्रह्मास्त्र आदि का प्रयोग कर आचार्य को परास्त करना चाहा, किन्तु आचार्य ने उनके अस्त्र-शस्त्रों को काटकर तथा उनके रथ को विध्वंस कर उन्हें रण से विमुख कर दिया। दूसरी ओर द्रौपदी के वीर पुत्रों ने सोमदत्त के पुत्र महाबली शल को, घटोत्कच ने राक्षसराज अलम्बुष को, तथा अन्य वीरों ने कौरव दल के हजारों वीरों को मार गिराया। इस प्रकार घोर युद्ध हो रहा था। इसी समय युधिष्ठिर को

व्यूह के अन्दर से कौरव दल का हर्षनाद और श्रीकृष्णजी के पाञ्चजन्य शंख के शब्द तो सुन पड़े, किन्तु अर्जुन के धनुष की टंकोर न सुन पड़ी। अमंगल की आशंका से घबराकर युधिष्ठिर ने अर्जुन की सहायता करने तथा उनके समाचार लेने के लिए सात्यकि को भेजा। भीम, धृष्टद्युम्न आदि पर युधिष्ठिर की रक्षा का भार रख कर सात्यकि कौरव सेना के व्यूह में आगे बढ़े। द्रोण ने उन्हें रोका। घोर संग्राम के बाद आचार्य के दक्षिण ओर से रथ घुमा कर सात्यकि उसी प्रकार आगे निकल गये जैसे अर्जुन निकले थे। यह देख द्रोण मुस्कराकर दूसरे योद्धाओं से युद्ध करने लगे। सात्यकि कर्ण की सेना को छिन्न-भिन्न कर आगे बढ़े। कृतवर्मा ने आगे बढ़कर उन्हें रोका। दोनों में घोर युद्ध हुआ; पहले कृतवर्मा ने सात्यकि को विचलित कर डाला; किन्तु अन्त में सात्यकि उसे परास्त कर आगे बढ़े। इधर कृतवर्मा ने संभल कर भीम, धृष्टद्युम्न आदि वीरों को आगे बढ़ने से रोका। अकेले सात्यकि व्यूह में आगे बढ़े। सामने उन्हें जलसंध की गजसेना से मोर्चा लेना पड़ा। अन्त में सात्यकि जलसंध तथा उनकी सेना को काटकर आगे बढ़े। उन्हें रोकने के लिए दुर्योधन और कृतवर्मा सामने आये। किन्तु दुर्योधन को भगाकर तथा कृतवर्मा को मूर्छितकर सात्यकि आगे बढ़े और दुःशासन

के साथी शिला बरसाने वाले पहाड़ी वीरों को उन्होंने नष्ट कर डाला। दुःशासन प्राण लेकर द्रोण के पास भाग गए। द्रोण ने दुःशासन से कहा कि तुम्हीं ने द्रौपदी का अपमान एवं पाण्डवों पर अन्याय-अत्याचार कर इस जनसंहार की नींव डाली है, अब तुम युद्ध से भागते क्यों हो?

'इधर पाण्डवों की सेना व्यूह तोड़कर अन्दर घुसने का प्रयत्न कर रही थी। द्रोण ने पाञ्चाल वीर केतु, सुधन्वा आदि को मारकर पाञ्चालों को रोका। धृष्टद्युम्न ने अपने बाणों से द्रोण को मूर्छित कर तलवार से उनका सर काटना चाहा, किन्तु द्रोण ने सजग होकर धृष्टद्युम्न को अपने पास से भगा दिया। द्रोण को संकट में देख दुर्योधन अनेक वीरों के साथ उनकी सहायता के लिए आया। युधिष्ठिर ने घोर युद्धकर उसके रथ और धनुष को काट डाला। द्रोणाचार्य ने आगे बढ़कर पाण्डव सेना को विचलित कर दिया और चेदिराज धृष्टकेतु, उसके पुत्र, जरासंध के पुत्र, धृष्टद्युम्न के भाई क्षत्रवर्मा आदि महावीरों को मार डाला। पाण्डव सेना को विचलित होते देख द्रुपद ने सामने आकर द्रोण से युद्ध प्रारम्भ किया।

'सात्यकि को गये बहुत देर हो गई। किन्तु अर्जुन के समाचार न मिले। चिंतित हो युधिष्ठिर ने यह कहकर भीमसेन को भेजा कि तुम सात्यकि तथा अर्जुन को सकु-

शल देखकर सिंहनाद द्वारा मुझे सूचित करना। युधिष्ठिर की रक्षा का भार धृष्टद्युम्न पर डालकर भीम व्यूह में घुसने के लिए आगे बढ़े। सामने उन्हें गजसेना तथा दुर्मुख, विकर्ण आदि दुर्योधन के भाइयों से लोहा लेना पड़ा। भीम की मार से वह सेना विचलित हो उठी। यह देख द्रोणाचार्य आगे बढ़कर भीम से युद्ध करने लगे। भीम ने द्रोण के रथ को तोड़ डाला और दुर्योधन के अनेक भाइयों को मार गिराया। द्रोण ने उनसे कहा कि मेरे सामने से तुम व्यूह में नहीं घुस सकते, अर्जुन और सात्यकि दोनों ही मेरे सामने से हटकर व्यूह में घुस सके हैं। भीम ने कहा कि मैं तो आपके सामने से ही व्यूह में घुसूँगा। यह कहकर उन्होंने आचार्य के रथ को उठाकर पटक दिया और चूर-चूर कर डाला। द्रोण दूसरे रथ में बैठे। भीम ने एक-एक करके द्रोण के आठ रथ पटक-पटक कर नष्ट कर डाले। हर बार द्रोण रथ से कूदकर अपने प्राण बचाते गये। अन्त में भीम द्रोण के रथ को फेंककर आगे बढ़ गए और कृतवर्मा के द्वारा सुरक्षित भोज-सेना को पारकर हजारों वीरों को नष्ट करते हुए सात्यकि और अर्जुन के पास जा पहुँचे। दोनों को सकुशल देख भीम ने ज़ोर से सिंहनाद किया। युधिष्ठिर की चिन्ता दूर हुई।

'भीम ने देखते-देखते दुर्योधन के इकतीस भाइयों

को मार डाला। कर्ण ने अनेक बार भीम को परास्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु हरबार उसे भीम से परास्त होकर भागना पड़ा। अन्त में एक बार कर्ण ने भीम के धनुष, रथ, खड्ग आदि को काट डाला। कुपित होकर भीम उसे पकड़ने के लिए उछले। कर्ण भाग कर एक ओर छिप गया। फिर उसने बाणों से मार कर भीम को विह्वल कर दिया। भीम भाग कर मरे हुए हाथियों के बीच में जा छिपे। कर्ण ने अपने बाणों से हाथियों को काट डाला और भीम से कहा कि तू तो पेटू, लज्जाहीन हिजड़ा है, तू युद्ध करना क्या जाने। भीम को बड़ा क्रोध आया, उन्होंने कर्ण को मल्ल युद्ध के लिए ललकारा। किन्तु कर्ण मल्ल युद्ध के लिए तैयार नहीं हुआ। (और न उसने भीम के प्राण ही लिये क्योंकि उसे कुन्ती माता को दिये हुये अपने वचन का स्मरण था।) इधर अस्त्र-शस्त्र और रथ से रहित भीम को संकट में देख श्रीकृष्णजी के कहने से अर्जुन ने बाण मारकर कर्ण को व्याकुल कर दिया। फिर उन्होंने कर्ण को मारने के लिए एक बहुत ही भीषण बाण चलाया, किन्तु अश्वत्थामा ने उसे काट कर कर्ण की रक्षा की। अर्जुन अश्वत्थामा को युद्ध के लिए ललकार ने लगे, किन्तु अश्वत्थामा और कर्ण अर्जुन के सामने से हट गए।

'इधर गर्त, शूरसेन, कलिंग आदि की सेनाओं को

पारकर सात्यकि अर्जुन के रथ के पास पहुँचे। उन्हें देख कर श्रीकृष्णचन्द्र जी तो प्रसन्न हुए, किन्तु यह सोचकर कि सात्यकि के चले आने से युधिष्ठिर संकट में पड़ सकते हैं अर्जुन बहुत प्रसन्न नहीं हुए। इसी समय महारथी भूरिश्रवा ने सात्यकि से युद्ध करना आरम्भ किया। हजारों वीरों से युद्ध कर चुकने के कारण सात्यकि थके हुए थे, उनके बाण कम गए थे। तो भी उन्होंने डट कर भूरिश्रवा से लोहा लिया। देर तक युद्ध होने के बाद सात्यकि के अस्त्र, शस्त्र, रथ आदि सभी नष्ट हो गए। तब वे भूरिश्रवा से बाहु-युद्ध करने लगे। अन्त में थके रहने के कारण वे भूमि पर गिर पड़े। भूरिश्रवा ने सर के बाल पकड़ कर उन्हें खींचा और तलवार निकालकर उनका सर काटना चाहा। इसी समय श्रीकृष्ण जी के कहने से अर्जुन ने भूरिश्रवा के दाहिने हाथ को काट डाला। सात्यकि के प्राण बचे। भूरिश्रवा ने अर्जुन से कहा कि तुमने अधर्म से मेरा हाथ काटा है, जब मैं दूसरे से लड़ रहा था तो तुम्हें मेरे ऊपर यह बाण चलाना उचित नहीं था, निश्चय ही नीच वंश में उत्पन्न कृष्ण की सलाह का यह फल है। अर्जुन ने उत्तर दिया कि मैं यहाँ द्वन्द युद्ध नहीं कर रहा हूँ, बल्कि हजारों वीरों से एक साथ लड़ रहा हूँ, फिर जहाँ तक मेरे बाण जाते हैं वहाँ तक मैं अपने पक्ष वालों की रक्षा करना

अपना धर्म समझता हूँ, अपने पक्ष में युद्ध करने वाले की हर तरह से सहायता करना परम धर्म माना जाता है, कारण कि युद्ध बिना पारस्परिक सहायता के नहीं चल सकते, फिर अकेले अभिमन्यु को तुम छः महारथियों ने मिलकर मारा था, उस समय बालक अभिमन्यु के हाथ में कोई भी शस्त्र न था; तब तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था; और आज भी थके हुए, शस्त्र-रहित सात्यकि का सर काटना धर्मसम्मत नहीं माना जायगा।

'भूरिश्रवा ने अपने प्राण त्यागने के विचार से मौन धारण कर लिया। इसी समय सात्यकि ने तलवार उठाकर उनका सर काट डाला। सब उनकी निन्दा करने लगे। तब सात्यकि ने कहा कि मेरी प्रतिज्ञा है कि मुझे जो अपमानित करेगा मैं उसे मार डालूँगा, महर्षियों का मत है कि जिस कार्य से शत्रु को हानि पहुँचे वह धर्म-सम्मत है।

(यादव वंश में महा पराक्रमी शिनि और वसुदेव हुए। एक समय राजा देवक की कन्या देवकी का स्वयंवर रचा गया। वसुदेव के लिए शिनि ने देवकी का हरण किया। स्वयंवर में उपस्थित सब राजाओं ने उनका पीछा किया। शिनि ने अपने अद्भुत पराक्रम से सब को हरा कर भगा दिया। तब सोमदत्त ने शिनि से युद्ध छेड़ा। अन्त में शिनि ने सोमदत्त को परास्त कर उसका सर काटना चाहा, किन्तु फिर सब

के सामने उसकी छाती में लात मारकर उसे जीवित छोड़ दिया। सोमदत्त ने अपमान का बदला लेने के लिए घोर तप कर शिवजी से वर प्राप्त किया कि मेरा पुत्र शिनि के पुत्र को हजारों राजाओं के सामने पटककर छाती में लात मारे। इसी वर के प्रताप से सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा ने शिनि के पुत्र सात्यकि का इस प्रकार अपमान किया था।)

'भूरिश्रवा के मारे जाने के बाद अर्जुन के कहने से श्रीकृष्णजी रथ को जयद्रथ की ओर तेजी से ले चले। रास्ते में कर्ण, अश्वत्थामा, आदि ने अर्जुन को युद्ध में अटका कर रोकना चाहा। किन्तु हजारों वीरों का संहार कर तथा अश्वत्थामा आदि को विचलित कर अर्जुन बराबर आगे बढ़ते गये। अन्त में वे जयद्रथ के बहुत ही पास पहुँच गये। किन्तु वह बराबर उनसे छिपता रहा। उसकी रक्षा के लिए लाखों वीर, तथा कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण आदि महारथी बीच में पड़कर अर्जुन से युद्ध करने लगे। यह देख श्रीकृष्णजी ने अर्जुन से कहा—'बिना कौशल के अब काम न चलेगा। सूर्य डूबने वाले हैं और यदि इसी प्रकार युद्ध चलता रहा तो जयद्रथ को संध्या के पहले मार सकना संभव नहीं है। मैं योगबल से सूर्य को ढके देता हूँ। कौरव यह देखकर प्रसन्न होंगे कि प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए तुम अग्नि में जल कर प्राण दे दोगे। ऐसे

अवसर पर जयद्रथ हर्ष के मारे छिपा न रह सकेगा; बस तुम उसे सहज से ही मार लोगे। शत्रुनाश का यही उपाय है।'

'इस प्रकार अर्जुन को समझा कर श्रीकृष्णजी ने योगबल से सूर्य को ऐसा ढक दिया कि सबको जान पड़ने लगा मानो संध्या हो गई हो। कौरवदलवाले हर्ष से उछलने लगे। जयद्रथ भी निडर होकर पश्चिम की ओर देखने लगा। इसी समय श्रीकृष्णजी के कहने से अर्जुन ने बाण मार कर उसका सर काट डाला। फिर अपने कौशल से अर्जुन ने ऐसे बाण मारे कि वह सर पृथ्वी पर न गिर कर आकाश में ही उड़ता रहा। इसी प्रकार बाणों द्वारा अर्जुन ने उस सर को ले जाकर वहीं पास के वन में रहनेवाले, तप में निरत जयद्रथ के पिता वृद्धक्षत्र की गोद में डाल दिया। संध्यो-पासन से निवृत्त होकर जब वृद्धक्षत्र उठे तो वह सर उनकी गोद से लुढ़क कर भूमि पर जा गिरा। सर के भूमि पर गिरते ही वृद्धक्षत्र के सर के भी सौ टुकड़े हो गये। इस प्रकार पिता पुत्र की मृत्यु हुई।

'श्री कृष्णजी ने अर्जुन से बतलाया कि जयद्रथ के जन्म के समय उसके पिता वृद्धक्षत्र को विदित हो गया था कि इसका सर एक क्षात्रिय संग्राम में काटेगा। वृद्धक्षात्र ने तपकर यह वर प्राप्त कर लिया था कि जो जयद्रथ के सर को पृथ्वी पर गिरायेगा उसके सर के सौ टुकड़े हो जायँगे।

'जयद्रथ के मारे जाने पर श्रीकृष्ण ने अपनी माया हटा ली। फिर सूर्य निकल आये। यह देख कौरव दल को बड़ा विस्मय हुआ। हजारों वीरों ने अर्जुन को घेरकर मारना प्रारंभ किया। अर्जुन सब को मारकर अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि महारथियों से युद्ध करने लगे। उनके बाणों से घायल हो कृपाचार्य मूर्छित होकर गिर पड़े। यह देख अर्जुन को बड़ा संताप हुआ। कुछ देर बाद जब कृपाचार्य उठ बैठे, तब जाकर अर्जुन को शान्ति मिली। कृपको परास्त होते देख कर्ण आगे बढ़ा। सात्यकि ने बीच में पड़ उसे रोका। कर्ण सात्यकि पर टूट पड़ा। सात्यकि को पैदल लड़ते देख श्रीकृष्णजी के शंखनाद करने पर उनका सारथी दारुक रथ लेकर वहाँ आ गया। सात्यकि उस पर सवार होकर कर्ण से युद्ध करने लगे। उन्होंने कर्ण के रथ, धनुष आदि को काट डाला। दुर्योधन, अश्वत्थामा आदि कर्ण की सहायता करने लगे। अकेले सात्यकि अनेक महारथियों से युद्ध करने लगे।

'इधर जब अर्जुन को इस बात का पता चला कि कर्ण ने शस्त्रास्त्र तथा रथ रहित भीम से डरपोंक, पेटू आदि कटु वचन कहे हैं तब उन्होंने क्रोधित होकर कर्ण के सामने ही उसके सबसे प्रिय पुत्र वृषसेन को मारने की प्रतिज्ञा की। फिर भीषण युद्ध कर संध्या के पहले ही

उन्होंने आठ अक्षौहिणी सेना का संहार कर डाला।

'संध्या हो जाने पर श्रीकृष्णजी अर्जुन को रुण्ड-मुण्ड से पटी हुई रण भूमि दिखलाते हुए शिविर में लौटे। युधिष्ठिर ने दोनों का हर्ष से स्वागत किया और श्रीकृष्णजी की बड़ी स्तुति की।

अध्याय १५०-१५२

दुर्योधन का उलाहना और परामर्श

सञ्जय बोले—'जयद्रथ के मारे जाने पर दुर्योधन को बड़ा शोक हुआ। बिलखते हुए उसने द्रोणाचार्य से कहा—'आपके रहते अर्जुन ने जयद्रथ का वध किया। मेरे लिए प्राणों का मोह छोड़कर लड़नेवाले अनेकानेक वीर शत्रुओं द्वारा मार डाले गए। यदि आप रक्षा करने का वचन न देते तो मैं जयद्रथ को न रोकता और न आज वे मारे ही जाते। यदि आप अपनी प्रतिज्ञा का ख़्याल करते और अर्जुन पर स्नेह न दिखलाकर अपनी शक्ति के अनुरूप युद्ध करते तो अर्जुन तो क्या देवराज इन्द्र भी आपके व्यूह में नहीं धँस सकते थे। अब तो मुझे युद्ध करते-करते मर जाने में ही कल्याण देख पड़ता है।' आचार्य ने खिन्न होकर कहा—'हे दुर्योधन! तुम व्यर्थ ही सन्देह कर मुझे इस प्रकार के कटु वचन सुना रहे

हो। अर्जुन और कृष्ण को इन्द्र भी नहीं रोक सकते। यह जो हो रहा है वह सब तुम्हारे अन्याय-अत्याचारों का ही फल है। कर्ण, भूरिश्रवा आदि अनेक महारथियों को साथ लेकर तुम भी जयद्रथ की रक्षा न कर सके। तुम मुझे व्यर्थ दोष देते हो, इस कारण मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक पाँचालों का नाश न कर लूँगा तब तक शरीर से कवच न खोलूँगा।' यहकर आचार्य रात में ही शत्रुसेना के बीच में आकर उसका संहार करने लगे।

'द्रोणाचार्य के चले जाने पर दुर्योधन ने युद्ध का निश्चय कर कर्ण से कहा कि द्रोणाचार्य ने जयद्रथ को अभय दान देकर भी अर्जुन की प्रीति के कारण उन्हें व्यूह के भीतर घुसजाने दिया और प्रतिज्ञा पूरी करने दी; अब केवल मुझे तुम्हारा ही भरोसा है। कर्ण ने अनेक प्रकार से समझा कर कहा—'दैव बड़ा प्रबल होता है। वही हमारे पौरुष को, हमारे प्रयत्न को व्यर्थ कर रहा है। अनुकूल होने पर दैव मनुष्य के सब काम बना देता है। दैव के कारण ही आज पाण्डवों को विजय प्राप्त हो रही हैं। जिसका यत्न सुदृढ़ और अध्यवसाय अखंडित होता है दैव उसीके अनुकूल हो जाता हैं। हमें विजय के लिए अधिक सतर्क होकर प्रयत्न करना चाहिए।' कर्ण और दुर्योधन में इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि

पाण्डवों की एक बड़ी भारी सेना उसी ओर आती हुई देख पड़ी। इधर से कौरव सेना भी तेजी से आगे बढ़ी। दोनों में घमासान युद्ध होने लगा।

घटोत्कच वधपर्व

अध्याय १५३-१८३

रात्रि युद्ध, घटोत्कच वध, अमोघ शक्ति का प्रयोग, कृष्ण-हर्ष

सञ्जय बोले—'दोनों सेनाओं के वीर प्राणों का मोह छोड़कर घोर युद्ध करने लगे। दुर्योधन ने अपने पराक्रम से पाण्डव सेना को विचलित कर दिया। यह देख युधिष्ठिर दुर्योधन से युद्ध करने लगे और उन्होंने उसे घायल कर मूर्छित कर दिया। दुर्योधन के प्राणों पर संकट देख द्रोणाचार्य ने आकर उसकी रक्षा की। द्रोणाचार्य ने धृष्टद्युम्न के पुत्रों, पाण्डव सेना के हजारों वीरों तथा शिवि आदि राजाओं का संहार कर डाला। यह देख भीम ने कलिंग के राजकुमारों को, दुर्योधन के दुर्मद आदि भाइयों को तथा अन्य अनेक वीरों को भीषण युद्धकर मार डाला। भीम के उग्र रूप को देखकर कौरव सेना विचलित हो गई। अर्जुन, सात्यकि भी शत्रुओं को नष्ट करने लगे। घटोत्कच ने अपने राक्षस वीरों को साथ लेकर घोर युद्ध द्वारा अश्व-

त्थामा आदि को विकल कर दिया और कौरव सेना के हज़ारों वीरों को नष्टकर डाला। अश्वत्थामा ने घटोत्कच के पुत्र अंजनपर्वा को मार डाला और हज़ारों राक्षसों को मारकर तथा घटोत्कच को मूर्छित कर पाण्डव सेना को विचलित कर दिया।

'भीम ने राजा बाल्हीक, नागदत्त, दृढ़रथ आदि दुर्योधन के दश भाइयों को तथा शरभ, विभु आदि शकुनि के पाँच भाइयों को भीषण युद्ध कर मार डाला। फिर भीम और अर्जुन अनेक वीरों को मारते हुए आगे बढ़े। दुर्योधन ने बहुत प्रयत्न किया, किन्तु वह उन दोनों में से किसी को न रोक सका। उसे खिन्न देख कर्ण ने कहा कि तुम चिन्ता न करो, मैं आज अर्जुन और कृष्ण को मारकर तुम्हें निष्कंटक राज्य दिला दूँगा। यह सुन कृपाचार्य ने हँस कर कहा कि दिव्य अस्त्रधारी अर्जुन को और योगेश्वर कृष्ण को मारना सरल नहीं है। कर्ण ने बिगड़ कर कहा कि तुम कौरवों के आश्रय में रहकर भी उनके शत्रु पाण्डवों की ही बड़ाई किया करते हो। दोनों में विवाद बढ़ गया। अपने मामा का अपमान होते हुए देख अश्वत्थामा ने कहा कि कर्ण केवल डींग मारना ही जानता है, उसे अनेक बार युद्ध में अर्जुन के सामने से हारकर भागना पड़ा है, कृपाचार्य अर्जुन के पराक्रम को

जानते हैं और इसी से वे उनकी सच्ची बातें बतलाते हैं। कर्ण और अश्वत्थामा का विवाद इतना बढ़ गया कि वे एक दूसरे का सर काटने के लिए तैयार हो गए। अनिष्ट होते देख दुर्योधन ने दोनों को समझाकर शान्त किया। सब मिलकर फिर पाण्डव सेना से युद्ध करने लगे। कर्ण ने पाँचाल सेना को मारकर विकलकर दिया। यह देख अर्जुन कर्ण की ओर दौड़े। कर्ण को संकट में देख दुर्योधन के कहने से द्रोणाचार्य आदि सहायता के लिए आगे बढ़े। घमासान युद्ध होने लगा सात्यकि ने वाल्हीक के पुत्र और भूरिश्रवा के पिता सोमदत्त को मार डाला।

'रात्रि में अँधेरे के कारण अपने पराए का ज्ञान नहीं रह गया था। युद्ध में कष्ट होते देख मसालें जलाकर रोशनी की गई। दुर्योधन, युधिष्ठिर, अर्जुन, कर्ण, द्रोण, धृष्टद्युम्न, शकुनि, सहदेव, अश्वत्थामा, घटोत्कच आदि शत्रुओं की सेना का संहार करते हुए कभी द्वन्द युद्ध और कभी सम्मिलित युद्ध करने लगे। इसी अवसर पर कर्ण ने अपने पराक्रम से पाण्डव सेना के पैर उखाड़ दिये। युधिष्ठिर ने विह्वल होकर अर्जुन को उलहना दिया। अर्जुन ने क्रोधित होकर कर्ण का सामना करना चाहा, किन्तु श्रीकृष्णजी ने घटोत्कच को बुलाकर कर्ण और कौरव सेना को पराजित करने के लिए उत्साहित किया। घटोत्कच ने

अपने माया युद्ध के कारण द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा तथा अन्यान्य वीरों को विकल कर दिया और अलायुध नामक राक्षस राज का सर काट डाला। फिर घटोत्कच ने अस्त्र-शस्त्र तथा शिलाखण्डों की वर्षा से कौरव सेना को पस्त कर डाला। हजारों योद्धाओं को मरते देख तथा अपने प्राणों को संकट में पड़ा हुआ समझकर दुर्योधन ने कर्ण से कहा कि इस समय तुम इन्द्र की दी हुई अमोघ शक्ति से घटोत्कच का संहार करो नहीं तो हम सब को वह जीता न छोड़ेगा। कर्ण उस शक्ति को अर्जुन को मारने के लिए रक्खे हुए थे, वे उसे घटोत्कच पर नहीं चलाना चाहते थे। किन्तु दुर्योधन के बहुत कहने पर तथा अपने प्राणों को संकट में पड़ा हुआ देख अन्त में कर्ण ने उस अमोघ-शक्ति को घटोत्कच के ऊपर छोड़ा। शक्ति घटोत्कच को नष्टकर इन्द्र के पास चली गई। मरने पर भी घटोत्कच ने कौरवों की एक अक्षौहिणी सेना को नष्ट कर डाला। घटोत्कच के मरते ही राक्षसी माया दूर हो गई। कौरवों को बड़ा आनन्द हुआ। पाण्डव सेना विलाप करने लगी। किन्तु श्रीकृष्णचन्द्रजी ने हर्ष से गद्गद् होकर अर्जुन को अपने गले से लगा लिया। अर्जुन ने विस्मित होकर इसका कारण पूछा। श्रीकृष्णजी ने कहा कि कर्ण उस अमोघ शक्ति को तुम्हें मारने के लिए रक्खे हुए थे, आज घटो-

त्कच ने अपने प्राण देकर तुम्हें अभय कर दिया है। यदि कर्ण के पास शक्ति और कवच-कुण्डल होते तो साक्षात इन्द्र, वरुण, कुवेर भी उसका सामना नहीं सकते थे। हे अर्जुन ! मैंने तुम्हारे कारण ही शिशुपाल, जरासंध और एकलव्य का नाश कराया है क्योंकि यदि ये तीनों दुर्योधन की ओर से युद्ध करते तो तुम्हारा जीतना असम्भव था। कर्ण रोज रात को उस अमोघ शक्ति से तुम्हें मारने का विचार करता था, किन्तु मैं उसकी बुद्धि को मोहित कर शक्ति के प्रयोग को अब तक रोके रहा। आज धर्म-द्रोही घटोत्कच को उससे नष्ट होते देख मेरी बड़ी भारी चिंता दूर हो गई। भीम के कारण मैं स्वयं घटोत्कच को नहीं मारना चाहता था, आज एक साथ दो कार्य हो गये। शक्ति के कारण मुझे जो चिन्ता रहती थी वह दूर हुई और धर्मद्रोही राक्षस घटोत्कच का भी विनाश हुआ। अब निश्चय ही तुम्हारी विजय होगी।

'घटोत्कच के मरने से युधिष्ठिर को बड़ा शोक हुआ। उधर द्रोण और कर्ण घटोत्कच की माया से मुक्त होकर पाण्डव सेना को नष्ट करते हुए उसे भगाने लगे। इससे भी युधिष्ठिर को बड़ा दुःख हुआ। अपनी सेना को विच-लित देखकर धृष्टद्युम्न, सात्यकि आदि आगे बढ़कर कौरव दल के वीरों से युद्ध करने लगे। इसी बीच में व्यासदेव

ने प्रकट हो उपदेश देकर युधिष्ठिर का शोक दूर कर दिया।

अध्याय १८४-१९२

अश्वत्थामा की मृत्यु की झूठी बात, द्रोण-वध

सञ्जय बोले—'व्यासदेव के उपदेश से युधिष्ठिर का मोह दूर हो गया। उन्होंने धृष्टद्युम्न से कहा कि तुम द्रोणाचार्य को मारने के लिए ही अग्निकुंड से प्रकट हुए हो, तुम अब अपना अवतार लेना सार्थक करो। धृष्टद्युम्न, सात्यकि आदि वीरों को लेकर द्रोणाचार्य को मारने के लिए आगे बढ़े। कौरव दल के वीर आचार्य की रक्षा के लिए घोर युद्ध करने लगे। दोनों ओर के हजारों वीर मरने-कटने लगे। घमासान युद्ध होने लगा। किन्तु नींद के मारे सब बेहाल थे। अर्जुन ने प्रस्ताव किया कि जब तक चन्द्रमा का उदय न हो जाय तब तक सब विश्राम कर लें। दोनों पक्षवाले राजी हो गए। हाथी, घोड़ों रथों और भूमि पर दोनों ओर के वीर विश्राम करने लगे। कुछ समय बाद चन्द्रमा निकला। चारों ओर प्रकाश फैल गया। दोनों ओर के वीर सजग हो गए। फिर भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। इसी समय दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को उलाहना दिया कि आप ममता के कारण पाण्डवों को नहीं मारते, इस कारण हम लोगों को बहुत हानि उठानी

पड़ रही है। उलहने से तिलमिलाकर द्रोण भीषण युद्ध करने लगे। दुर्योधन ने कर्ण, शकुनि, दुःशासन के साथ आधी सेना लेकर अर्जुन के ऊपर आक्रमण किया। अर्जुन भीषण वेग से शत्रुओं का नाश करने लगे। इधर द्रोण ने राजा द्रुपद, विराट तथा अनेक अन्य वीरों को मार डाला। यह देख धृष्टद्युम्न ने प्रतिज्ञा की कि मैं द्रोण को अवश्य मारूँगा। अपनी सेना को नष्ट होते देख भीम कौरव-सेना को नष्ट करने लगे। इसी तरह युद्ध चलता रहा। रात बीत गई, सूर्योदय हुआ। बहुत से योद्धा भूख, प्यास और सूर्य की किरणों से व्याकुल हो मूर्छित होने लगे। तो भी युद्ध बराबर चलता ही गया। सूर्योदय होने पर द्रोणाचार्य ने भीषण रूप से पाण्डव सेना को नष्ट करना प्रारम्भ किया। उनके इस पराक्रम को देखकर पाण्डव बहुत भयभीत हुए। युधिष्ठिर को विश्वास हो गया कि यदि इसी प्रकार कुछ देर तक द्रोण युद्ध करते रहे तो कुल पाण्डव सेना नष्ट हो जायगी।

'पाण्डवों को चिन्तित देख श्रीकृष्णजी ने कहा कि अब हमें ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे द्रोणाचार्य शस्त्र रख दें, क्योंकि जब तक इनके हाथ में शस्त्र रहेगा तब तक इनसे कोई जीत नहीं सकता। यदि आचार्य को अश्वत्थामा के मरने का निश्चय हो जाय तो वे अस्त्र डाल कर

युद्ध बंद कर देंगे। केवल इसी उपाय से पाण्डव सेना की रक्षा हो सकती है। कोई उनसे अश्वत्थामा के मरने की बात जाकर कहे।' अर्जुन बहुत समझाने पर भी इस कार्य के लिए राज़ी न हुए। किन्तु श्रीकृष्णजी के बहुत समझाने से युधिष्ठिर ने उसके लिए अपनी सम्मति दे दी।

'तब श्रीकृष्णजी के कहने से भीम ने मालव देश के राजा इन्द्रवर्मा के अश्वत्थामा नामक हाथी को मार डाला। फिर भीम ने द्रोणाचार्य के पास जाकर कहा कि मैंने अश्वत्थामा को मार डाला। अश्वत्थामा की मृत्यु की बात सुन कर आचार्य के हाथ से शस्त्र छूट पड़े। किन्तु दूसरे ही क्षण अपने पुत्र के पराक्रम का स्मरण कर तथा भीम की बात झूँठी मान वे सावधान होकर फिर युद्ध करने लगे और बात-की-बात में उन्होंने हज़ारों वीरों का संहार कर डाला। इसी समय विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज आदि महर्षियों ने प्रकट होकर द्रोण से कहा कि अब पृथ्वी पर रहने का तुम्हारा समय पूरा हो गया है, तुम इस क्रूर कर्म को छोड़ कर ईश्वर में मन लगाओ और सद्गति प्राप्त करो।'

'अन्त समय उपस्थित देख आचार्य ने युधिष्ठिर को सत्यवादी समझकर अश्वत्थामा के मरने का समाचार पूछा। युधिष्ठिर को असमंजस में पड़ा हुआ देख श्रीकृष्ण जी ने उन्हें धीरे से समझाया कि लाखों मनुष्यों के प्राणों

की रक्षा के लिए थोड़ा झूठ बोलने में पाप नहीं लगेगा, यदि तुम इस समय सत्य पर अड़े रहोगे तो लाखों मनुष्यों की हत्या का पाप तुम्हें लगेगा। विजय के लोभ में पड़कर युधिष्ठिर ने ज़ोर से कहा कि अश्वत्थामा मारा गया, और धीरे से कहा कि मैं यह नहीं जानता कि हाथी या मनुष्य। इस थोड़े से झूठ के कारण ही युधिष्ठिर का रथ, जो पहले पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर रहता था वह अब पृथ्वी पर आ गया।

'युधिष्ठिर के वचन को सत्य मान द्रोणाचार्य अपने पुत्र की मृत्यु से विकल हो उठे। उनके सब अंग शिथिल हो गए। इसी समय धृष्टद्युम्न ने उन पर आक्रमण किया। द्रोण ने उनका सामना किया। दोनों में भीषण युद्ध हुआ। द्रोण ने धृष्टद्युम्न को मारने के लिए एक बहुत ही कराल बाण चलाया। धृष्टद्युम्न के प्राण संकट में देख सात्यकि ने उस बाण को काटकर नष्ट कर डाला। यह देख कृपाचार्य, कर्ण आदि ने आकर सात्यकि को घेर लिया। इधर द्रोण ने धृष्टद्युम्न के धनुष, रथ आदि को काट डाला। भीम ने अपने रथ पर बैठालकर धृष्टद्युम्न की रक्षा की। द्रोण को भीषण रूप से अपनी सेना का संहार करते देख भीम ने उनसे कहा कि अश्वत्थामा के मरने के बाद भी इस प्रकार नर-हत्या करना आपके लिए धर्मानुकूल नहीं

है। अश्वत्थामा की मृत्यु से विचलित होकर द्रोणाचार्य ने अपने शस्त्र रख दिये और पद्मासन से बैठकर समाधिस्थ हो उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। इसी समय धृष्टद्युम्न तलवार लेकर दौड़े और उन्होंने मृत आचार्य का सर काट डाला। उन्हें इस प्रकार दौड़ते देख श्रीकृष्ण, सात्यकि आदि ने उन्हें रोकना चाहा, किन्तु कोई उन्हें न रोक सके। आचार्य के सर को कटा हुआ देखकर कौरव सेना में भगदड़ पड़ गई।

नारायणास्त्र-मोक्षपर्व

अध्याय १६३-२००

नारायणास्त्र से पाण्डवों की रक्षा, शिव तथा श्रीकृष्ण की महिमा

सञ्जय बोले—'अपनी सेना को भागते हुए देख अश्वत्थामा उसे रोकते हुए आगे बढ़े। वे एक ओर युद्ध में उलझे हुए थे, इस कारण उन्हें अपने पिता के मरने का कुछ हाल मालूम न था। उन्होंने सेना के इस प्रकार भय और शोक से विह्वल हो भागने का कारण पूछा। अन्त में कृपाचार्य ने सब हाल बतलाया। इस प्रकार छल से अपने पिता की मृत्यु होते सुन अश्वत्थामा को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं छली पाण्डवों

को अवश्य ही नष्ट करूँगा। यह कह उन्होंने पाण्डवों को नष्ट करने के लिए ब्रह्मास्त्र छोड़ा। अश्वत्थामा की प्रतिज्ञा को सुनकर कौरव सेना युद्ध के लिए लौट पड़ी। यह देख युधिष्ठिर ने विस्मित हो इसका कारण पूछा। अर्जुन ने कहा कि हमने छल के द्वारा आचार्य के प्राण लिये हैं और धृष्टद्युम्न ने उनके केश पकड़ सब के सामने उनका अपमान किया है उसी का यह फल है। अब गुरु-पुत्र क्रोधित होकर धृष्टद्युम्न का वध करेंगे। जिसमें शक्ति हो, वह उन्हें बचाये। गुरु-द्रोह के कारण हम सब को नरक में जाना पड़ेगा।

अर्जुन के वचनों से भीम को बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने कहा कि जो शत्रु जीवन भर अन्याय और छल के द्वारा हमें कष्ट पहुँचाते रहे उन्हें नष्ट करने में पाप का भागी नहीं होना होता। अश्वत्थामा कुपित होकर भी हमारा विशेष कुछ अनिष्ट नहीं कर सकता। धृष्टद्युम्न ने कहा कि हम लोगों का द्रोण से पहले ही से वैर चला आरहा है। द्रोण शिष्य-द्रोही थे। वे अधर्मी दुर्योधन का साथ देते रहे और हमारा अनिष्ट करते रहे। उनके मारने में मुझे उसी तरह से दोष नहीं लग सकता जिस तरह अर्जुन को भीष्म के मारने में नहीं लगा। धृष्टद्युम्न की बातों को सुनकर पाण्डव बहुत दुखी हुए। सात्यकि

ने धृष्टद्युम्न को बहुत कुछ भला-बुरा सुनाकर कहा कि भीष्म ने स्वयं उस प्रकार मरना चाहा था, इस कारण अर्जुन को दोष नहीं दिया जा सकता, किन्तु तूने ऐसा अपराध किया है कि उसके लिए तो मृत्यु दण्ड ही उपयुक्त है। धृष्टद्युम्न ने छल द्वारा अनेक कार्यों के सम्पादन का वर्णन कर कहा कि सात्यकि ने भूरिश्रवा को उस समय मारा था जब वे शस्त्र छोड़कर प्राणायाम कर रहे थे। बात यहाँ तक बढ़ गई कि दोनों एक दूसरे का सर काटने के लिए झपटे। किन्तु उसी समय भीम, सहदेव, युधिष्ठिर तथा श्रीकृष्ण ने बीच-बचाव कर दोनों का मेल करा दिया। फिर सब मिलकर कौरव-सेना की ओर बढ़े।

इधर अश्वत्थामा अपने पिता के वध से कुपित हो पाण्डव-सेना का संहार कर रहे थे। उन्होंने पाण्डवों को सेना सहित नष्ट करने के लिए अमोघ नारायणास्त्र छोड़ा। पाण्डव-सेना जलकर नष्ट होने लगी। यह देख युधिष्ठिर बहुत व्याकुल हुए। तब श्रीकृष्णजी के कहने से सब लोग अस्त्र-शस्त्र डाल, रथ-हाथियों से उतर भूमि पर लेट गये। यही नारायणास्त्र से बचने का एक मात्र उपाय था। किन्तु भीम ने कायरों की तरह अपने अस्त्र न छोड़े। वे रथ बढ़ाकर अश्वत्थामा के ऊपर बाण बरसाने लगे। नारायणास्त्र ने उन्हें घेर लिया। भीम पर घोर संकट देख श्रीकृष्ण

ने योगबल से उनके पास जाकर उनकी रक्षा की और उनसे अस्त्र छीन कर अलग कर दिये। सबको अस्त्रहीन और रण-विमुख देख नारायणास्त्र शान्त हो गया। तब दुर्योधन ने अश्वत्थामा से फिर नारायणास्त्र का प्रयोग करने को कहा। अश्वत्थामा ने कहा कि तुरंत दूसरी बार प्रयोग करने से यह अस्त्र प्रयोग करनेवाले का ही संहार कर डालता है।

'फिर भीषण युद्ध होने लगा। अश्वत्थामा ने पाण्डवों को मारने के लिए अग्नि-वायु आदि आदि अनेक दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया, किन्तु अर्जुन ने उन सब अस्त्रों को शान्तकर दिया। हार कर अश्वत्थामा ने अस्त्र रख दिये। इसी समय उन्हें व्यास देव ने दर्शन देकर बतलाया कि श्री कृष्णजी नारायण के अवतार हैं तथा सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान हैं, शिव भगवान ने उन्हें अजेय होने का वर दिया है। यह सुन अश्वत्थामा ने युद्ध बन्द करा दिया है। इस प्रकार पाँच दिन तक युद्धकर द्रोणाचार्य ने परम-गति प्राप्त की। युद्ध के बाद व्यासदेव ने अर्जुन को शिवजी की महिमा सुना कर उन्हें शंकरजी की शरण में जाने का उपदेश दिया।

(द्रोण पर्व समाप्त)

महाभारत

कर्णपर्व

अध्याय १-३०

कर्ण सेनापति सोलहवें दिन का भीषण युद्ध

वैशम्पायनजी बोले—'द्रोण के मारे जाने पर दुर्योधन सब राजाओं को लेकर अश्वत्थामा के पास गया। सब के समझाने से अश्वत्थामा का शोक कम हुआ। उन्हें कुछ शान्त देख सब अपने-अपने शिवरों में जाकर विश्राम करने लगे। किन्तु कर्ण, दुःशासन, शकुनि, दुर्योधन रात भर एक साथ रहकर विजय के उपाय सोचते रहे। प्रातः काल अश्वत्थामा तथा सब राजागण की सम्मति से कर्ण विधिपूर्वक सेनापति बनाये गये।

'इधर द्रोण तथा अन्य वीरों की मृत्यु से धृतराष्ट्र को बहुत दुःख हुआ। वे विलाप करने और मूर्छित होने लगे। सञ्जय ने अनेक प्रकार से उन्हें समझाकर शान्त किया। फिर उन्होंने कौरवों तथा पाण्डवों की ओर के उन वीरों का विवरण सुनाया जो रण में मारे गये थे और जो युद्ध

के लिए तैयार थे। इसके अनन्तर कर्ण के गुणों का वर्णन कर विकल हो धृतराष्ट्र ने युद्ध के समाचार पूछे।

सञ्जय बोले—'सेनापति के रूप में कर्ण ने कौरव-सेना को व्यूह में युद्ध के लिए सजाया। इधर अर्जुन ने अपनी सेना की व्यूह-रचना की। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध आरंभ हुआ। हज़ारों वीर, हाथी-घोड़े कट-कट कर गिरने लगे। रुधिर की नदियाँ वह चलीं। भीम ने कौरवों की गज-सेना को छिन्न-भिन्न कर डाला और पाण्डव सेना को नष्ट करनेवाले महापराक्रमी क्षेमधूर्ति तथा उसके भयंकर हाथी को मार गिराया। अभिसार नरेश चित्रसेन, तथा महाराज चित्र भीषण युद्ध कर मारे गये। कौरव सेना को भागते देख अश्वत्थामा ने आगे बढ़, भीम को रोका। विकट युद्ध के अनन्तर दोनों वीर अचेत होकर गिर गये। इधर अर्जुन कौरव वीरों का संहार कर रहे थे। अपनी सेना को विचलित देख, सचेत हो अश्वत्थामा ने उनका सामना किया। दोनों में बड़ा विकट संग्राम हुआ। अन्त में बाणों के चुक जाने पर अश्वत्थामा एक ओर हट गये। इसी बीच में मगध देश के श्रेष्ठ योद्धा दण्डधर और दण्ड हाथियों पर सवार होकर पाण्डव सेना का विनाश कर रहे थे। श्रीकृष्णजी के कहने से अर्जुन ने उनसे युद्ध कर उन दोनों को वीरों को तथा नर-संहार

करनेवाले उनके हाथियों को मार डाला। फिर उन्होंने बचे हुए संशप्तकगण का संहार किया।

अपने को भीष्म, द्रोण, अर्जुन से भी अधिक वीर मानने वाले महारथी पाण्ड्यराज मलयध्वज एक ओर कौरव सेना का संहार कर रहे थे। अश्वत्थामा ने कौरव सेना को विचलित होते देख उनसे युद्ध किया और अन्त में उन्हें उनके हाथी सहित काट डाला। इस बीच नकुल ने म्लेच्छराज, अंगनरेश तथा पुण्ड्रराज को मार गिराया। सात्यकि ने बंगराज का संहार किया। कर्ण ने हज़ारों वीरों को नष्ट कर डाला। सहदेव ने दुःशासन को परास्त कर मूर्छित कर दिया। कर्ण ने नकुल को परास्त कर धनुष को उनके गले में फँसाकर उन्हें पकड़ लिया, किन्तु मारा नहीं, केवल दुर्वचन कहकर छोड़ दिया। युधिष्ठिर ने दुर्योधन को युद्ध में परास्तकर मारना चाहा, किन्तु अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि ने आगे बढ़कर उनकी रक्षा की। दोनों ओर के योद्धा प्राणों का मोह छोड़कर घोर संग्राम करने लगे। संध्या समय अर्जुन की मार के सामने कौरव दल विचलित हो गया। इसी समय विश्राम के लिए युद्ध बन्द कर दिया गया। इस प्रकार सोलहवें दिन का युद्ध बन्द हुआ।

अध्याय ३१-४६

शल्य का सारथी होना, शल्य-कर्ण विवाद

सञ्जय बोले—'युद्ध से लौटकर कर्ण ने दुर्योधन से कहा कि पराक्रम, शारीरिक और मानसिक बल, अस्त्र-प्रयोग, साहस आदि किसी भी बात में अर्जुन मेरी बराबरी नहीं कर सकते; विजय नामक मेरा धनुष अर्जुन के गांडीव धनुष से श्रेष्ठ है; मेरे इसी धनुष से इन्द्र ने राक्षसों का नाश किया था और परशुरामजी ने इक्कीस बार इसी धनुष को लेकर क्षत्रियों का संहार किया था; अर्जुन मुझसे केवल इसी बात में बढ़कर हैं कि उनके पास ऐसा अक्षय तर्कस है जिसके बाण कभी नहीं चुकते और श्रीकृष्णजी ऐसे गुणी पुरुष उनके सारथी हैं; यदि राजा शल्य मेरे सारथी बन जायँ तो मैं अवश्य ही अर्जुन का और पाण्डव सेना का संहार कर तुम्हें निष्कंटक राज्य दिला दूँ।

'दुर्योधन ने शल्य के पास जाकर उन्हें अनेक प्रकार से समझाया और उनसे कर्ण के सारथी होने की प्रार्थना की। शल्य ने इसमें अपना अपमान बतलाकर बड़ा क्षोभ प्रकट किया। उन्होंने कहा कि मैं अभिषिक्त क्षत्रिय राजा होकर नीच कुल में उत्पन्न सूत-पुत्र कर्ण का सारथी कैसे बन सकता हूँ। तब अनेक प्राचीन दृष्टान्तों को देकर

विनीत भाव से समझाते हुए दुर्योधन ने कहा—'आप अश्व-विज्ञान, सारथी के कार्य, बल, विक्रम, शस्त्र-शास्त्र-ज्ञान तथा अनेक गुणों में श्रीकृष्ण से बढ़कर हैं। यदि आप कर्ण को अपने संरक्षण में ले लेंगे तो निश्चय ही हमारी विजय होगी। सारथी का काम करने में कोई अपमान नहीं है। प्राचीन समय में ब्रह्माजी ने शिवजी के सारथी बनकर दानवों के त्रिपुर को नष्ट करने में सहायता करके जगत का कल्याण किया था। तारकासुर के पुत्रों ने घोर तप करके ब्रह्माजी से स्वर्ग से भी बढ़कर ऐश्वर्य तथा सामग्री से भरे हुए सोने, चाँदी और लोहे के तीन आकाशगामी दिव्य पुर प्राप्त किये। यह वर था कि जब कोई एक ही बाण से एक साथ तीनों पुरों को मारे तभी वे नष्ट हों। तार-काक्ष के पुत्र हरि दानव ने घोर तपस्या के द्वारा ब्रह्माजी से उन पुरों में ऐसी मृतसंजीवनी बावली प्राप्त की, जिसके पानी में डालने से मरे हुए दानव फिर से जी उठते थे और शक्ति-संपन्न हो जाते थे। यह सब प्राप्तकर दानव बहुत प्रबल हो उठे। वे देवगण को जीतकर अधर्म, अन्याय करने और प्रजा को पीड़ा पहुँचाने लगे। प्राणियों को त्रसित देख देवगण के प्रार्थना करने पर शिवजी उन पुरों को नष्ट करने के लिए तैयार हुए। उनके लिए विश्व-कर्मा ने दिव्य रथ तथा अस्त्र-शस्त्र बनाये। शिवजी ने अपने

अनुरूप सारथी चाहा। विश्व-कल्याण के निमित्त ब्रह्माजी ने उस रथ पर बैठकर सारथी का कार्य किया। ऐसे सारथी को पाकर शिवजी ने त्रिपुर तथा दानवों को वैष्णव-बाण के द्वारा नष्ट कर जगत का संकट दूर किया। हे शल्य! उपयुक्त सारथी वही होता है जो बल, पराक्रम, गुण आदि में रथी से अधिक हो। आप सभी बातों में कर्ण और श्रीकृष्ण से श्रेष्ठ हैं। आप कर्ण के सारथी बनकर हमें इस समय घोर संकट से उबारिये। कर्ण सूत-पुत्र नहीं हैं। ये तो किसी देवबाला के पुत्र हैं। इनके बल, विक्रम, रूप, स्वभाव, गुण तेज आदि सभी क्षत्रियों के समान ही हैं।'

'दुर्योधन की बातों से संतुष्ट होकर शल्य ने इस शर्त पर सारथी होना स्वीकार किया कि मैं जो बातें चाहूँ कहता रहूँ। कर्ण और दुर्योधन ने उनकी यह शर्त मान ली। शल्य कर्ण के रथ पर बैठकर सारथी का कार्य करने लगे। कर्ण युद्ध के लिए रवाना हुए। इसी समय अनेक अशुभ-सूचक अपशकुन होने लगे। कर्ण युद्ध में अर्जुन को मारने तथा अपने बल-विक्रम की बातें करने लगा। तब शल्य ने अर्जुन के बल, वीर्य, पराक्रम तथा अस्त्र-कौशल की प्रशंसा करते हुए कहा कि उनके सामने कोई भी नहीं टिक सकता; उन्होंने शिवजी को युद्ध में प्रसन्न किया है; यक्षों से दुर्योधन आदि को छुड़ाया है, विराट के नगर में कौरवों को अकेले

हराया है और अनेक बार बड़े-से-बड़े वीरों को परास्त किया है; अर्जुन से युद्ध में कोई जीवित नहीं बच सकता।

'कर्ण ने यह कहकर रथ आगे बढ़वाया कि आज युद्ध में मेरा पराक्रम प्रकट ही हो जायगा। फिर उसने यह घोषणा की कि जो कोई भी मुझे अर्जुन तथा श्रीकृष्ण का पता इस युद्ध भूमिमें देगा मैं उन दोनों को मारकर उनका सारा धन, उसे (पता बतलाने को) दे दूँगा। यह सुनकर शल्य ने कर्ण की निन्दा तथा अर्जुन की प्रशंसा करते हुए कहा कि तुम व्यूह रचकर सावधान हो युद्ध करो, नहीं तो उसी तरह मारे जाओगे जैसे बहुत चिल्लानेवाला गीदड़ सिंह के द्वारा मारा जाता है। यह सुनकर कर्ण ने शल्य तथा उनके देशवासी स्त्री-पुरुषों के अनेक दोषों का वर्णन किया और कहा कि मैं यदि तुम्हारी बातों को सुनकर क्षमा करते रहने का वचन न देता, तो अवश्य ही तुम्हें मार डालता, आज मैं अर्जुन तथा श्रीकृष्ण का संहार कर डालूँगा।

'कर्ण की गर्वोक्ति सुनकर शल्य ने कहा कि पूर्वकाल में एक कौवे ने अभिमान में चूर रहने के कारण राजहंस से उड़ने में बाज़ी लगाई थी; जब वह हंस के साथ उड़ता-उड़ता समुद्र के ऊपर पहुँचा तो थक कर गिर पड़ा और पानी में डूबने लगा। तब हंस ने दयावश उसे अपनी पीठ पर बैठालकर उसके स्थान पर पहुँचा दिया। हे कर्ण! तुम

उसी घमंडी कौवे के समान हो, तुम सूर्य रूपी अर्जुन के सामने जुगनू के बराबर भी नहीं हो, व्यर्थ डींग मत मारो।

'कर्ण ने अपने बल, विक्रम का बखान करते हुए कहा—'मैंने ब्राह्मण का रूप रखकर परशुरामजी से अस्त्र-विद्या प्राप्त की थी। एक समय परशुरामजी मेरी जाँघ पर सर रखकर सो गये। उसी समय इन्द्र ने वज्रकीट बन कर मेरी जाँघ को छेद डाला। इस डर से कि कहीं परशुरामजी जाग न पड़ें, मैं पीड़ा सहने पर भी हिला तक नहीं। मेरी जाँघ से रुधिर की धार बह निकली। कुछ समय बाद परशुराम जी ने जागकर यह सब देखा। मेरी सहन-शक्ति देखकर उन्हें मेरे ब्राह्मण होने में संदेह हो गया। उनके पूछने पर डरकर मैंने सच्ची बात बतला दी। उन्होंने मुझे शाप दिया कि संकट पड़ने पर मैं ब्रह्मास्त्र का प्रयोग भूल जाऊँ। इसी तरह एक बार जब मैं वन में बाण चलाने का अभ्यास कर रहा था, तब धोखे से मेरा बाण एक ब्राह्मण के बछड़े के जा लगा। इस पर ब्राह्मण ने कुपित होकर शाप दिया कि युद्ध में प्राणों का संकट उपस्थित होने पर तेरे रथ का पहिया भूमि में धँस जायगा, और उस समय तेरा शत्रु तुझे मार लेगा। मैंने लाखों गायों को तथा असंख्य धन को देकर शाप से मुक्ति चाही, किन्तु उस हठी ब्राह्मण ने अपना हठ न छोड़ा। मैं इन दो शापों

से तनिक सशंकित हूँ। तो भी मेरे पास ऐसे दिव्य अस्त्र हैं कि मेरा सामना अर्जुन किसी तरह से नहीं कर सकता।' यह कहकर कर्ण ने शल्य तथा उनके देशवासियों के बहु-संख्यक दुर्गुणों का वर्णन विस्तार के साथ किया। विवाद को बढ़ते देख दुर्योधन ने दोनों को समझाकर शान्त किया। कर्ण ने व्यूह की रचनाकर युद्ध की तैयारी की। शल्य ने अर्जुन तथा उनके रथ, घोड़ों, धनुष आदि की प्रशंसाकर कर्ण से कहा कि पाण्डवों की सेना तथा भीम, धृष्टद्युम्न, आदि महारथी बढ़े आ रहे हैं, इनसे कौरव सेना की रक्षा करो। इसी बीच में दोनों सेनाएँ घमासान युद्ध करने लगीं।

अध्याय ४७-६३

घोर संग्राम, युधिष्ठिर का परास्त तथा घायल होकर भागना

सञ्जय बोले—'घोर संग्राम आरंभ हो गया। दोनों ओर के वीर मारकाट मचाने लगे। पृथ्वी रुण्डों-मुण्डों और टूटे हुए रथों, शस्त्रों आदि से पट गई। युधिष्ठिर ने कर्ण से युद्ध कर उन्हें घायलकर अचेतकर दिया। कुछ समय बाद कर्ण ने ब्रह्मबाण का प्रयोग किया और युधिष्ठिर के धनुष, कवच, रथ आदि काट डाले। युधिष्ठिर दूसरे रथ पर चढ़कर एक ओर को भागे। उनके रक्षक योद्धाओं को

मारकर कर्ण ने उनका कंधा पकड़ लिया, किन्तु कुन्ती को दिये हुए अपने वचन को यादकर उन्हें मारा नहीं। कर्ण की इच्छा थी कि युधिष्ठिर को जीवित ही पकड़ लें। किन्तु शल्य ने कहा कि युधिष्ठिर पकड़े जाने पर हम लोगों को भस्म कर देंगे। इस पर भय से कर्ण ने केवल दुर्वचन कह उनका कंधा छोड़ दिया। युधिष्ठिर लजाते हुए वहाँ से भाग गये। उनके पक्षवालों ने कौरवों की बहुत-सी सेना काट डाली। कौरव दलवालों ने भी पाण्डवों की बहुत-सी सेना नष्ट कर डाली।

भीम और कर्ण का भी भीषण युद्ध हुआ। भीम ने बाण मारकर कर्ण को मूर्छित कर दिया। फिर उन्होंने दुर्योधन के अनेक भाइयों को मार गिराया। सचेत होकर कर्ण फिर भीम से युद्ध करने लगे और उनके धनुष आदि को काटकर उन्हें व्याकुल कर दिया। भीम गदा लेकर शकुनि तथा उसके हाथियों को मारने लगे। इतने में कर्ण ने फिर युधिष्ठिर का पीछा किया, किन्तु भीम, सात्यकि आदि ने बीच में आकर उसे रोक लिया। कृपाचार्य ने शिखण्डी आदि को परास्त किया। अर्जुन ने हज़ारों योद्धाओं का संहारकर डाला। अश्वत्थामा ने युधिष्ठिर के धनुष आदि को काटकर उन्हें व्याकुल कर दिया। तब सात्यकि ने अश्वत्थामा को युद्ध में फँसाकर युधिष्ठिर को

सावधान होने का मौक़ा दिया। धृष्टद्युम्न ने दुर्योधन के रथ, धनुष आदि को काट कर उसे मारना चाहा, परन्तु दुर्योधन के भाई उसे अपने रथ पर बैठाकर दूर हटा ले गये। इधर धृष्टद्युम्न के रथ, धनुष, खड्ग आदि को काटकर अश्वत्थामा उन्हें मारने का उद्योग करने लगे। यह देख श्रीकृष्ण जी के कहने से अर्जुन ने दौड़कर उनकी रक्षा की। फिर इसी प्रकार श्रीकृष्ण जी के कहने से अर्जुन ने दौड़कर युधिष्ठिर को कौरव-दल वालों द्वारा पकड़े जाने से बचाया। कुछ समय बाद कर्ण ने युधिष्ठिर तथा नकुल को शस्त्र तथा रथ रहित कर उन्हें मारना चाहा। तब शल्य ने उसे यह कह कर रोका कि तुम्हें अर्जुन से युद्ध करना चाहिए, व्यर्थ में दूसरे लोगों से उलझकर अस्त्र, शस्त्र, बाण तथा शक्ति नष्ट करने से क्या लाभ; उधर भीम ने दुर्योधन को संकट में डाल दिया है, वहाँ चलकर अपने राजा की रक्षा करो। यह कह तथा कर्ण को राज़ीकर शल्य रथ को तेज़ी से दुर्योधन की ओर बढ़ा ले गये। अवसर पाकर युधिष्ठिर अपने शिविर में जाकर घावों की चिकित्सा कराने लगे। उन्हें कर्ण के सामने से भागने और इस प्रकार घायल होने से बड़ी ग्लानि हुई।

अध्याय ६४-७४

अर्जुन का युधिष्ठिर को मारने के लिए तैयार होना; सत्य से नरक, हिंसा से स्वर्ग

सञ्जय बोले—'इधर अर्जुन ने अनेक वीरों को मरने के वाद अश्वत्थामा को मूर्छित कर दिया। उनकी मार से घवराकर कौरव सेना भाग खड़ी हुई। दुर्योधन ने उसे बहुत रोका, पर वह न रुको। उन्होंने कर्ण से उलाहना दिया। कर्ण आगे वढ़ पाण्डवों की सेना का संहार करने लगे। अपनी सेना की दुर्दशा देख अर्जुन ने कर्ण से युद्ध करना चाहा, किन्तु श्रीकृष्णजी ने उन्हें समझाया कि शिविर में चलकर ताज़े होने के वाद कर्ण से भिड़ना उचित होगा। इसी वीच में अर्जुन को युधिष्ठिर के वहुत घायल होने के समाचार मिले। वे भीम को सेना का भार सौंप कर शिविर में दौड़े गये। वहाँ युधिष्ठिर को जीवित तथा अच्छी दशा में पाकर वे वहुत प्रसन्न हुए। युधिष्ठिर ने समझा कि कर्ण को मारकर ही अर्जुन आये हैं, इस कारण उन्होंने अर्जुन की वड़ी प्रशंसा की और युद्ध का विवरण पूछा। किन्तु जब उन्हें सब बातें मालूम हुई तो उन्होंने अपने क्लेश और प्राण-संकट का वर्णन कर अर्जुन के पराक्रम को धिक्कारा और उनके कहा कि तुम अपना गांडीव धनुष किसी योग्य

पुरुष को दे दो, तुम गर्भ में ही मर जाते तो उत्तम था। 'अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई मुझे धिक्कारेगा और गांडीव को किसी दूसरे को दे देने को कहेगा उसे मैं मार डालूँगा। इस कारण उन्होंने युधिष्ठिर को मारने के लिए तलवार निकाल ली। श्रीकृष्णजी ने उन्हें समझा-बुझाकर कर शान्त किया और कहा—'तुम धर्म के तत्व को समझने और उसीके अनुसार चलने की चेष्टा करो। धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है। कभी सत्य बोलने से अधर्म होता है और कभी असत्य बोलने से धर्म। कभी-कभी तो जीवों की हिंसा करने, उन्हें मार डालने से ही धर्म होता है। धर्म के किसी वाक्य पर न जाकर उसके असली तत्व को समझना और उसी के अनुसार आचरण करना चाहिए। प्राणियों की रक्षा के लिए ही धर्म की स्थापना हुई है। जो अभ्युदय-युक्त हो वही धर्म है। जो प्रजा की रक्षा के लिए उपयोगी हो, वही धर्म है। पूर्व समय में बलाक नामक व्याध ने एक जंगल में एक पशु को मारा था, इस कारण उसे (व्याध को) स्वर्ग की प्राप्ति हुई थी। इसका कारण यही था कि वह पशु वन के अन्य जीवों को सताया करता था। उसे मारकर व्याध ने बहुतों का दुःख दूर किया, इस कारण उसे हिंसा करने पर भी स्वर्ग की प्राप्ति हुई। इसी प्रकार पूर्व समय में कौशिक नामक एक बड़े तपस्वी तथा

सत्यवादी ऋषि थे। एक बार डाकुओं के डर से कुछ नगरवासी आकर उनके पास वाले वन में जा छिपे। डाकुओं ने पीछे से आकर कौशिक से उन मनुष्यों के बारे में पूछा। सदा सत्य बोलने की प्रतिज्ञा करने के कारण कौशिक ने उन छिपे हुए नागरिकों का पता बतला दिया। डाकुओं ने उन लोगों को पकड़कर मार डाला। सत्य का पालन करने पर भी कौशिक को नरक में जाना पड़ा, क्योंकि उनके सत्यभाषण से अनेक मनुष्यों की हत्या हुई थी। इस प्रकार हिंसा से तो स्वर्ग की प्राप्ति हुई और सत्य से नरक में जाना पड़ा। हे अर्जुन! तुम युधिष्ठिर की निन्दा करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लो, क्योंकि सम्मान योग्य मनुष्य की निन्दा तथा अप्रतिष्ठा ही उसकी मृत्यु के तुल्य होती है।

'श्रीकृष्णजी के उपदेश से अर्जुन को यथार्थ धर्मज्ञान हो गया। उन्होंने युधिष्ठिर की निन्दा करते हुए कहा कि तुम क्षत्रिय गुणों से हीन हो; तुम्हारे कारण ही हम सब को इतने कष्ट और अपमान भोगने पड़े; तुम अनार्यों की भांति जुआड़ी हो। तुम्हारे ऐसा अपदार्थ मेरा तिरस्कार करे!!

'आवेश में आकर अर्जुन इस प्रकार युधिष्ठिर की निन्दा करते गये, किन्तु फिर दूसरे ही क्षण उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। वे अपने पितातुल्य बड़े भाई की निन्दा करने

के बाद बहुत पछताने लगे। वे ग्लानि के मारे आत्महत्या करने को तैयार हो गये। तब श्रीकृष्ण जी ने उन्हें समझाया कि आत्महत्या भाई की हत्या से भी जघन्य पाप होगा। तुम अब अपनी बड़ाई खुद कर लो, क्योंकि आत्मप्रशंसा आत्महत्या के ही समान होती है। तब अर्जुन ने अपने गुणों और कार्यों का विस्तार से बखान कर अपनी खूब प्रशंसा की। फिर उन्होंने कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा की।

'युधिष्ठिर को अर्जुन के द्वारा अपनी निन्दा सुनकर बड़ी ग्लानि हुई। उन्होंने विलाप करते हुए कहा कि मेरा मरना ही अच्छा है; क्योंकि मेरे दोषों के कारण ही मेरे सभी भाइयों को क्लेश सहने पड़े और आज जो यह जन-संहार तथा वंश-नाश हो रहा है उसका मैं ही मूल कारण हूँ। उन्हें दुखी देख श्रीकृष्णजी ने उन्हें प्रणाम कर अनेक प्रकार से समझाया। फिर अर्जुन ने भी उनके पैरों पर सर रखकर क्षमा चाही। युधिष्ठिर ने प्रसन्न होकर उन्हें गले से लगा लिया। इसके बाद अर्जुन ने कर्ण के वध की प्रतिज्ञा कर उसके लिए युधिष्ठिर का आशीर्वाद चाहा। युधिष्ठिर ने उनका सम्मान कर उन्हें आशीर्वाद दिया और युद्ध के लिए विदा किया। रथ पर चढ़कर अर्जुन युद्ध के लिए चले। इसी समय बहुत से शुभ शकुन होने लगे। श्रीकृष्णजी ने कर्ण को सारे अनर्थों की जड़

बतलाकर अर्जुन को उसे मारने के लिए प्रोत्साहित किया।'
अर्जुन युद्ध भूमि में आये।'

अध्याय ७५-९६

दुःशासन को मारकर भीम का उसके रक्त को पीना, कर्ण-वध

सञ्जय बोले—'लौटकर अर्जुन फिर कौरव सेना का संहार करने लगे। भीम पहले से ही शत्रुओं का नाशकर रहे थे। उन्होंने दुर्योधन के अनेक भाइयों को, हज़ारों हाथियों तथा योद्धाओं को मारकर भूमि को रुण्ड-मुण्ड से पाट दिया। उन्होंने शकुनि को परास्त कर मूर्छित कर दिया। फिर दुःशासन से घोर युद्ध कर उसकी भुजा को उखाड़ कर उसके हृदय को फाड़ डाला और उसके रुधिर को मस्त होकर पिया। इस प्रकार उन्होंने द्रौपदी के अपमान के समय जो प्रतिज्ञा की थी उसे पूरा किया।

'उस समय कर्ण, शकुनि, अश्वत्थामा, दुर्योधन आदि दुःशासन की रक्षा के लिए प्राणपण से प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु सब के सामने ही, सब को ललकार कर, भीम ने दुःशासन को मारकर उसका रक्त पान किया। उस समय भीम के विकराल रूप को देखकर कर्ण आदि सभी डर गये। कुछ समय बाद युद्ध करते-करते कर्ण के सामने ही

अर्जुन ने कर्णपुत्र वृषसेन को मार डाला। कर्ण को बड़ा दुःख हुआ। उसने भीषण वेग से अर्जुन के ऊपर आक्रमण किया। दोनों का भयंकर युद्ध होने लगा। आकाश में देव-गण, सिद्धगण तथा इन्द्र, ब्रह्मा आदि उस अद्भुत युद्ध को देखने के लिए आये। इन्द्र, ब्रह्मा आदि ने कह दिया कि इस युद्ध में अर्जुन ही विजयी होंगे।

'इसी समय अर्जुन का अश्रुतपूर्व पराक्रम देख अश्व-त्थामा ने दुर्योधन को अनेक प्रकार से समझाकर संधि कर लेने के लिए कहा। किन्तु दुर्योधन ने इस बात पर तनिक भी ध्यान न दिया।

'युद्ध करते-करते जब कर्ण के अनेक अस्त्रशस्त्र अर्जुन ने व्यर्थ कर दिये तो उसने उन पर नाग बाण छोड़ा। इस बाण में उस नाग ने प्रवेश किया था जिसकी माता को अर्जुन ने खाण्डव-वन-दहन के समय मारा था। पुराना बदला चुकाने के विचार से नाग उस बाण में प्रवेश कर अर्जुन को मारने के लिए चला। श्रीकृष्णजी ने सब बातें जानकर रथ को ऐसा दबाया कि घोड़े बैठ गये और रथ भूमि में धँस गया। नाग-बाण अर्जुन के किरीट को काटता हुआ निकल गया। श्रीकृष्णजी ने रथ को फिर से ऊपर निकाल लिया। वह नाग फिर लौटकर कर्ण के पास आया और उसने फिर नाग-बाण में प्रवेश कर अर्जुन को नष्ट

करना चाहा। किन्तु कर्ण ने यह कह उसे लौटा दिया कि मैं दूसरे के पराक्रम से अपने शत्रु को नहीं मारना चाहता। तब उस नाग ने स्वयं अर्जुन पर आक्रमण किया। किन्तु अर्जुन ने उसे मार गिराया।

'युद्ध करते-करते कर्ण ने अनेक बार अर्जुन को संकट में डाल दिया, उन्हें मूर्छित कर डाला। कर्ण भी अर्जुन के बाणों से घायल होकर मूर्छित हो गया। अर्जुन ने धर्म का ख़्यालकर उस समय अस्त्र-शस्त्र नहीं चलाये। तब श्रीकृष्णजी ने कहा—'इस प्रकार की दया-दुर्बलता धर्म के विरुद्ध है। शत्रु को नष्ट करना ही सबसे बड़ा धर्म है। प्रबल शत्रु को ऐसे समय में मारना चाहिए जब वह संकट में पड़ा हो। तुम कर्ण को मारो। अवसर न छोड़ो।'

'इसी समय शाप के कारण कर्ण के रथ का पहिया भूमि में धँस गया। कर्ण ने विकल होकर अर्जुन से कहा कि तुम तब तक अस्त्र-शस्त्र न छोड़ो जब तक कि मैं रथ का पहिया न निकाल लूँ, धर्म का यही तकाज़ा है कि ऐसे समय तुम मुझ पर अस्त्र-शस्त्र के प्रहार न करो। श्रीकृष्णजी ने हँसकर कहा—'हे कर्ण! संकट पड़ने पर तुम्हें धर्म की बात याद तो आई। रजस्वला द्रौपदी को भरी सभा में घसीट कर लाने और वस्त्र-हीन करते समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था? लाक्षागृह में पाण्डवों को जलाने

का प्रयत्न करते समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? कपट द्यूत खेलाकर पाण्डवों का सर्वस्व हरते समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? एक अकेले शस्त्र-रथ-हीन बालक अभिमन्यु को जब तुम छः महारथियों ने घेरकर मारा था तब तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ?'

'कर्ण ने लज्जा से सर नीचा कर लिया। फिर उसने धनुष लेकर अर्जुन और श्रीकृष्ण को बाणों से विकल कर दिया। अर्जुन मूर्छित हो गए, उनके हाथ से धनुष छूट गया। इस अवसर को उचित समझ कर्ण ने पृथ्वी से अपने रथ का पहिया निकालने का प्रयत्न किया। किन्तु बार-बार प्रयत्न करने पर भी पहिया भूमि से न निकला। इसी समय अर्जुन सचेत हो गये। श्रीकृष्णजी ने उनसे कहा कि रथ पर चढ़ने के पहले ही कर्ण का सर काट डालना उचित होगा। अर्जुन ने शीघ्रता से बाण चलाकर कर्ण के मुकुट, ध्वजा और सर को काट डाला। कर्ण के मरते ही कौरव सेना भागने लगी। शल्य ने दुर्योधन को कर्ण के मरने का समाचार सुनाया और अनेक प्रकार से समझाकर शान्त किया। दुर्योधन ने अपनी सेना को अनेक प्रयत्नों द्वारा लौटाना चाहा, किन्तु वह न लौटी। इधर अर्जुन, भीम, धृष्टद्युम्न आदि कौरव सेना को नष्ट कर रहे थे। अपनी सेना का इस प्रकार नष्ट होते देख शल्य के कहने से दुर्यो-

धन ने युद्ध बन्द कर दिया। इधर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने जाकर यह शुभ समाचार महाराज युधिष्ठिर को सुनाया। उन्होंने हर्ष से गद्गद होकर अर्जुन को गले से लगा लिया। फिर उन्होंने अनेक प्रकार से श्रीकृष्णजी की स्तुति करते हुए कहा कि आप ही की कृपा के कारण आज उस कर्ण का संहार हो सका जिसके कारण हम लोगों को इतने दिनों तक कष्ट भोगना पड़ा और जिसके बल-पराक्रम के भय से मैं आज तक सुख की नींद नहीं सो सकता था। फिर युधिष्ठिर सब को साथ लेकर रणभूमि में गए। कर्ण के मृत शरीर को देख उन्हें निश्चय हो गया कि उसके शरीर में प्राण शेष नहीं हैं। कर्ण के मारे जाने से पाण्डवों को बड़ा हर्ष हुआ।

कर्णपर्व समाप्त

महाभारत

शल्यपर्व

(शल्यवध पर्व)

अध्याय १-२९

शल्य सेनापति; शल्य तथा कौरव सेना का संहार

जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायनजी ने कहा—'कर्ण के मारे जाने पर सबकी सलाह से दुर्योधन ने राजा शल्य को सेनापति बनाकर भीषण युद्ध किया। शल्य भी अन्त में युधिष्ठिर के हाथ से मारे गये। दोनों ओर की अट्ठारह अक्षौहिणी सेना में से केवल दस व्यक्ति जीवित बचे और सब का संहार हो गया। सञ्जय ने जब यह समाचार आकर सुनाया तो धृतराष्ट्र विलाप करते हुए मूर्छित होकर गिरने लगे। सञ्जय ने उन्हें अनेक प्रकार से समझाकर शान्त किया और उनके पूछने पर युद्ध का हाल विस्तार से बतलाया।

सञ्जय बोले—'कर्ण के मरने पर कौरव सेना डर कर भागने लगी। किसी तरह से समझा-बुझाकर और

उत्साह दिलाकर दुर्योधन ने अपनी सेना को फिर से युद्ध के लिए लौटा ला। फिर घमासान युद्ध होने लगा। दोनों ओर के हज़ारों वीर युद्ध में कट-कट कर गिरने लगे। यह देखकर कृपाचार्य ने दुर्योधन को अनेक प्रकार से समझा कर संधि कर लेने को कहा। किन्तु दुर्योधन राज़ी न हुआ। उसने कहा कि पाण्डव इतना क्लेश सहने और अभिमन्यु आदि की मृत्यु हो जाने पर अब संधि न करेंगे; अपने अपमान के बाद से द्रौपदी कौरवों के नाश के लिए घोर तप करती हुई भूमि पर सो रही है, वह किसी प्रकार संधि न होने देगी; और इतना सब हो जाने पर मैं ही क्यों अपमानित होकर रहना पसन्द करूँगा; सन्धि असम्भव है। इस प्रकार युद्ध का निश्चय कर सन्ध्या समय दुर्योधन ने युद्ध बन्द कर दिया। युद्ध बन्दकर कौरवों ने युद्ध-भूमि से दो योजन की दूरी पर अरुणा-सरस्वती के तट पर जाकर विश्राम किया। वहाँ सब की सलाह से दुर्योधन ने राजा शल्य को सेनापति बनाया। इधर जब यह समाचार पाण्डवों को मालूम हुआ तो श्रीकृष्णजी ने युधिष्ठिर को समझाकर शल्य को मारने के लिए उत्साहित किया।

'प्रातःकाल होने पर अठारहवें दिन का युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों ओर की सेनाएँ व्यूह में सजकर युद्ध के लिए तैयार हुईं। घमासान युद्ध होने लगा। हज़ारों वीर कट

कर गिरने लगे। नकुल ने चित्रसेन, सुषेण और सत्यसेन नामक कर्ण के तीनों पुत्रों को मार डाला। शल्य ने पांडवों के हज़ारों वीरों का संहारकर डाला। भीमसेन का उनके साथ अनेक प्रकार से बहुत ही भीषण युद्ध हुआ। भीमसेन के देखते-देखते शल्य ने उनकी ओर के अनेकानेक वीरों को मार डाला। अन्त में महाराज युधिष्ठिर ने शल्य के साथ भीषण युद्ध कर उन्हें तथा उनके छोटे भाई को मार डाला। यह देख कृतवर्मा युधिष्ठिर को मारने के लिए आगे बढ़े, किन्तु हार कर उनको भागना पड़ा।

इसी बीच में शल्य की सेना के हज़ारों वीर युधिष्ठिर को घेर कर मारने लगे, किन्तु पाण्डव पक्ष के वीरों ने उन सब को बात-की-बात में मार गिराया। अपनी सेना को विचलित होते देख दुर्योधन ने शाल्व नामक म्लेच्छ-राज को पाण्डवों को मारने के लिए उत्साहित किया। शाल्व तथा उसके हाथी एवं सहायकों ने पाण्डवों की बहुत सी सेना को नष्ट कर डाला। अपनी सेना को विचलित होते हुए देख धृष्टद्युम्न ने शाल्व और उसके हाथी को मार डाला। पांचाल वीरों ने म्लेच्छ सेना का भी संहार कर डाला। भीम ने दुर्योधन के भाइयों को एक-एक करके नष्ट कर डाला। श्रीकृष्णजी के कहने से अर्जुन ने भीषण रूप से कौरवों की सेना का नाश करना आरम्भ किया। इधर

सहदेव ने शकुनि तथा उसके पुत्र उलूक को मार डाला। शकुनि के मरने पर उसके सैनिकों ने प्राणों की ममता छोड़कर पाण्डव सेना पर आक्रमण किया, किन्तु पाण्डव सेना ने सब कौरव सेना का संहार कर डाला। उस समय कृपाचार्य, कृतवर्मा, दुर्योधन, अश्वत्थामा को छोड़कर और दूसरा कोई कौरवों की ओर का न बच सका। उस समय पाण्डव सेना में दो हज़ार रथी, सात सौ गजारोही, पाँच हज़ार घुड़सवार और दस हज़ार पैदल शेष थे। धृष्ट-द्युम्न इतनी बड़ी सेना को लेकर दुर्योधन को युद्ध के लिए ललकार रहे थे। इधर दुर्योधन को जब अपनी ओर का कोई भी वीर जीवित न देख पड़ा, तब वे डर के मारे भाग खड़े हुए और व्यास सरोवर में गदा लेकर छिप गये।'

सञ्जय फिर कहने लगे—'धृष्टद्युम्न ने मुझे क़ैद कर लिया और शत्रु पक्ष का समझकर तलवार निकालकर वे मेरा सर काटने के लिए दौड़े। इसी समय व्यासदेव ने वहाँ प्रकट होकर धृष्टद्युम्न से कहा कि तुम सात्यकि को छोड़ दो। धृष्टद्युम्न ने व्यासदेव की आज्ञा पाकर मुझे छोड़ दिया। मैं कवच, शस्त्र आदि छोड़कर हस्तिनापुर की ओर चला। रास्ते में एक कोस के फ़ासले पर मुझे महाराज दुर्योधन मिले। अपनी सेना और बन्धुबान्धवों के संहार के कारण वे बहुत ही दुखी और उद्विग्न थे।

उन्होंने विलाप करते हुए कहा कि मैं अब इसी सरोवर में रहकर अपनी रक्षा करूँगा। यह कह तथा मुझे सबको समझाने और शान्त करने के लिए कहकर वे सरोवर में घुस गये और मंत्र द्वारा जल स्तम्भन कर उसीमें छिप रहे। कुछ दूर आगे चलने पर मुझे अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा मिले। उन्होंने मुझसे दुर्योधन का समाचार पूछा। मैंने उनसे सब हाल बतला दिया। वे तीनों कुछ देर तक उस सरोवर के पास जाकर विलाप करते रहे और फिर वहाँ से चले गये। इधर कौरव-सेना का संहार देख सेवकगण उनकी स्त्रियों को शिविर से हस्तिनापुर के महलों में ले गये। धृतराष्ट्र के पुत्र युयुत्सु भी सबका संहार देख श्रीकृष्णजी तथा युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर हस्तिनापुर गये उन्होंने धृतराष्ट्र, गान्धारी, विदुर को बहुत समझाया।

गदायुद्धपर्व

अध्याय ३०-३४

दुर्योधन सरोवर में, शठ को दमन का उपदेश, गदायुद्ध

सञ्जय बोले—'पाण्डव सेना विजयोत्सव मनाने लगी, किन्तु पाण्डवगण पूर्ण विजय प्राप्त करने के विचार से दुर्योधन को ढूँढ़ने लगे। बहुत खोजने पर भी जब दुर्योधन

धन का पता न लगा तब वे हारकर अपने शिविर में लौट गये और विश्राम करने लगे। पाण्डवों के चले जाने पर अश्वत्थामा आदि उस सरोवर पर आये और दुर्योधन को युद्ध के लिए उत्साहित करने लगे। किन्तु दुर्योधन ने कहा कि यह समय युद्ध के लिए उपयुक्त नहीं है, आज विश्राम करने के अनन्तर कल हम लोग शत्रुओं का संहार करेंगे।

'दुर्योधन और अश्वत्थामा में जो बातें हो रही थीं उन्हें भीमसेन को नित्य मांस पहुँचाने वाले बहेलियों ने सुना। उन्होंने चुपके से जाकर सारी बातें पाण्डवों से बतला दीं। पाण्डवगण प्रसन्न होकर सरोवर के पास आये। उनके आने की आहट पाकर अश्वत्थामा आदि जल्दी-जल्दी एक ओर चले गये, दुर्योधन भी सरोवर में छिप रहा।

'सरोवर के पास पहुँचकर युधिष्ठिर ने कहा कि दुर्योधन माया के बल पर इस सरोवर में छिपा हुआ बैठा है, किन्तु मैं इसका संहारकर अवश्य ही अपने राज्य को निष्कंटक बनाऊँगा। श्रीकृष्ण जी ने कहा—'शास्त्र की आज्ञा है कि छल करनेवाले को छल के द्वारा ही नष्ट करे। शठ का दमन शठता द्वारा ही किया जा सकता है। देवगण कौशल के द्वारा ही सदा अपने शत्रु दानवों का संहार करते आ रहे हैं। मैंने भी कौशल के द्वारा ही दुष्ट राक्षसों का संहार किया है। कौशल के द्वारा ही आज इन्द्र त्रिभु-

ब्रन का राज्य कर रहे हैं। जैसे भी हो शत्रुओं का नाश करना ही परमधर्म है। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी ने कौशल से ही रावण को उसके वंश-सहित नष्ट किया था। कौशल और उपाय ही सब से बढ़कर हैं।'

'पाण्डवों ने सरोवर के तीर जाकर दुर्योधन को जल से बाहर आकर युद्ध करने के लिए ललकारा। दुर्योधन ने विश्राम कर दूसरे दिन युद्ध करने के लिए कहा; फिर कहा—'अब मैं बन्धु-बांधव-हीन, इष्ट-मित्र-रहित इस पृथ्वी का राज्य नहीं करना चाहता। अब मैं तुम लोगों को राज्य देता हूँ, तुम लोग निष्कंटक राज्य भोगो।' युधिष्ठिर ने कहा—'इस समय राज्य देने की बात तो व्यर्थ प्रलाप है। इस समय तुम पृथ्वी के स्वामी नहीं हो। जब थे तब तुम पृथ्वी का एक कण तक देने को तैयार न थे। और मैं तुम से दान में पृथ्वी क्या, तीनों लोकों का राज्य भी लेने को तैयार नहीं हूँ। तुम जल से निकलकर युद्ध करो, जो जीते वह राज्य भोगे। सब का संहार कराकर और हम लोगों को नाना प्रकार के दुःख देकर अब कायरों की तरह तुम क्यों जल के भीतर छिपे बैठे हो?' अन्त में पाण्डवों के कटु वचन न सह सकने के कारण दुर्योधन इस शर्त पर जल से बाहर निकल आया कि मैं तुम लोगों में से किसी एक से गदा-युद्ध करूँगा और इस युद्ध में जो जीते वह

राज्य भोगे। युधिष्ठिर ने कहा—'इस समय तुम धर्म-युद्ध की और न्याय की बातें कर रहे हो। किन्तु अकेले, अस्त्र-रथ-रहित बालक अभिमन्यु को जब तुम छः महारथियों ने मिलकर मारा था उस समय धर्म और न्याय का विचार कहाँ चला गया था? जब हम लोगों के राज्य को हरने और प्राणों को लेने के लिए नाना प्रकार के अन्याय-पूर्ण उपाय किये थे तब तुम्हारी धर्म-बुद्धि कहाँ खो गई थी? तो भी हम तुम से धर्म-युद्ध करने के लिए तैयार हैं। तुम हम में से जिससे चाहो युद्ध करो। यदि तुम इस युद्ध में जीत गये तो राज्य के अधिकारी होओगे।'

'युधिष्ठिर की इस प्रतिज्ञा को सुनकर श्रीकृष्णजी को बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने कहा—'धर्मराज ने बिना समझे बड़ा भारी संकट मोल ले लिया। भीम की लोहे की मूर्ति बनवाकर दुर्योधन बराबर तेरह साल से नित्य गदायुद्ध का अभ्यास करता चला आरहा है। उससे गदा युद्ध में भीम भी नहीं जीत सकते, दूसरे की तो बात ही क्या है। बली पुरुष निपुण और कृती को परास्त नहीं कर सकता।' इन बातों को सुनकर भीम ने श्रीकृष्णजी से कहा कि मैं निश्चय ही दुर्योधन को गदा-युद्ध में मारूँगा। फिर उन्होंने युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर दुर्योधन को गदा-युद्ध के लिए ललकारा और अनेक कटुवचन कहे। दुर्योधन उत्तेजित हो,

भीम से युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। इसी समय तीर्थ-यात्रा से लौटकर वहाँ बलदेवजी आये।

अध्याय ३५-५४

बलदेवजी की तीर्थयात्रा, तीर्थों का वर्णन

जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायनजी बोले—'पुष्य नक्षत्र में जब श्रीकृष्णजी ने पाण्डवों को लेकर कुरुक्षेत्र के लिये प्रस्थान किया, तब बलदेवजी तीर्थ-यात्रा के लिए चल पड़े। वे पहले प्रभास क्षेत्र में गये। इसी प्रभास क्षेत्र में स्नान करने के कारण चंद्रदेव का क्षयरोग दूर हुआ था। पूर्वकाल में दक्षप्रजापति ने नक्षत्र-रूपिणी अपनी सत्ताइस कन्याओं का विवाह चन्द्रदेव के साथ कर दिया था। चन्द्र-देव रोहणी के सौंदर्य पर मुग्ध हो केवल उसी के साथ रहने लगे। यह देख उनकी दूसरी पत्नियों ने जाकर अपने पिता से शिकायत की। प्रजापति ने चन्द्रदेव को समझा कर सबके साथ समान व्यवहार करने को कहा, पर चन्द्र-देव वचन देकर भी वैसा न कर सके। तब दक्ष ने उन्हें शाप दिया कि तुम्हें क्षयरोग हो जाय। चन्द्रदेव क्षयरोग के कारण दिन-दिन छीजने लगे। तब देवगण के कहने से ब्रह्माजी ने उन्हें प्रभास क्षेत्र में स्नान करने को कहा।

अमावस के दिन प्रभासक्षेत्र में स्नान करने पर चंद्रदेव का रोग दूर हो गया। इसी स्थान पर अन्तःसलिला होकर सरस्वती निवास करती हैं।

'आगे बढ़कर बलदेवजी उदपान तीर्थ में गये। पूर्व समय में गौतम ऋषि के एकत, द्वित और त्रित नामक पुत्र हुए। एक बार तीनों भाई, यजमानों से बहुत से पशु पाकर, घर लौट रहे थे। संयोगवश त्रित अचानक कुए में गिर पड़े। उनके दोनों भाई, पशुओं के लोभ के कारण, उन्हें छोड़कर घर भाग गये। प्राणों को संकट में देख त्रित ने उसी कुए में देवगण का आह्वानकर यज्ञ किया और सरस्वती के प्रभाव से वे बाहर निकल आये। तभी से वह स्थान पवित्र तीर्थ हो गया। वहाँ से चल बलदेव जी क्रमशः विनशन (जहाँ सरस्वती गुप्त हुई हैं) सुभूमिक, गंधर्व, गर्ग-स्त्रोत, नागधन्वा तथा सप्त-सारस्वत तीर्थों में गये। जहाँ सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, मनोरमा, ओघवती, सुरेणू और विमलोदका नामक सरस्वती की ये सात धाराएँ मिली हैं वहीं सप्त-सारस्वत तीर्थ है। पूर्व समय में इसी स्थान पर मङ्कणक ऋषि के द्वारा वायुवेग आदि उन सात ऋषियों की उत्पत्ति हुई जिनसे मरुद्‌गण की उत्पत्ति हुई। मङ्कणक ऋषि की अंगुली एक बार अचानक कट गई। उसमें से रुधिर के स्थान पर शाक-रस बहते

देख ऋषि प्रसन्न हो नाचने लगे। तीनों लोकों को बड़ा कष्ट हुआ। तब शिवजी ने ब्राह्मण के रूप में प्रकट हो मङ्कणक को अपनी अंगुली काटकर उससे रुधिर के स्थान पर श्वेत भस्म निकालती हुई दिखलाकर शान्त किया। वहाँ से बलदेवजी कपालमोचन तीर्थ में गये। पूर्व समय में एक ऋषि की जाँघ में एक राक्षस का सर चिपक गया, इस तीर्थ में स्नान करने पर उस सर से ऋषि का छुटकारा हुआ था, इस कारण इस तीर्थ का नाम कपालमोचन पड़ा। इसी तीर्थ में तपकर राजा सिन्धुद्वीप, राजा देवापि और विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए थे।

बलदेवजी आगे चलकर अवाकीर्ण तीर्थ में पहुँचे। पूर्व समय में वक-दाल्भ्य ऋषि ने अपने सब पशु याचक ब्राह्मणों को दे दिये थे। फिर उन्होंने अग्नि-होत्र के लिए पाञ्चाल देश के राजा धृतराष्ट्र से गायें चाहीं। धृतराष्ट्र ने उन्हें कुछ मरे हुए पशु दिये। ऋषि उन मरे हुए पशुओं को लाकर इसी तीर्थ में उन्हीं पशुओं की आहुति देकर यज्ञ करने लगे। इस कारण धृतराष्ट्र की प्रजा का संहार होने लगा। तब भय से विकल होकर राजा वकदाल्भ्य की शरण में गया। ऋषि ने दयाकर उसके राज्य का संहार बन्द कर दिया। इसी तीर्थ में बृहस्पति ने मांस का हवन कर देवगण को विजय दिलाई थी। वहाँ से बलदेवजी

ययाति तीर्थ में गये। इसी तीर्थ में यज्ञ तथा तपकर ययाति स्वर्ग को गये थे। वहाँ से बलदेवजी वशिष्ठवाह तीर्थ में पहुँचे। यहीं पूर्व काल में सरस्वती के एक ओर विश्वामित्रजी घोर तप कर रहे थे, और दूसरी ओर वशिष्ठजी। कुछ समय बाद ईर्ष्या के कारण विश्वामित्र ने सरस्वती से कहा कि तुम छल से वशिष्ठ को बहाकर मेरे पास लाओ। सरस्वती ने शाप के भय से सारा हाल वशिष्ठजी को बतला दिया। वशिष्ठजी ने कहा कि तुम मुझे बहाकर विश्वामित्र के क्रोध से अपनी रक्षा करो। यह सुनकर वशिष्ठजी को स्नान करते समय अपने वेग से बहा सरस्वती विश्वामित्र के स्थान की ओर ले गईं। किन्तु यह देखकर कि विश्वामित्र उन्हें मारने के लिए शस्त्र ढूँढ़ रहे हैं, सरस्वती वशिष्ठजी को बहाकर वहाँ से हटा ले गईं। यही छल देख विश्वामित्र ने सरस्वती को शाप दिया कि तेरा जल रुधिर हो जायगा। बाद में ऋषियों के प्रयत्न से सरस्वती का वह शाप दूर हुआ। पूर्व समय में इन्द्र ने नमुचि राक्षस से मित्रता कर यह प्रतिज्ञा की कि मैं तुमको कभी न मारूँगा। किन्तु अवसर पाकर उन्होंने नमुचि का सर काट डाला। इससे उन्हें मित्र-हत्या और विश्वासघात का पाप लगा। अरुणा-सरस्वती के संगम में स्नान करने से उनका यह पाप दूर हुआ। इसी स्थान पर देव-सेनापति बन कार्त्ति-

केय ने तारकासुर का वध कर संसार को सुखी किया था।

'वहाँ से आगे बढ़कर बलदेवजी ब्रह्मयोनि कौबेर तीर्थ, होते हुए बदरिपाचन तीर्थ में पहुँचे। इसी तीर्थ में भरद्वाज मुनि की कन्या श्रुतावती ने इन्द्र को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए घोर तप किया था और इन्द्र के कहने से बेरों को पकाने के लिए अपने पैर तक आग में जला दिए थे। इसी स्थान पर शिवजी को प्रसन्न करने की इच्छा से भूखी-प्यासी रहकर अरुन्धती बारह वर्ष बदरी फल को पकाने में लगी रहीं थी। इसी तीर्थ में श्रुतावती और अरुन्धती की मनोकामना पूर्ण हुई थी। वहाँ से चल अनेक-तीर्थों में होते हुए बलदेवजी आदित्यतीर्थ में पहुँचे। उसी तीर्थ में स्नान करने से असित-देवल और जैगीषव्य को सिद्धियाँ प्राप्त हुईं थीं। वहाँ से चलकर वे सारस्वत मुनि के तीर्थ में गये। पूर्व समय में महर्षि दधीचि के अंश को धारण कर सरस्वती ने सारस्वत नामक पुत्र को जन्म दिया था। इन्हीं दधीचि ऋषि की हड्डियों से वज्र बनाया गया था, जिससे इन्द्र ने वृत्रासुर आदि महाबली दैत्यों को मारा था। एक बार उस प्रान्त में बारह वर्ष तक अकाल रहा। अपने पुत्र सारस्वत मुनि को भोजन के बिना तड़पते हुए देख सरस्वती ने मछलियाँ दे-देकर उनका तथा उनके अनुयायियों का भरण-पोषण किया। सारस्वत वहीं नित्य

मछलियों से देव-ऋषि-पितरों को तृप्त करते हुए वेदों का स्वाध्याय करते रहे। भोजन के लिए व्यग्र रहने के कारण अन्य सभी ऋषि-मुनि वेदों को भूल गये थे। अकाल के बाद सब ने सारस्वत जी के पास आकर वेद पढ़ने चाहे। तब सारस्वत ने उनसे कहा कि आप लोग मेरे शिष्य बनकर नियमानुकूल वेदाध्ययन कीजिये। ऋषि-मुनियों ने कहा कि तुम हम लोगों से आयु में छोटे हो, हम तुम्हारे शिष्य कैसे बन सकते हैं। सारस्वत ने कहा कि शास्त्रों का मत है कि आयु के अधिक होने से, केशों के सफ़ेद हो जाने से, धन से अथवा बन्धु-बांधवों की अधिकता से कोई भी वृद्ध या बड़ा नहीं माना जा सकता; बड़ा और वृद्ध वही है जो धर्म में, विद्या में, ज्ञान में बड़ा हो। अन्त में साठ हज़ार ऋषि-मुनियों ने शिष्य बन कर सारस्वत जी से वेदाध्ययन किया।

'वहाँ से बलदेव जी वृद्धकन्यका तीर्थ में गये। पूर्व काल में कुणि ऋषि की एक मानसी कन्या ने एकाग्र मन से व्रत, अनुष्ठान, तप, देव-पितृ-आराधन करते-करते सारी आयु बिता दी। अंत समय नारद ने उससे कहा कि तुम्हारा विवाह-संस्कार नहीं हुआ है, इस कारण तुम किसी भी उत्तम लोक में नहीं जा सकतीं। वृद्ध-कन्या ने विवश होकर अपने तप का आधा भाग देने का वचन देकर गालव के पुत्र शृंगवान ऋषि से विवाह किया और एक रात

उनसे सहवास कर दूसरे दिन दिव्य लोक को चली गई।

'वहाँ से चलकर बलदेवजी समन्तपञ्चक क्षेत्र में आये। इस स्थान पर महाराज कुरु ने पृथ्वी को जोतकर यह वर प्राप्त किया था कि जो मनुष्य इस भूमि में आलस्य-हीन हो, निराहार रह तप द्वारा अथवा युद्ध में प्राण त्याग करेंगे वे स्वर्ग में जायँगे। इसी कारण इस स्थान का नाम कुरुक्षेत्र पड़ा। वहाँ से बलदेवजी दिव्य आश्रम में गये। इस स्थान पर शाण्डिल्य ऋषि की बाल-ब्रह्मचारिणी वृद्धातपस्विनी कन्या ने तप के द्वारा दिव्य लोक प्राप्त किये थे। वहाँ से बलदेवजी हिमालय के ऊपर प्लक्षप्रस्तवण तथा मित्रा-वरुण तीर्थ में गये। वहाँ उन्हें नारद के द्वारा महाभारत के समाचार मिले। वे अपने शिष्य भीम-दुर्योधन का गदा-युद्ध देखने के लिए शीघ्रतापूर्वक द्वयपायन-हृद पर गये।

अध्याय ५५-६३

भीम का दुर्योधन की जाँघें तोड़ना, गांधारी को समझाना

वैशम्पायनजी बोले—'बलरामजी के आने पर पाण्डव आदि ने आदर से उनका अभिवादन किया। सब को लेकर वे समन्तपञ्चक गये। वहाँ भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध प्रारंभ हुआ। भीषण युद्ध होने लगा। श्रीकृष्णजी

ने युद्ध की प्रगति देख कहा—'भीम में बल अधिक है। किन्तु दुर्योधन अभ्यास तथा निपुणता में भीम से बढ़कर है। न्याय-पूर्वक युद्ध करके भीम किसी तरह भी दुर्योधन से पार नहीं पा सकते। पहले देवगण ने कौशल के द्वारा ही असुरों को हराया था। इन्द्र ने भी माया के द्वारा ही वृत्रासुर आदि को नष्ट किया था। इस समय दुर्योधन को मारने के लिए माया का आश्रय लेना आवश्यक है। जुए के समय भीम ने दुर्योधन की जाँघ को तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी। इस समय भीम वही प्रतिज्ञा पूरी करें। मायावी दुर्योधन को माया से ही नष्ट करें।' श्रीकृष्णजी के कहने से अर्जुन ने भीम को दिखाकर जाँघ पर हाथ मारा। भीम समझ गये। उन्होंने मौका पाकर दुर्योधन की जाँघों में गदा मारी। दुर्योधन की जाँघें टूट गईं। वह धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा। भीम पुराने अपकारों का वर्णन कर अपने बायें पैर से दुर्योधन के सर को ठुकराने लगे। यह देख युधिष्ठिर ने उनकी भर्त्सनाकर उन्हें रोका। फिर दुर्योधन के पास जाकर दीन भाव से आँसू टपकाते हुए वे उसे समझाने लगे। इसी समय भीम के अन्याय और दुर्व्यवहार से उत्तेजित होकर बलदेवजी भीम को मारने दौड़े। श्रीकृष्णजी ने उन्हें रोककर समझाते हुए कहा—'आप जानते ही हैं कि प्रतिज्ञा-पालन क्षत्रिय का धर्म है।

भीम ने द्रौपदी के अपमान के समय भरी सभा में दुर्योधन की जाँघों को तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी। भीम ने आज उसी प्रतिज्ञा को पूरा किया है। इस कारण उनका यह कार्य दोषयुक्त या अनुचित नहीं कहा जा सकता। शास्त्रों में अपनी वृद्धि, अपने मित्र की वृद्धि, अपने शत्रु का क्षय, अपने मित्र के शत्रु का क्षय, ये सभी कार्य एक समान उन्नतिदायक माने गए हैं। बुद्धिमानों का नियम है कि वे जब अपनी या अपने मित्र की अवनति अथवा हानि के कोई कारण देखते हैं तो उसे अपने लिए अहितकर और दुःख का कारण जानकर शीघ्र ही उनके प्रतिकार का यत्न करते हैं। पाण्डव हमारे सम्बन्धी, शुभचिन्तक, मित्र और अनुगत हैं। दुर्योधन ने सदा उनके साथ अन्याय और कपट-व्यवहार किया है। आज पाँसे पलट गये। पाण्डवों का अभ्युदय हमारा ही अभ्युदय है। आप क्रोध शान्त करें। अब कलियुग आ गया है, इस कारण आप इस थोड़े से अन्याय को इस समय क्षमा कर दें।'

'श्रीकृष्णजी के समझाने पर भी बलराम शान्त न हुए। क्रोध में भरे हुए वे रथ पर बैठकर द्वारका को चले गये। युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी से कहा कि भीम का यह कार्य मुझे भी अच्छा नहीं लगा। इधर पांचालगण तथा अन्यान्य वीरगण भीम की प्रशंसा और दुर्योधन की निन्दा करने

लगे। तब श्रीकृष्णजी ने सबसे कहा कि मृतप्राय शत्रु को कठोर वचन कहकर दुखी करना उचित नहीं है; बड़े भाग्य की बात है कि यह पापी आज अपने इष्ट-मित्रों सहित मारा गया। यह सुनकर दुर्योधन ने श्रीकृष्णजी से कहा—'हे कंस के दास के पुत्र! यह सब तेरी ही करतूत का फल है। तू बराबर अन्याय, अधर्म, कूटनीति के द्वारा वीरों का नाश करता आ रहा है। तुझे अपने कृत्यों पर लज्जित होना चाहिए।' श्रीकृष्णजी ने पाण्डवों तथा द्रौपदी के साथ किये गये अन्याय और अत्याचारों का वर्णनकर कहा कि तू अपने ही दोषों से इस गति को प्राप्त हुआ है; बृहस्पति और शुक्र का मत है कि शठ से शठता करना अनुचित नहीं होता, बल्कि कर्तव्य होता है। दुर्योधन ने कहा कि मैं तो वीरगति को पाकर स्वर्ग को जा रहा हूँ, तुम लोगों की अब शोचनीय दशा होगी। दुर्योधन की झिड़की से पाण्डवों को उदास देख श्रीकृष्णजी ने उन्हें समझाकर कहा—'यदि मैं कौशल से काम न लेता तो तुम लोग कदापि विजय, राज्य और लक्ष्मी न पा सकते। छल-कौशल से अपने शत्रुओं को मारना अनुचित नहीं है। पूर्व समय में देवगण तथा धर्मात्मा राजाओं ने कौशल तथा कूटनीति के द्वारा ही अपने शत्रुओं का नाश किया था। तुम सोच मत करो।'

'इस प्रकार पाण्डवों को समझाकर श्रीकृष्णजी उन्हें शिविर में लेगये। वहाँ श्रीकृष्णजी ने अर्जुन से कहा कि तुम मेरे उतरने के पहले ही गाण्डीव धनुष और अक्षय तर्कस लेकर रथ से उतर जाओ। अर्जुन के उतरते ही श्रीकृष्णजी भी रथ से कूद पड़े। उनके उतरते ही रथ देखते-देखते भस्म होगया। सब को आश्चर्य-चकित देख श्रीकृष्णजी ने कहा कि भीष्म, द्रोण आदि के अस्त्रों के कारण यह रथ बहुत पहले ही भस्म हो जाता, किन्तु मैं अर्जुन की रक्षा का भार लिये हुए था, इस कारण मैं इसे अभी तक बचाये रहा।

'दुर्योधन के शिविर में पाण्डवों को असंख्य धन, रत्न और मूल्यवान पदार्थ मिले। उन सबको लेकर तथा सब पर अपना आधिपत्य स्थापितकर पाण्डव अपने शिविर में गये। वहाँ ठीक व्यवस्था करने के अनन्तर पाण्डवगण श्रीकृष्णजी के कहने से शिविर को छोड़कर सरस्वती की शाखा के किनारे रात बिताने के लिए चले गये। युधिष्ठिर ने वहाँ पहुँचकर गान्धारी के शाप के भय से डर कर श्रीकृष्णजी को उन्हें समझाने के लिए भेजा। श्रीकृष्णजी ने महलों में पहुँचकर व्यासदेव, धृतराष्ट्र और गान्धारी के पैर छूकर उन्हें प्रणाम किया। फिर शिष्टाचार के लिए आँसू बहा, विलापकर उन्होंने धृतराष्ट्र को समझाकर कहा कि अब पाण्डव ही आपके पुत्र हैं; वे सदा आप पर

श्रद्धा-भक्ति करते रहे हैं और आपको सुखी-सन्तुष्ट रखने के लिए प्रयत्नशील हैं। वे अपने अपकारी शत्रुओं का नाश करके भी पछता रहे हैं। आप लोगों की दशा का विचार कर वे लोग बहुत ही लज्जित और दुखी हैं।

फिर श्रीकृष्णजी ने गान्धारी को समझाते हुए कहा—'हे पतिव्रता-शिरोमणि ! इस समय पृथ्वी पर आपके समान पतिव्रता, गुणवती, बुद्धिमती, तपस्विनी स्त्री दूसरी नहीं है। आपकी बातों को न मानने के कारण ही दुर्योधन की यह दशा हुई है। सब बातों को समझकर आप शोक करना छोड़ दीजिए। आप में इतना तपोबल है कि आप संसार भर को भस्म कर सकती हैं। पाण्डव आपके आज्ञाकारी पुत्र हैं। आप उन पर कृपा-दृष्टि रक्खें। उनके विनाश की इच्छा न करें। गान्धारी ने भरे हुए गले से कहा कि दारुण पुत्र-शोक ने मेरी बुद्धि को विचलित कर दिया था। मैं यदि आपका उपदेश न सुनती, तो पाण्डवों का अनिष्ट कर डालती। अब हम लोगों का भार वीर पाण्डवों पर ही है। यह कहकर गान्धारी बिलख-बिलखकर रोने लगी। श्रीकृष्णजी ने धृतराष्ट्र और गान्धारी को समझा-बुझाकर शान्त किया। फिर उन्होंने बतलाया कि अश्वत्थामा ने आज रात को पाण्डवों को मार डालने की प्रतिज्ञा की है। धृतराष्ट्र और गान्धारी ने व्याकुल हो उन्हें पाण्डवों

की रक्षा के लिए विशेष रूप से सतर्क कर जल्दी से विदा-कर दिया। श्रीकृष्णजी पाण्डवों के पास लौट आये।

अध्याय ६४-६५

दुर्योधन का विलाप, अश्वत्थामा की प्रतिज्ञा

सञ्जय बोले—'सब के चले जाने पर दुर्योधन पिछली बातों को यादकर विलाप करने लगे। इसी समय अश्व-त्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा वहाँ आये और दुर्योधन की दशा से दुखी हो विलाप करने लगे। तब दुर्योधन ने उन्हें शान्त कर कहा कि मैं तो युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ हूँ, इस कारण मेरे लिए शोक करना व्यर्थ है; यदि आप मुझे प्रसन्न करना चाहते हैं तो जाकर शत्रुओं का संहार कीजिये। यह कह उसने सेनापति के पद पर अश्वत्थामा की नियुक्ति की। अश्वत्थामा ने प्रतिज्ञा की कि मैं आज रात को पांचालों और पाण्डवों का संहार कर डालूँगा। फिर वे तीनों दुर्योधन से विदा हो एक ओर चले गये। दुर्योधन वहीं पड़े-पड़े रात विताने लगे।

शल्यपर्व समाप्त

महाभारत

सौप्तिक पर्व

अध्याय १-६

अश्वत्थामा का शिव को प्रसन्न कर पाण्डव-सेना का संहार करना, दुर्योधन की मृत्यु

सञ्जय बोले—'अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा दुर्योधन के पास से चलकर एक घोर वन में गये और वहाँ सन्ध्योपासन आदि के अनन्तर विश्राम करने लगे। कृपाचार्य और कृतवर्मा तो थके रहने के कारण भूमि में पड़ते ही सो गये, किन्तु अश्वत्थामा को चिन्ता के कारण नींद न आई। रात हो गई। एक पेड़ पर बहुत से कौवे निश्चिन्त होकर सो रहे थे। एक उल्लू चुपके से आया और उसने अपने शत्रु कौवों को एक-एक करके नष्टकर डाला। यह देख अश्वत्थामा के मन में यह विचार उठा कि आज रात को निश्चिन्त होकर सोते हुए पांचालों और पाण्डवों को नष्टकर डालना ही उचित होगा। उसने कृपाचार्य और कृतवर्मा को जगाया और उनसे अपने मन की बात बतला

कर शत्रु-संहार में सहायता चाही। कृपाचार्य और कृतवर्मा ने अनेक प्रकार से समझाकर अश्वत्थामा को इस कार्य से रोकना चाहा। उन्होंने दिन निकलने पर पाण्डवों से युद्ध करने की प्रतिज्ञा की। किन्तु अश्वत्थामा अपनी बात पर अड़ा रहा और अकेला ही पाण्डवों के शिविर की ओर चल दिया। कृपाचार्य और कृतवर्मा भी उसके पीछे-पीछे चले। शिविर के सामने पहुँचने पर अश्वत्थामा को वहाँ व्याघ्र-चर्म पहने एक बहुत ही विचित्र और भयंकर पुरुष देख पड़ा। अश्वत्थामा ने उसके ऊपर अनेकानेक अस्त्र-शस्त्र चलाये। किन्तु वे सब अस्त्र-शस्त्र उस पुरुष में जाकर लीन हो गये। यह देख अश्वत्थामा को बड़ा आश्चर्य हुआ। यह समझकर कि वे शिवजी हैं, उसने भक्तिभाव से स्तुतिकर तथा अपने शरीर की बलि देकर उन्हें प्रसन्न कर लिया। शिवजी ने उसे एक तलवार दी और पांचालों को नष्ट करने का वरदान दिया। अश्वत्थामा प्रसन्न होकर पांचालों के शिविर में घुस गया। कृपाचार्य और कृतवर्मा शिविर के द्वार पर अस्त्र-शस्त्र लेकर खड़े हो गये। अश्वत्थामा चुपके से धृष्टद्युम्न के पास जा पहुँचा। किन्तु धृष्टद्युम्न अश्वत्थामा के पैरों की आहट से जाग उठे। पर उनके सम्भलने के पहले ही अश्वत्थामा ने उन्हें पकड़कर नीचे गिरा दिया और उनके मर्म-स्थलों को

दबा दबाकर उन्हें मार डाला। उनके गों-गों शब्द को सुनकर स्त्रियाँ जाग पड़ीं और चिल्लाने लगीं। उनकी आवाज़ सुनकर सैनिकों ने और युधामन्यु ने अश्वत्थामा को पकड़ना चाहा। किन्तु अश्वत्थामा ने सब को मारकर गिरा दिया। फिर अश्वत्थामा ने पांचालों का संहार किया। कोलाहल से सोते हुए सैनिक जाग उठे। किन्तु नींद के कारण वे कुछ समझ न सके। कुछ भय के मारे बाहर भागने लगे। उन्हें कृतवर्मा और कृपाचार्य ने मार गिराया। पांचाल-शिविर में गड़बड़ी सुन द्रौपदी के पाँच पुत्र, शिखण्डी आदि उस ओर दौड़े आये। अश्वत्थामा ने उन सब का भी संहार कर डाला। इसी बीच में कृपाचार्य और कृतवर्मा ने शिविर के अनेक स्थानों में आग लगा दी। बची हुई पाण्डव सेना आग में जलकर, एक दूसरे को शत्रु समझने के कारण आपस ही में लड़कर, भड़के हुए हाथी-घोड़ों के पैरों के नीचे कुचले जाकर तथा अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा के अस्त्र-शस्त्रों के प्रहारों में पड़कर उस रात को नष्ट हो गई। सब सेना का संहारकर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा आपस में प्रसन्न होकर गले मिले। फिर वे तीनों इस सुखद समाचार को लेकर दुर्योधन के पास पहुँचे। वहाँ दुर्योधन को भूमि पर तड़पते और कुत्तों, गीदड़ों आदि से अपने को

बड़े कष्ट से बचाते हुए देख तीनों को बड़ा दुःख हुआ। वे तीनों विलाप करने लगे। फिर अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्न आदि के संहार की बात बतलाई। दुर्योधन ने आँखें खोल कर कहा कि जो काम भीष्म, कर्ण, गुरु द्रोणाचार्य नहीं कर सके, उसी को तुम लोगों ने कर दिखाया। तुम्हारी बात को सुनकर आज मैं अपने को इन्द्र के समान सुखी समझता हूँ। यह कहकर तथा अश्वत्थामा आदि को भेंट-कर दुर्योधन ने सुख से प्राण त्याग दिये। दुर्योधन की मृत्यु के बाद अश्वत्थामा आदि नगर की ओर चल पड़े।'

वैशम्पायनजी बोले—'पुत्र की मृत्यु की बात सुनकर धृतराष्ट्र शोक से व्याकुल होगये। इसी समय व्यास देव द्वारा दी गई सञ्जय की दिव्य दृष्टि भी नष्ट हो गई।'

ऐषीकपर्व

अध्याय १०-१८

द्रौपदी की प्रतिज्ञा, पाण्डवों का अश्वत्थामा से मणि लाना, अस्त्र-प्रयोग

वैशम्पायनजी बोले—'सबेरा होने पर धृष्टद्युम्न के सारथी ने जाकर युधिष्ठिर से सारा हाल बतलाया। युधिष्ठिर अचेत होकर गिर पड़े। फिर वे अपनी सेना

पुत्रों तथा धृष्टद्युम्न आदि के लिए विलाप करने लगे। कुछ देर बाद अपने को सम्भालकर उन्होंने नकुल से कहा कि पुत्रों और भाइयों के मरने के समाचार पाकर द्रौपदी को असह्य क्लेश होगा; तुम जाकर उसे तथा धृष्टद्युम्न आदि की स्त्रियों को समझा-बुझाकर ले आओ। नकुल को उधर भेजकर युधिष्ठिर उस जगह गये, जहाँ उनकी सेना का रात में संहार हुआ था। वहाँ की दशा देख युधिष्ठर मूर्छित होकर गिर पड़े। श्रीकृष्ण, सात्यकि आदि ने उन्हें सँभाला और समझा-बुझाकर शान्त किया। इसी बीच में द्रौपदी वहाँ आगई और अपने पुत्रों तथा भाइयों को मरा हुआ देख करुण स्वर में विलाप करने लगीं। भीम आदि ने उन्हें बहुत समझाया। तब द्रौपदी ने यह प्रतिज्ञा की कि यदि आज अश्वत्थामा न मारा गया तो मैं अपने प्राण दे दूँगी। युधिष्ठिर आदि ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया, किन्तु वे न मानीं। तब उनके कहने से नकुल को साथ लेकर भीम अश्वत्थामा को मारने के लिए चले।

'भीम के चले जाने पर श्रीकृष्णजी ने युधिष्ठिर से कहा कि अश्वत्थामा ब्रह्मशिरा अस्त्र को जानता है और स्वभाव उसका बहुत ही खराब है। एक बार वह द्वारका गया था और मुझे वचन-बद्ध कर उसने मेरे सुदर्शन-चक्र को लेना चाहा था। मैंने उससे कहा कि मेरा जो अस्त्र तुम

चाहो, ले लो। वह मेरे अस्त्र लेने लगा। किन्तु वह मेरे चक्र तथा अन्यान्य अस्त्रों-शस्त्रों को उठा तक न सका। इस कारण उदास होकर शिवजी की आराधना के लिए चला गया। उससे भीम को बहुत हानि हो सकती है। यह कह श्रीकृष्णजी अपने रथपर अर्जुन आदि को लेकर, शीघ्रता से, भीम की रक्षा के लिए चले। रास्ते में उन्होंने भीम को समझा-बुझाकर लौटालना चाहा, पर भीम न लौटे। आगे जाकर भीम ने अश्वत्थामा को मुनि-वेष बनाये व्यास-देव के सामने बैठे देखा। वे उसे ललकार कर आगे बढ़े। भीम को तथा उनके पीछे अर्जुन, युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण आदि को आते देख अश्वत्थामा ने पाण्डवों को नष्ट करने के उद्देश्य से ब्रह्मशिरा नामक संसार भर को भस्म कर डालने वाला महा-अस्त्र छोड़ा। प्राणों पर संकट आता देख श्री कृष्णजी के कहने से अर्जुन ने भी ब्रह्मशिरा अस्त्र छोड़ा। दोनों अस्त्रों के तेज से तीनों लोक जलने लगे। उसी समय देवर्षि नारद और महर्षि वेदव्यासजी ने उन भयंकर अस्त्रों के बीच में आकर कहा कि इसके पहले किसी भी महारथी ने इस अस्त्र का प्रयोग मनुष्य पर नहीं किया है।

'अर्जुन ने ऋषियों को सहसा बीच में देख, हड़बड़ा-कर यह कहते हुए शीघ्रता से अपने अस्त्र को वापस कर लिया कि मैंने तो अपने तथा अपने भाइयों के प्राण बचाने

के लिए ही अश्वत्थामा के अस्त्र को शान्त करने के विचार से इस अस्त्र को चलाया था। अर्जुन को छोड़कर इन्द्र में भी ब्रह्मशिरा अस्त्र को लौटा लेने की शक्ति नहीं थी। अर्जुन ने जब अपना शस्त्र लौटा लिया तब व्यासजी ने अश्वत्थामा से अपने अस्त्र को लौटा लेने को कहा। अश्वत्थामा ने कहा कि भीम ने अधर्मपूर्वक राजा दुर्योधन की जाँघें तोड़कर उनके सर को ठुकराया था। और अब ये लोग मेरे प्राणों को लेने के लिए आये हैं। इस कारण अपने प्राणों की रक्षा के विचार से मैंने ब्रह्मशिरा अस्त्र को चलाया है। मैं भी अब इस अस्त्र को लौटाने की शक्ति नहीं रखता।

'पाण्डवों के प्राण संकट में देख व्यासदेव ने अश्वत्थामा को बहुत समझाया। तब अश्वत्थामा ने कहा कि पाण्डवों के प्राण तो मैं बचाये देता हूँ; किन्तु इस अस्त्र से उत्तरा के गर्भ का बालक पाण्डवों का वंशधर नष्ट हो जायगा। उत्तरा के गर्भ के बालक पर ब्रह्मशिर का प्रहार होते देख श्रीकृष्णजी बहुत बिगड़े। उन्होंने अश्वत्थामा से कहा—'तुम नीच प्रकृति के हो, इस कारण तुम कोढ़ी होकर तीन हज़ार वर्ष तक दुःख भोगते हुए निर्जन स्थानों में घूमोगे। तुम से कोई बात तक न करेगा। तुम्हारा यश और तेज नष्ट हो जायगा। उत्तरा का बालक मरा हुआ ही पैदा होगा। इस प्रकार ब्रह्मशिर अस्त्र का महत्व बना

रहेगा। किन्तु मैं अपने योगबल से उसे जिला दूँगा। उसी प्रतापी बालक से वंश चलेगा।'

'व्यासदेव ने अश्वत्थामा से कहा कि तुमने घोर पाप किया है, इस कारण श्रीकृष्ण जी के वचन सत्य होंगे। अश्वत्थामा ने कहा कि मैं आप के साथ रहकर अपने इस शापपूर्ण जीवन को बिता दूँगा। इसके बाद भीम ने अश्वत्थामा के माथे से दिव्य मणि निकाल ली। उस मणि का गुण था कि वह जिसके पास हो उसे शस्त्र, भूख, प्यास, रोग आदि की बाधा तथा देव, दानव, नाग, राक्षस, चोर आदि से भय नहीं हो सकता था।

'उस मणि को लेकर ऋषियों के साथ पाण्डव द्रौपदी के पास लौट आये। सब ने दौपदी को मणि देकर तथा अश्वत्थामा को मृतप्राय बतलाकर अनेक प्रकार के उपदेशों द्वारा शान्त किया। द्रौपदी ने उस मणि को युधिष्ठिर के माथे पर लगाकर अन्न-जल ग्रहण किया।

'युधिष्ठिर के यह पूछने पर कि अकेले अश्वत्थामा ने इतने बड़े-बड़े महारथियों का संहार कैसे कर डाला, श्रीकृष्णजी ने कहा—'उसने देवदेव शंकर की आराधना कर उनसे दिव्य शक्ति प्राप्त की थी। उसी के कारण वह ऐसा दुष्कर कार्य कर सका। शिव भगवान सर्व शक्तिमान हैं। उन्हीं से सारे जगत् की सृष्टि होती है और उन्हीं

में यह सारा संसार लीन हो जाता है। सृष्टि के आदि में ब्रह्माजी ने सृष्टि उत्पन्न करने के विचार से शिवजी का आह्वान किया। शिवजी प्रकट हुए। ब्रह्माजी ने उनसे सृष्टि उत्पन्न करने को कहा। सृष्टि उत्पन्न करने के पहले शिवजी ने जल में प्रवेश कर तप करना प्रारंभ किया। यह देख ब्रह्मा ने एक और देव को उत्पन्न कर उनसे सृष्टि उत्पन्न कराई। बाद में जब शिवजी तप करके निकले तो चराचर जगत को देख उन्होंने पृथ्वी में अपनी उत्पादक इंद्रिय की शक्ति स्थापित कर अन्न तथा ओषधियों द्वारा प्राणियों के भोजन की वृद्धि की। फिर वे पर्वत पर तप करने चले गये। इधर देवगण ने यज्ञ की कल्पना कर अपने-अपने भाग निश्चित कर लिये। शिवजी का भाग किसी ने भी न रक्खा। यह देख शिवजी ने क्रोधकर यज्ञ को बाण से मारा तथा सब देवगण को हराकर भगा दिया। यज्ञ के विध्वंस होने पर देवगण शिवजी की शरण में गये। तब शिवजी ने फिर से यज्ञ की स्थापना की। यज्ञान्त में शिवजी के भाग की कल्पना की गई। समस्त विश्व के उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाले उन्हीं देवदेव शंकर से शक्ति प्राप्तकर अश्वत्थामा ने रात को ऐसा घोर कर्म किया था।

सौप्तिक पर्व समाप्त

महाभारत

स्त्रीपर्व

(जलप्रादानिक पर्व)

अध्याय १-१४

धृतराष्ट्र को समझाना, संसार-कूप, लोक-संहार, धृतराष्ट्र के आलिंगन से लोहे के भीम नष्ट, गांधारी के कोप से युधिष्ठिर के नख काले

वैशम्पायनजी बोले—'दुर्योधन तथा समस्त कौरव-सेना के संहार संबंधी समाचारों को सुनकर वृद्ध धृतराष्ट्र विलाप करते हुए शोक करने लगे। उन्हें विकल देख सञ्जय ने अनेक प्रकार से समझाकर उन्हें शान्त करना चाहा। फिर परम ज्ञानी विदुरजी ने धर्म का उपदेश देकर तथा शरीरधारियों को नश्वर बतलाकर धृतराष्ट्र से कहा—'मरे हुए प्राणियों के लिए शोक करना व्यर्थ है। जो जन्म लेता है वह एक-न-एक दिन मरता ज़रूर है। शरीर के नष्ट होने से आत्मा का नाश नहीं होता। जैसे मनुष्य पुराने कपड़ों को छोड़कर नये कपड़े पहनता है, उसी तरह आत्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में प्रवेश

करता है। इसमें शोक करने की बात ही क्या है। जीव माता की योनि में आकर जन्म लेता है, गर्भ के क्लेशों को भोगता है, बचपन की यातनाओं को सहता है, युवा होकर भोगविलास में समय व्यतीत करता है और अन्त में मर कर कर्मानुसार दूसरा शरीर धारण करता है। उसके लिए शोक करना व्यर्थ है।

'एक ब्राह्मण एक घोर वन में जा फँसा। वहाँ उसे एक भयावह स्त्री लिपट गई। भयंकर जीव-जन्तुओं के भय से भागकर वह एक अँधेरे कुएँ में गिर गया। वह एक वृक्ष की जड़ों को पकड़े उसी कुएँ में नीचे सर और ऊपर पैर किये लटका रहा। उस कुएँ के नीचे एक भीषण नाग बैठा था। ऊपर छः मुख और बारह चरणों वाला एक मस्त हाथी उस ओर बढ़ा चला आरहा था। उस वृक्ष की लता से मधुमक्खियों के छत्ते का मधु टपककर बीच-बीच में उस ब्राह्मण के मुख में पड़ता जाता था। उसी के स्वाद के लालच से ब्राह्मण बराबर उसी प्रकार नीचे लटके रहकर मधु को चखते रहना चाहता था। जिस जड़ को वह पकड़े था उसे काले और सफेद रंग के दो चूहे काट रहे थे। मधुमक्खियाँ उसे डंक मार रही थीं। किन्तु ब्राह्मण मधु के स्वाद के लोभ में वहीं उलटा लटका रहा।

'यही संसार-रूप अथवा भवाटवी का रूपक है।

इस का स्पष्ट अर्थ इस प्रकार है। संसार ही यह वन है। व्याधियाँ साँप हैं। वृद्धावस्था ही घोर रूपिणी स्त्री है। मनुष्य-शरीर ही अंधकूप है। काल ही नीचेवाला सर्प है। छः ऋतु और बारह महीनों वाला वर्ष ही भयंकर हाथी है। आयु क्षीण करने वाले दिन-रात ही काले-सफ़ेद चूहे हैं। विविध इच्छाएँ ही मधुमक्खियाँ हैं। जीवन की आशा ही लता है। विषय-सुख-भोग ही मधु की मधुर धाराएँ हैं, जिनके सेवन से मनुष्य को तृप्ति नहीं होती। यही संसार चक्र का रूपक है। आप इस अंधकूप के रूपक को समझ कर तथा नश्वर शरीर का, एवं उसके बंधनों, नातों का मोह छोड़कर शोक-सागर के पार लगिये। सभी की अन्तिम गति मृत्यु है। आप ज्ञान द्वारा अपने को सँभालिये।'

व्यासदेव ने भी आकर धृतराष्ट्र को अनेक प्रकार से समझाया और कहा—'मनुष्य अनित्य और क्षणभंगुर है। मृत्यु अनिवार्य है। इसमें इतने शोक की क्या बात है। पूर्व समय में भार के कारण पृथ्वी ने व्याकुल होकर देव गण से कुछ उपाय करने की प्रार्थना की थी। तब विष्णु भगवान ने यह व्यवस्था की थी कि एक राजा युद्ध का आयोजन करके पृथ्वी का भार हलकाकर देगा। दुर्योधन वही राजा था। इस नर-संहार और कौरवकुल के नाश का आयोजन पहले ही हो गया था। दैव की इच्छा को कौन

टाल सकता है। राजसूय यज्ञ के अवसर पर मैंने तथा देवर्षि नारद ने युधिष्ठिर से इन बातों की चर्चा की थी। वे सदा इसी टालने के प्रयत्न में लगे रहे, पर होनी को न मेट सके। दुर्योधन लोक-संहार के लिए ही उत्पन्न हुआ था। जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा भी हो जाती है; जैसा स्वामी होता है उसी गुण-स्वभाव के नौकर-चाकर भी हो जाते हैं। दुर्योधन के कारण ही उसके अनुयायियों में कलह-प्रियता बढ़ गई थी। उसीका यह परिणाम है। पुत्र-शोक को दूरकर तुम पाण्डवों को ही अपने पुत्र मानो।'

'व्यासदेव के समझाने से धृतराष्ट्र के शोक का वेग कम हो गया। वे विलाप करती हुई गांधारी तथा कौरव कुल की अन्यान्य स्त्रियों को लेकर रणभूमि की ओर चले। रास्ते में उन्हें अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा मिले। तीनों ने दुर्योधन के बल, वीर्य, कौशल, रणचातुरी, दृढ़ता, साहस आदि की प्रशंसा कर धृतराष्ट्र तथा गांधारी को धैर्य बंधाया। फिर कृतवर्मा द्वारका को, कृपाचार्य हस्तिनापुर को और अश्वत्थामा व्यासजी के आश्रम को चले गये।

'आगे चलने पर उन्हें पाण्डव तथा श्रीकृष्णजी मिले। उनको सबने प्रणाम किया।' धृतराष्ट्र ने अनमने होकर युधिष्ठिर को गले से लगाया। फिर वे आवेश में आकर भीम को खोजने लगे। उनकी चेष्टा से सशंकित

होकर श्रीकृष्णजी ने एक लोहे की मूर्ति को आगे बढ़ाकर कहा कि लीजिये ये भीम हैं इन्हें आलिंगन कीजिये। धृतराष्ट्र ने उस मूर्ति को भीम समझकर इतने जोर से दबाया कि वह चूरचूर होगई। तब यह समझकर कि भीम नष्ट हो गये, धृतराष्ट्र का क्रोध शान्त हो गया। वे भीम के लिए विलाप करने लगे। यह देख श्रीकृष्णजी ने कहा—'आप शोक न करें। भीम जीवित हैं। मैंने पहले ही आपके मन के भाव ताड़ लिये थे, इसी कारण मैंने भीम को लोहे की वह मूर्ति आपके सामने पेश की थी जिसे दुर्योधन ने गदा-युद्ध के अभ्यास के लिए तेरह वर्ष पहले बनवाई थी। आपने उसीको चूर-चूर कर दिया है। अब आप भीम पर तथा अन्य पाण्डवों पर दया, ममता, स्नेह का भाव रक्खें।' धृतराष्ट्र ने कहा कि अब मेरे धर्म के पुत्र और स्नेह के पात्र पाण्डव ही हैं।

'फिर पाण्डव गांधारी के पास गये। पुत्र-शोक से व्याकुल होकर गांधारी उस समय उन्हें शाप देने को उद्धत हुई। उनके इस विचार को योगबल से जानकर व्यासदेव वहाँ प्रकट हुए और गांधारी को समझाकर बोले—'युद्ध के समय अनेक बार दुर्योधन ने तुमसे आशीर्वाद माँगा, किन्तु हर बार तुमने उससे कहा था कि 'जिधर धर्म है उधर ही विजय होगी।' पाण्डवों ने तुम्हारे उसी

आशीर्वाद के अनुसार धर्मपूर्वक विजय प्राप्त की है। अब तुम पाण्डवों को ही अपने पुत्र समझो।'

गांधारी ने विनय-पूर्वक कहा—'मैं पुत्र-शोक से आपे में न थी। अब मैं पाण्डवों की उसी प्रकार रक्षा तथा हित-कामना करूँगी जैसे इनकी माता कुन्ती करती हैं। दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्ण के कारण ही यह काण्ड हुआ है। मैं पाण्डवों को दोष नहीं देती।'

भीम ने डरते-डरते गांधारी से कहा कि आप मेरे अपराध क्षमा करदें; क्योंकि मैंने प्रतिज्ञा-पालन के लिए ही दुर्योधन की जाँघें तोड़ीं थीं और दुःशासन के रक्त-पात का आडम्बर किया था, वैसे मेरे मुँह के भीतर एक बूँद भी लोहू नहीं गया था। गांधारी ने कहा कि यदि तुम लोग मेरे किसी एक पुत्र को छोड़ देते, तो मैं किसी तरह धीरज धरती। फिर उनके बुलाने पर युधिष्ठिर डरते-डरते उनके सामने आये और हाथ जोड़कर बोले—'मैं अपराधी हूँ। आप मुझे शाप से भस्म करदें। अब मैं अपने इस शोक-ग्रस्त जीवन और रक्त से सने हुए राज्य को नहीं चाहता। मेरे कारण ही यह लोक-क्षय हुआ।

पुत्र-शोक से विह्वल गांधारी ने पट्टी के अन्दर से ही अपनी क्रोधपूर्ण दृष्टि युधिष्ठिर के सुन्दर नाख़ूनों पर डाली। तुरंत सब नाख़ून काले पड़ गये। यह देख सब

पाण्डव श्रीकृष्णजी की आड़ में छिप गये। उन्हें भय से व्याकुल देख गांधारी ने अपने क्रोध को शान्त कर लिया। पाण्डव शान्त हुए। इसी समय कुन्ती और द्रौपदी को विलाप करते देख गांधारी ने उन्हें समझाकर शान्त किया।

स्त्रीविलापपर्व

अध्याय १५-२४

गांधारी आदि का मृत आत्माओं को देखकर विलाप करना, गांधारी का श्रीकृष्णजी को शाप

वैशम्पायनजी बोले—'कुरुक्षेत्र की भूमि युद्ध में मारे हुए वीरों, हाथियों, घोड़ों आदि की लाशों से और टूटे हुए हौदों, रथों, अस्त्रों, शस्त्रों आदि से पटी हुई थी। गीदड़, गीध, कौए आदि किलोलें कर रहे थे। रक्त, अंतड़ियों, हड्डियों, कटे-फटे अंगों, मांस के लोथड़ों के कारण सारी भूमि बड़ी वीभत्सरूप धारण किये हुए थी। कुन्ती, गांधारी, द्रौपदी तथा कौरव कुल की हज़ारों स्त्रियाँ अपने-अपने पति, पुत्र, भाई आदि के लिए विलाप कर रही थीं। वे अपने-अपने आत्मीयों के अंगों को उठा-उठाकर, मुँह और भुजाओं को पोंछ-पोंछकर, उनके गुणों का वर्णन

करती हुई बिलख रही थीं। यह सब दृश्य एक-एक करके श्रीकृष्णजी को दिखलाती हुई गांधारी अपने पुत्रों, पौत्रों, सगे-संबंधियों के लिए विलाप करने लगीं। व्यासदेव की कृपा से उन्हें दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो गई थी, आँखों पर पट्टी बाँधे रहने पर भी उन्हें सब कुछ देख पड़ रहा था। मृतवीरों की लाशों से भरे हुए उस कुरुक्षेत्र में अपने पुत्र-पौत्रों के लिए विलाप करते-करते गांधारी का ज्ञान नष्ट हो गया, धैर्य छूट गया। उन्होंने इस सारे जन-संहार के लिए श्रीकृष्णजी को ही दोषी ठहराकर उन्हें शाप दिया कि जैसे कुरु-कुल की स्त्रियाँ अपने पति-पुत्रों के लिए विलाप कर रही हैं, उसी तरह यादवकुल की स्त्रियाँ भी अपने पति-पुत्रों के लिए विलाप करेंगी; छत्तीस वर्ष बाद सारे यदुवंशी आपस में ही लड़कर मर जायँगे और तुम्हें भी अनाथ की भाँति बुरी तरह वन में मरना पड़ेगा।

शोकाकुलित गांधारी के शाप को सुनकर भी श्रीकृष्ण जी विचलित न हुए। उन्होंने हँसकर कहा कि यदुवंश का नाश तो होना ही था, तुमने व्यर्थ में शाप देकर अपने तपो-बल को नष्ट किया। गांधारी सकुचकर शान्त हो गईं।

गांधारी के शाप और श्रीकृष्णजी के वचनों को सुन कर पाण्डव बहुत भयभीत हुए। उन्हें अपने जीवन की भी आशा न रही।

श्राद्धपर्व

अध्याय २५-२६

दाह-कर्म, तिलांजलि; कर्ण-जन्म की बात, स्त्री जाति को शाप

वैशम्पायनजी बोले—'विलाप करती हुई गांधारी को समझा-बुझाकर शान्त करने के अनन्तर श्रीकृष्णजी ने विदुर से सबका यथोचित दाह-कर्म करने को कहा। विदुर ने हज़ारों सेवकों को आज्ञा देकर प्रधान-प्रधान पुरुषों के लिए अलग-अलग चिताएँ बनवाईं और अन्य वीरों के लिए एक साथ दाह का प्रबंध किया।

इसी बीच में धृतराष्ट्र ने पूछा कि युद्ध में कितने वीर मारे गये? युधिष्ठिर ने कहा—'वनवास के समय महर्षि लोमशजी ने मुझे अप्रतिहत ज्ञान और दिव्य दृष्टि प्रदान की थी। उसी के कारण मुझे यह विदित है कि इस संग्राम में छाछठ करोड़ दस लाख बीस हज़ार वीर मारे गये हैं और चौबीस हज़ार एक सौ पैंसठ वीर युद्ध से भाग गये हैं। जिन लोगों ने प्रसन्नतापूर्वक सम्मुख समर में प्राण दिये हैं वे स्वर्ग को गये हैं।'

'सब का विधिवत् दाह-कर्म पुरोहितों द्वारा करा कर पाण्डव, धृतराष्ट्र आदि ने गंगा में जाकर मृत पुरुषों को तिलांजलि दी। उसी समय कुन्ती ने विलख-विलखकर

युधिष्ठिर से कर्ण के जन्म की कथा बतलाई और कहा कि वे तुम्हारे बड़े भाई थे, तुम उनका विधि-पूर्वक क्रिया-कर्म करो। युधिष्ठिर ने बिलखते हुए कर्ण के गुणों का बखान कर कहा कि यदि यह बात मुझे पहले मालूम हो जाती तो मैं अपने बड़े भाई कर्ण की ही शरण में जाता और उन्हें राजा बनाता। उनके मिल जाने से तो हमें स्वर्ग की वस्तु भी दुर्लभ न रह जाती और न कौरव-कुल का संहार ही होता। उन्हीं के बाहुबल का सहारा पाकर ही तो दुर्योधन ने हमसे बैर और युद्ध करने का साहस किया था। अभिमन्यु, द्रौपदी के पुत्र तथा अन्यान्य वीरों की मृत्यु से मुझे जितना दुःख है उससे सौ गुना दुःख कर्ण के निधन का है। फिर उन्होंने विधि-पूर्वक कर्ण का प्रेतकृत्य किया और कहा कि माता के द्वारा कर्ण के जन्म की बात को छिपाये जाने के कारण हम लोगों ने छल से अपने बड़े भाई का संहार कर घोर पातक किया है, इस कारण मैं शाप देता हूँ कि स्त्री कोई भी बात छिपाकर मन में न रख सके।

स्त्री-पर्व समाप्त

महाभारत

शान्ति-पर्व

अध्याय १

युधिष्ठिर का शोक और वैराग्य, ऋषियों का आना

वैशम्पायनजी बोले—'तर्पण आदि के अनन्तर पाण्डव अपनी शुद्धि के विचार से एक महीने तक नगर के बाहर ही रहे। उस समय वंश-नाश तथा लोक-क्षय से युधिष्ठिर इतने दुखी तथा शोक-संतप्त हुए कि वे राज्य को छोड़, वन में जा, भिक्षाटन द्वारा निर्वाह करने और तप द्वारा अपने शरीर को सुखा डालने के लिए तैयार हो गये। यह देख, तत्वज्ञ महर्षि वेदव्यास, नारद, देवल, कण्व आदि ने आकर उन्हें समझाया। अपने बड़े भाई कर्ण को अनजाने में मारने का उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने कहा—'मैं कर्ण के पैरों को देखते ही उनके कटु वचनों को भूलकर शान्त हो जाता था। उनके पैर ठीक माता कुन्ती के पैरों की तरह ही थे। मैं सदा इस समानता का कारण जानने का इच्छुक रहा हूँ। किन्तु कोई

अदृश्य शक्ति सदा मुझे चुप रक्खे रही। मेरे कारण ही मेरे उन सर्व-गुण-संपन्न, अद्वितीय वीर अग्रज की छल के द्वारा मृत्यु हुई। मुझे नरक में भी स्थान न मिलेगा।'

अध्याय २-२२

भीम, अर्जुन आदि का युधिष्ठर को समझाना

युधिष्ठर के पूछने पर नारदजीने कर्ण के जन्म का वृत्तान्त बतलाकर कहा—तुम लोगों से द्वेष और ईर्ष्या रखकर लड़कपन में कर्ण ब्रह्मास्त्र सीखने के लिए द्रोणाचार्य के पास गये। किन्तु द्रोणाचार्य ने सूतपुत्र मानकर तथा अर्जुन का द्वेषी समझकर उन्हें ब्रह्मास्त्र देने से इनकार कर दिया। तब कर्ण ने परशुरामजी के पास जाकर अपने को भृगुवंशी ब्राह्मण बतलाया और उनसे अस्त्र-शस्त्र विद्या सीख ली। इसी बीच में कर्ण ने धोखे से एक ब्राह्मण की गाय को मार डाला। ब्राह्मण ने शाप दिया कि युद्ध करते समय तेरा पहिया धरती में फँस जायगा और शत्रु तेरा सर काट लेंगे। कर्ण खिन्न होकर परशुरामजी के आश्रम में लौट आये। एक दिन एक कीड़े के काटने से परशुरामजी को मालूम हो गया कि कर्ण ब्राह्मण नहीं है। तब उन्होंने झूठ बोलने के कारण उन्हें शाप दिया कि वह युद्ध के समय

ब्रह्मास्त्र भूल जाय और उन्हें अपने यहाँ से अलग कर दिया। पूर्वकाल में दश नामक राक्षस ने भृगु की स्त्री को छीन लिया था। ऋषि ने उसे शाप देकर कीड़ा बना दिया था। उसी कीड़े ने कर्ण की जाँघ को उस समय छेदा था जब परशुरामजी उनकी जाँघ पर सर रखकर सो रहे थे। गुरू की नींद न टूट जाय; इस भय से कर्ण हिले तक नहीं। किन्तु उनकी जाँघ से निकले हुए गर्म खून के शरीर में लगते ही परशुरामजी जाग पड़े। उनकी दृष्टि पड़ते ही वह कीड़ा शाप से मुक्त हो गया। तब कर्ण ने लौट कर दुर्योधन से कहा कि अब मैं अस्त्र-शस्त्र विद्या में पारंगत हो गया हूँ, अब मेरा सामना कोई नहीं कर सकता। दुर्योधन ने मित्र बनाकर उन्हें अपने पास रख लिया। कुछ समय बाद कलिंग-राज चित्रांगद की पुत्री का स्वयंवर हुआ। अनेक क्षत्रिय और म्लेच्छराजागण उस कन्या को प्राप्त करने के लिए गये। दुर्योधन ने कर्ण की सहायता से सभी राजाओं को हराकर उस कन्या का हरण किया। कुछ समय बाद मगधराज जरासंध ने कर्ण से परास्त होकर उन्हें मालिनी नामक नगरी दे दी। दुर्योधन ने भी चम्पानगरी दे दी। इस प्रकार कर्ण अंग देश के राजा होगये। यदि इन्द्र उनके कवच और कुण्डल न मांग लेते, परशुरामजी और ब्राह्मण के शाप उन्हें न होते, यदि वे

कुन्ती को यह वर न देते कि मैं अर्जुन को छोड़कर और किसी दूसरे पाण्डव को न मारूँगा, यदि भीष्म सदा उनका अनादर न करते, यदि शल्य युद्ध के समय उनको हतोत्साहित कर उनके तेज को नष्ट न करते रहते, तो सूर्य के समान प्रतापी तुम्हारे भाई कर्ण इन्द्र के द्वारा भी नहीं जीते जा सकते थे। उन्होंने सम्मुख युद्ध में शरीर छोड़कर दिव्य लोक प्राप्त किया है। उनके लिए शोक करना व्यर्थ है।' पर नारद के इस उपदेश से भी युधिष्ठिर को शान्ति न मिली। वे बराबर यही कहते रहे कि राज्य के लोभ में पड़कर ही हम लोगों ने ये सब पाप किये हैं; राज्य छोड़े बिना मुझे शान्ति न मिलेगी।

अर्जुन ने उत्तेजित होकर कहा—'यदि आप पराक्रम से प्राप्त किये हुए इस राज को और धर्मपूर्वक किये जाने वाले यज्ञ को त्यागकर वन में चले जायँगे तो दुष्ट मनुष्य उन्हें दूषित कर डालेंगे, इस कारण आप पाप के भागी बनेंगे। महापुरुषों का मत है कि संसार में निर्धन होना भी बहुत बुरा है। संसार में धन से ही धर्म होता है। जिसका धन छिन जाता है उसका धर्म भी छिन जाता है। धन के बिना मनुष्य का निर्वाह नहीं होता। धन ही से धन का उपार्जन किया जाता है। धन से ही कुल और धर्म की वृद्धि की जा सकती है। धन से ही धर्म, काम,

मोक्ष, हर्ष, शान्ति, तथा शास्त्र-ज्ञान हो सकते हैं। संसार में बिना धन के मनुष्य दुखी और पतित हो जाता है। निर्धन मनुष्य न इस लोक में सुखी रहता है, न परलोक में। इस संसार में वही दुर्बल, वही नीच माना जाता है जिसके पास धन नहीं होता। दूसरों को जीतकर उनका धन छीने बिना धर्म-कर्म कैसे हो सकते हैं! देवगण भी दैत्यों को मारकर तथा उनके धन का अपहरण कर स्वर्ग का राज्य करते हैं। शत्रुओं को जीतकर धन और पृथ्वी पर आधिपत्य प्राप्त करना चाहिए और फिर यज्ञ तथा दान करके सब पापों से छुटकारा पा लेना चाहिए। वेदों की आज्ञा है कि धनहरण कर यज्ञ करना चाहिए। यज्ञ के द्वारा राजा के सब पाप दूर हो जाते हैं।'

युधिष्ठिर ने खिन्न होकर कहा—'त्याग से बढ़कर संसार में और कुछ भी नहीं है। मैं इस ऐश्वर्य और राज्य के लोभ में पड़कर अपने परलोक को नहीं बिगाड़ना चाहता।' यह सुनकर भीम ने कहा—'आप तो इस समय, इस तरह की बातें कर रहे हैं जैसी कि वेद के तत्वों को न समझकर केवल अक्षरों के रटनेवाले किया करते हैं। यदि आप क्षत्रिय धर्म को छोड़कर भीख माँगना ही उत्तम समझते थे तो आपने बन्धु-बान्धवों का संहार ही क्यों कराया? यदि त्याग से ही सिद्धि प्राप्त होती तो पर्वत

और वृक्ष भी सिद्ध हो जाते । यदि केवल अपना पेट पालने से ही सिद्धि होती तो जल के जीव भी सिद्ध हो जाते, क्योंकि उन्हें किसी का पालन-पोषण नहीं करना पड़ता। यदि वन में रहने से ही स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती तो मृग, शूकर, पक्षी आसानी से स्वर्ग प्राप्त कर लेते । इस संसार में कर्महीन मनुष्य किसी प्रकार भी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता।'

अर्जुन ने कहा—'प्राचीन समय में कुछ ब्राह्मण नवयुवकों ने इधर-उधर घूमने को ही धर्म समझ लिया था। वे घर को छोड़कर गेरुए वस्त्र पहन इधर-उधर घूमने लगे। उनके अज्ञान पर इन्द्र को दया आ गई। उन्होंने नवयुवकों को समझाया कि गृहस्थाश्रम में रहकर पवित्र कर्म करते हुए दूसरों का भरण-पोषण करने से बढ़कर दूसरा तप, दूसरा त्याग नहीं है, इसी प्रकार के तपके द्वारा देवगण ने इतना ऐश्वर्य प्राप्त किया है । राजा दण्ड द्वारा धर्म और शान्ति की रक्षा तथा व्यवस्था कर अक्षय पुण्य का भागी हो सकता है। क्योंकि दण्ड के भय से ही छोटे-बड़े, ज्ञानी-अज्ञानी सब अपने कर्त्तव्यों का पालन करते और मर्यादा में रहते हैं। यदि राजा दण्ड के द्वारा मर्यादा की स्थापना न करे तो संसार ही नष्ट हो जाय। आपका सबसे बड़ा धर्म है दण्ड-विधान।'

'नकुल ने कहा—'देवगण ने कर्मों के द्वारा ही इतना

ऊँचा पद प्राप्त किया है। नियमानुसार कर्म करते हुए धन कमाना और उसे उत्तम यज्ञों में लगाना ही सात्विक संन्यास है। गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों से भागकर जो वन में चला जाता है वह तामसी माना जाता है। वेदों में अकेला गृहस्थाश्रम अन्य तीनों आश्रमों से बढ़कर माना गया है। जो मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहकर राग-द्वेष से बचा रहता है, वही सच्चा त्यागी माना जाता है। जो अहंकार और ममता को नहीं छोड़ सकता वह वन में रहकर भी त्यागी नहीं हो सकता। और जो अहंकार और ममता को छोड़ देता है, वह घर पर रहकर भी संन्यास का फल प्राप्त कर लेता है। केवल घर छोड़ देने ही से कोई त्यागी नहीं हो सकता। आप गृहस्थाश्रम में रहकर ही शुद्ध चित्त से यज्ञ आदि कर सब पापों से छूट सकते हैं।'

सहदेव बोले—'ममता दो प्रकार की होती है। एक बाहरी, दूसरी भीतरी। केवल बाहरी ममता के त्याग देने से किसी तरह की सिद्धि नहीं मिल सकती। यदि आप भीतर से ममता का त्याग कर दें तो यहाँ रहकर भी आपको वन में तप करने का फल प्राप्त हो सकता है।'

द्रौपदी ने भी अनेक प्रकार से युधिष्ठिर को समझाया।

सब की बातें सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—'केवल वही शान्त और सुखी हो सकता है जो विषय-वासना को

छोड़कर तप द्वारा अपने मन को परमात्मा में लगा दे। सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य प्राप्त करने पर भी किसी को संतोष और सुख नहीं मिल सकता। वैराग्य और त्याग के प्रभाव से ही चिरंतन सुख की प्राप्ति हो सकती है। जो विषय-वासना को त्याग सकता है और संकल्प को छोड़ सकता है वही मनुष्य ममता-शून्य होकर राग-द्वेष से ऊपर उठ जाता है और परमपद को प्राप्त कर लेता है।'

ऋषि बोले—'धर्म के अनुसार जीती हुई पृथ्वी को छोड़ना उचित नहीं है। शास्त्र का मत है कि धन माँग कर यज्ञ आदि करने की अपेक्षा न करना ही अच्छा है, क्योंकि माँगना बुरा है। जो लोग यज्ञ आदि करने के लिए धन का संग्रह करके, पात्र-अपात्र का विचार किये बिना याचक को दान दे देते हैं वे भ्रूण-हत्या के भागी होते हैं। राजा के लिए प्रजापालन करना ही सबसे बड़ा धर्म माना गया है। प्रजा की रक्षा के लिए जो राजा युद्ध करता है उसे अवश्य ही उत्तम गति प्राप्त होती है।'

अर्जुन ने कहा—'क्षत्रियों के लिए युद्ध में मरना सबसे उत्तम माना गया है। जिन लोगों ने इस युद्ध में प्राण त्याग किये हैं वे सब स्वर्ग को गए हैं, उनके लिए शोक करना उचित नहीं है। कश्यप के पुत्र इन्द्र आठ सौ दस बार अपने जातिवाले शत्रुओं का नाशकर यज्ञ द्वारा

देवताओं के स्वामी हुए हैं। आप भी इन्द्र की तरह यज्ञ द्वारा उत्तम लोकों को प्राप्त कीजिये।'

अध्याय २३-२८

व्यासजी द्वारा क्षात्रधर्म, दण्ड-विधान, सुख-मार्ग आदि का उपदेश

व्यासजी बोले—'हे युधिष्ठिर! शास्त्र के अनुसार गृहस्थाश्रम ही तुम्हारे लिए श्रेष्ठ धर्म है। वन में जाना उचित नहीं है। गृहस्थाश्रम के द्वारा ही सबका भरण-पोषण किया जाता है, इस कारण यह सब से श्रेष्ठ आश्रम है। गार्हस्थ्य धर्म सबसे श्रेष्ठ और कठिन है। अजितेन्द्रिय मनुष्य कभी इस धर्म का पालन नहीं कर सकता। तुम क्षत्रिय हो। दण्ड धारणकर प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करना, वेदाध्ययन, यज्ञ तथा सत्पात्र को दान करना ही तुम्हारे लिए मुख्य धर्म है। बृहस्पति का वचन है कि युद्ध करने में अयोग्य राजा को और अप्रवासी (यात्रा न करने वाले) ब्राह्मण को पृथ्वी नष्ट कर देती है। सुद्युम्न राजा को दण्ड धारण करने के कारण ही अलौकिक सिद्धि प्राप्त हुई थी।

'पूर्व समय में शंख और लिखित नाम के दो तपस्वी भाई थे। वे अलग-अलग आश्रमों में रहकर तप करते थे। एक दिन लिखित अपने भाई के आश्रम में गये। उस समय

उनके भाई वहाँ नहीं थे। लिखित उनके आश्रम के वृक्षों से फल तोड़कर खाने लगे। उसी समय शंख आ गये। पूछने पर लिखित ने बतलाया कि उन्होंने वहीं से फल तोड़े हैं। शंख ने कहा कि यह तो चोरी हुई, तुम राजा के पास जाकर उपयुक्त दण्ड की प्रार्थना करो। लिखित राजा सुद्युम्न के पास गये। राजा ने उनकी पूजा कर आने का कारण पूछा। लिखित ने सब बातें बतलाकर दण्ड की प्रार्थना की। राजा ने कहा कि मुझे दण्ड देने और क्षमा करने का अधिकार है। आपने जानबूझकर चोरी नहीं की, इस लिए मैं क्षमा करता हूँ। किन्तु लिखित न माने। तब राजा को विवश होकर उनके दोनों हाथ कटा देने पड़े। लिखित हाथ कटवाकर अपने भाई के पास गये और उनसे क्षमा के लिए प्रार्थना करने लगे। शंख ने कहा कि धर्म के उल्लंघन करने का प्रायश्चित हो गया, अब तुम स्नानकर तर्पण करो। लिखित ने स्नानकर जैसे ही तर्पण के लिए हाथ उठाये, वैसे ही उनके हाथ पहले की तरह हो पूरे हो गये। शंख ने कहा कि यह सब हम लोगों के तप का प्रभाव है। लिखित ने कहा कि जब ऐसी बात थी तब आपने मुझे स्वयं दण्ड देकर पवित्र क्यों नहीं कर लिया। शंख ने कहा कि दण्ड का अधिकार तो केवल राजा को ही है। धर्म-पूर्वक दण्ड धारण करने

से राजा सुद्युम्न को अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त हुई थी।

'हे युधिष्ठिर! संन्यासी बनकर वन को जाना क्षत्रिय के लिए उचित नहीं है। सर्व-मेध और अश्वमेध यज्ञ करने, अतिथि, पितर तथा देवगण के ऋण से मुक्त होने के बाद ही तुम्हारा वन में जाना सफल हो सकता है। जो क्षत्रिय बल और बुद्धि से शत्रुओं को दबाकर प्रजा का पालन करता है उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जो राजा प्रजा का पालन, दुर्जनों का शासन और सज्जनों की रक्षा नहीं करता है, उसे घोर नरक में पड़ना पड़ता है। राजा हयग्रीव-सेनजित ने प्रजा-पालन के द्वारा ही स्वर्ग की प्राप्ति की थी। सुख-दुःख, प्रिय-अप्रिय, हानि-लाभ में समान भाव से धैर्य धारण कर प्रजा का पालन करना तुम्हारे लिए सबसे बड़ा त्याग और तप है। विधाता ने तुम्हें कर्म करने के लिए ही उत्पन्न किया है, इस कारण तुम अपने प्रजा-पालनवाले कर्म में लग जाओ। इसी में तुम्हारा कल्याण है। पानी के बुलबुले की तरह संसार में जीव उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं। सभी पदार्थों का अन्त होता है। उन्नति की भी एक दिन अवनति होती है, संयोग का वियोग निश्चित है और जीवन के साथ मृत्यु का संयोग रहता है। जिनका काल आ गया था, उन्हीं का संहार इस युद्ध में हुआ है, इस कारण किसी के मरने

का तुम्हें न तो सोच ही करना चाहिए और न उसके लिए लजाना ही उचित है। जो होना था वही हुआ। होनी को टालने की शक्ति किसी में भी नहीं है। तुम क्यों व्यर्थ में उसके लिए दुखी होते हो।

'एक बार महाराज जनक को मोह हो गया था। तब परम ज्ञानी अश्मकजी ने उन्हें समझाते हुए कहा था कि संसार में सुख-दुःख, जरा-मृत्यु, हानि-लाभ, संयोग-वियोग दैवाधीन होने के कारण सभी को प्राप्त होते हैं। कोई इनसे बच नहीं सकता। भाई-बन्धुओं का समागम रास्ते में मिलनेवाले यात्रियों की तरह ही संयोगवश होता है। शरीर छोड़ने पर किसी से कोई संपर्क नहीं रह जाता। चक्र की तरह घूमनेवाले इस अनित्य संसार में कुछ भी नित्य नहीं है। अपने शरीर तक का साथ बहुत दिन नहीं रहता जो रागद्वेष छोड़कर धर्म पर टिका रहता है, कर्त्तव्य पालन करता है, और न्याय के अनुसार धनोपार्जनकर यज्ञ करता है वह यशस्वी होता है। हे युधिष्ठिर! जैसे जनक शोक-संताप छोड़कर अपने कर्त्तव्य पालन में लग गये थे वैसे ही तुम्हें भी सोच त्याग कर प्रजा का पालन करना चाहिए। क्षत्रिय-धर्म के अनुसार राज्य प्राप्त करके अब उसे मोह में पड़कर त्यागना उचित नहीं है।'

अध्याय २६-३१

श्रीकृष्ण का समझाना, नारद का विवाह, स्वर्णष्ठीवी की कथा

वैशम्पायनजी ने कहा—'अर्जुन के कहने से श्री कृष्णजी ने युधिष्ठिर को पुत्र-शोकग्रस्त राजा सृञ्जय और नारद के उपदेश सुनाकर बतलाया कि जिनके यज्ञ में इंद्र ने वर्ष भर तक सोने की वर्षा की थी वे राजा सुहोत्र, दानी बृहद्रथ, शिवि, भरत, राम, भगीरथ, दिलीप, मांधाता, ययाति, रन्तिदेव, पृथु आदि महापराक्रमी, ऐश्वर्यशाली, महादानी राजाओं को भी काल ने नहीं छोड़ा। फिर उन्होंने कहा—'एक बार नारदजी और देवल ऋषि राजा सृञ्जय के पास गये। राजा ने अपनी परम सुन्दरी कन्या को उनकी सेवा में नियुक्त कर उन्हें अपने यहाँ रक्खा। नारद जी सदा उस कन्या की ओर आकृष्ट रहने लगे। यह देख देवलजी ने शाप दिया आप जब इस कन्या के साथ विवाह करेंगे तब आपका मुँह बन्दर का-सा हो जायगा। नारद ने शाप दिया कि तुम स्वर्ग न जा सकोगे। देवल वहाँ से चले गये। नारदजी ने राजा से कहकर उस कन्या से विवाह कर लिया। उसी समय उनका मुँह बंदर का-सा हो गया। पर राजकन्या उसका तनिक भी विचार न कर भक्ति और प्रेम से नारद की सेवा करने लगी। कुछ समय

बाद देवल ने आकर अपने मामा नारदजी को शाप से मुक्तकर दिया। नारदजी ने भी देवल को शाप से छुटकारा दिला दिया। नारद के दिव्यरूप को देख राजकुमारी उन्हें पहचान न सकी, इससे परपुरुष समझ भागने लगी। तब देवल ने सब हाल बतलाकर विश्वास दिलाया कि दिव्य रूपधारी पुरुष उसके पति नारद ही हैं। राज कन्या प्रसन्न होकर नारद जी की सेवा पूर्ववत् करने लगी। फिर ऋषियों के आशीर्वाद से राजा सञ्जय के स्वर्णष्ठीवी नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इन्द्र को विदित हुआ कि बालक बड़ा होकर देवगण सहित उन्हें परास्त करेगा। ईर्ष्या तथा भय के कारण इन्द्र ने वज्र को उस बालक के मारने के लिए नियुक्त किया। वज्र ने बाघ का रूप रखकर बालक को मार डाला। उसी के शोक में मग्न राजा सञ्जय को नारद जी ने शरीर के नश्वर और मृत्यु के अवश्यंभावी होने के अनेक उदाहरण देकर समझाया। फिर उन्होंने उस बालक को जिला दिया। हे युधिष्ठिर तुम भी शोक त्यागकर धर्म-पूर्वक राज्य करो।'

अध्याय ३२-३६

व्यास के उपदेश, राजधर्म, प्रायश्चित्त, भक्ष्याभक्ष्य, पात्रापात्र

युधिष्ठर को शान्त होते न देख, व्यासजी बोले—

'प्रजा की रक्षा करना राजा का सनातन धर्म है। जो धर्म नष्ट होते देख उसकी रक्षा नहीं करता उसे धर्म नष्ट करने का पाप लगता है। वध के योग्य मनुष्य का वध करना और धर्म की रक्षा करना सब से श्रेष्ठ धर्म है। तुमने धर्म-घातक कौरवों का संहारकर धर्म की रक्षा की है, इसमें शोक करने की कोई बात नहीं है। यदि तुम यह मानते हो कि सभी कर्म ईश्वर की प्रेरणा से या भाग्य के कारण होते हैं, तब तो तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि कौरवों का वध तुमने ईश्वर की प्रेरणा से अथवा भाग्य के कारण ही किया है, फिर उसका दोष तुम्हें कैसे लग सकता है? और यदि तुम पुरुष को ही कर्ता मानते हो, तो भी सोच करने की कोई बात नहीं है; क्योंकि तुमने दुष्टों का दमन कर सत्कर्म ही किया है। फिर यदि तुम कौरव-वध को बुरा कर्म मानते हो, तो उसके लिए उचित प्रायश्चित करके पाप से मुक्त हो जाओ। आत्मघात से तो तुम अपने सर पर पाप का बोझ और बढ़ा लोगे। और पहले के पापों का प्रायश्चित भी न कर सकोगे। इससे परलोक में तुम्हें दुःख उठाने पड़ेंगे।

'यह नश्वर संसार कर्म के अधीन है। जन्म-मरण प्रकृति के अधीन है, इसके लिए हर्ष-विषाद करना व्यर्थ है। सभी अपनी मृत्यु की प्रेरणा से मरते हैं। इस युद्ध में भी वे ही मरे हैं जिन का काल आगया था। इस

कारण उनके लिए शोक करना उचित नहीं है। धर्मात्मा और शान्त-प्रकृति के होने पर भी तुमको दैव ने विवश कर हिंसा ऐसे घोर कर्म में लगाया। इससे स्पष्ट है कि सभी को कठपुतली की तरह कर्म के अधीन होकर नाचना पड़ता है। पूर्वकाल में देवगण ने अपने बड़े भाई दानवों को मारकर राज्य प्राप्त किया था। तब शालावृक नामक अस्सी हज़ार वेदज्ञ ब्राह्मणों ने दानवों की ओर से देवगण से युद्ध किया। देवगण ने उन वेदज्ञ ब्राह्मणों का भी संहार कर डाला। शास्त्र की आज्ञा है कि जो शत्रु की सहायता करे उसे बिना विचारे नष्ट कर डालना चाहिए। यदि एक के वध से एक कुल की रक्षा होती हो, और एक कुल के नाश से जनपद की रक्षा हो, तो उसका वध कर डालना परम धर्म है, वैसा न करने से धर्म की हानि होती है। कहीं अधर्म धर्म के समान और कहीं धर्म अधर्म के समान देख पड़ता है। ऐसे भ्रम को दूर कर कर्तव्य का पालन करना ही ज्ञानी का कार्य है। तुमने तो देवगण के मार्ग का ही अनुसरण किया है। तुम इन्द्र की तरह यज्ञकर सब पापों से मुक्त हो जाओ। अब तुम प्रजा की भलाई में लगजाओ। जो वीर संग्राम में मारे गये हैं उनके कुटुम्बियों को समझाकर तथा उन्हें वृत्ति देकर शान्त करो, गर्भ के बालकों की तथा स्त्रियों की रक्षा करो, जो

राजा मारे गये हैं उनके पुत्र-पौत्रों को गद्दी पर बैठालो। जिनके पुत्र नहीं हैं उनकी कन्याओं को राज्य दे दो। इस प्रकार सबको संतुष्टकर धर्म-पूर्वक प्रजा का पालन करो। इसी में तुम्हारा कल्याण है।

'हे युधिष्ठिर! तुम अश्वमेध यज्ञ करके सब पापों से मुक्त हो जाओगे। धर्मशास्त्रों में पाप-कर्मों के प्रायश्चित बतलाये गये हैं। उन्हें करने से मनुष्य पापों से छूट जाता है। तुम यदि समझते हो कि तुमसे पाप हो गया है तो उचित प्रायश्चित करके मुक्त हो जाओ। आत्मघात से तो पापों से मुक्त हो नहीं सकते। शास्त्र का मत है कि वेदज्ञ ब्राह्मण भी यदि मारने आये तो उसे मारने से, औषधि के रूप में शराब पीने से, गुरु की आज्ञा से गुरु-पत्नीगमन से, (उद्दालक ऋषि ने अपने शिष्य से अपनी पत्नी में पुत्र उत्पन्न कराया था।) आपत्ति काल में अपनी तथा दूसरों की रक्षा के लिए चोरी करने से, दूसरों के हित के लिए झूठ बोलने से, परस्त्री के प्रार्थना करने पर उसे संतुष्ट करने से, श्राद्ध तथा यज्ञ में जीव-हत्या से पाप नहीं लगता। और फिर भक्ष्याभक्ष्य, असत्कर्म आदि से जो पाप लगता है वह उचित प्रायश्चित द्वारा दूर हो जाता है। दान, अध्ययन, तप, अहिंसा, सत्य, क्षमा और यज्ञ करना तथा बिना दी हुई वस्तु को न लेना ही धर्म

है। किन्तु कहीं-कहीं इनके विरुद्ध कार्य भी धर्म हो जाते हैं और ये कार्य अधर्म हो उठते हैं। इस कारण परिस्थिति देखकर ही धर्म और अधर्म का निर्णय किया जा सकता है। इस समय शोक-संताप को छोड़कर प्रजा का पालन करना और अश्वमेध यज्ञ करके पापों का प्रायश्चित कर डालना ही तुम्हारे लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म है।'

अध्याय ३७-४७

युधिष्ठिर का अभिषेक, चार्वाक की मृत्यु, भीष्म से धर्म-ज्ञान

युधिष्ठिर बोले—'धर्म का आचरण और राज्य की रक्षा, ये दोनों एक दूसरे के विरुद्ध हैं। मनुष्य एक साथ दोनों का निर्वाह कैसे कर सकता है?

व्यासजी बोले—'महात्मा भीष्म तुम्हारे सभी संदेह दूर कर देंगे। उन्होंने बृहस्पति, शुक्राचार्य तथा देवर्षियों से राजनीति और धर्मतत्व; च्यवन और वशिष्ठ से वेद-वेदांग; सनत्कुमार से ज्ञान; मार्कण्डेय से संन्यास-धर्म; परशुराम और इंद्र से अस्त्र-विद्या की शिक्षा ली है। उनसे अधिक धर्म के तत्वों को जाननेवाला दूसरा नहीं है।'

श्रीकृष्णजी के कहने तथा ऋषि-मुनियों के समझाने से युधिष्ठिर सोलह बैलों के रथ पर बैठकर नगर में गये।

धृतराष्ट्र उत्तम सवारी पर आगे-आगे चले। भीम युधिष्ठिर का रथ हाँक रहे थे, अर्जुन छत्र लगाये थे, नकुल और सहदेव चँवर डुला रहे थे। नगर में उनका बड़ा स्वागत हुआ। महलों में जाकर युधिष्ठिर ने देवताओं की विधिवत् पूजा की। फिर बाहर आकर ब्राह्मणों को गौ, स्वर्ण आदि देकर संतुष्ट किया। इसी अवसर पर एक ब्राह्मण ने वंशनाश तथा जन-संहार के लिए उन्हें बहुत धिक्कारा। उन्हें बड़ा दुःख हुआ। पहले तो दूसरे ब्राह्मण आश्चर्य से चुप रह गये, किन्तु ध्यान से देखने पर उन्हें विदित हुआ कि युधिष्ठिर को धिक्कारनेवाला ब्राह्मण असल में चार्वाक नामक राक्षस है, जो कपट वेश में दुर्योधन का कार्य बनाने के लिए चाल चल रहा है। ब्राह्मणों के हुंकार से चार्वाक् निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। चार्वाक ने ब्रह्माजी से वर प्राप्त किया था कि किसी भी प्राणी से उसे भय न हो। किन्तु अन्त में युधिष्ठिर से छल करने एवं ब्राह्मणों के कोप के कारण उसके प्राण निकल गये।

'यथा समय युधिष्ठिर का राजतिलक हुआ। भीम युवराज, अर्जुन सेनापति, विदुर मंत्री, सञ्जय निरीक्षक और आय-व्यय परीक्षक, नकुल कोषाध्यक्ष, सहदेव अंगरक्षक, धौम्य धर्माध्यक्ष बनाये गये। युधिष्ठिर ने सब मृत व्यक्तियों का यथोचित श्राद्ध कराया। फिर सबको दान,

मान से संतुष्ट किया। अन्त में युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी की स्तुति की और अपने भाइयों को यथायोग्य महल बांट दिये। रात को श्रीकृष्णजी अर्जुन के महलों में रहे। दूसरे दिन नित्य-कृत्य, दान आदि से निपटकर युधिष्ठिर श्रीकृष्ण जी के पास गये। वे ध्यानावस्थित थे। पूछने पर उन्होंने बतलाया कि धर्मात्मा भीष्म मेरा (श्रीकृष्णजी) का ध्यान कर रहे थे, इस कारण मैं भी ध्यानावस्थित हो उनकी आत्मा को शान्ति दे रहा था। फिर प्रकृतिस्थ हो श्रीकृष्णजी ने युधिष्ठिर से कहा कि भीष्म परमज्ञानी हैं, तुम उनसे धर्म के तत्वों को जान लो। युधिष्ठिर उनके साथ भीष्मपितामह के पास जाने को तैयार हो गये।

'इधर व्यास, वशिष्ठ, नारद, देवल, मार्कण्डेय, बृहस्पति आदि ऋषि-मुनियों से घिरे हुए भीष्म ने भक्तिभाव से परमपुरुष श्रीकृष्णजी की स्तुति की। श्रीकृष्णजी ने पाण्डवों के साथ उन्हें दर्शन दिये।

अध्याय ४८-५२

परशुराम-कथा; सब भीष्म के पास, व्यथा का दूर होना

वैशम्पायनजी बोले—'अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर आदि सेना सहित श्रीकृष्णजी के साथ भीष्मपितामह के पास

चले। समन्तपञ्चक के पास पहुँचकर युधिष्ठिर ने परशुरामजी की कथा और क्षत्रिय-नाश का कारण पूछा। श्रीकृष्णजी बोले—'जह्नु के पुत्र अज, अजके बलाकाश्व, उनके कुशिक, कुशिक के गाधि हुए। इंद्र स्वयं गाधि के रूप में प्रकट हुए थे। गाधि के सत्यवती नामक कन्या हुई, जिसका विवाह उन्होंने ऋचीक ऋषि के साथ कर दिया। सत्यवती की सेवा से प्रसन्न होकर तपस्वी ऋचीक ने दो चरु तैयार करके दिये, एक चरु सत्यवती के लिए और दूसरा उसकी माता के लिए। ऋचीक के चले जाने पर सत्यवती की माता ने अपना चरु अपनी कन्या को खिला दिया और उसका चरु खुद खा लिया। जब ऋचीक को इसका पता चला तो उन्होंने सत्यवती से कहा कि तुम्हारी माता के सात्विक, शान्त स्वभाव का पुत्र उत्पन्न होगा और तुम्हारे महाक्रोधी, घोर कर्म करनेवाला। सत्यवती के प्रार्थना करने पर ऋचीक ने यह व्यवस्था कर दी कि पुत्र क्रोधी न होकर पौत्र घोर कर्मा हो। सत्यवती के जमदग्नि हुए और जमदग्नि के घोर-कर्मा परशुराम। उन्होंने घोर तप कर शिवजी से शस्त्र-शास्त्र और अमोघ अस्त्र प्राप्त किये।

'इसी काल में हैहय वंश में महाप्रतापी कार्तवीर्य अर्जुन ने दत्तात्रेय को प्रसन्नकर हजार भुजाएँ प्राप्त कीं और अपने बाहुबल से सारी पृथ्वी को जीतकर अश्वमेध

यज्ञकर उसे ब्राह्मणों को दान में दे दिया। एक बार राजा के पास अग्निदेव ने जाकर कुछ जलाने को मांगा। राजा ने एक ओर के कुछ गाँव अग्नि को दे दिये। अग्नि ने गाँवों को भस्म कर डाला। इसी बीच में वशिष्ठजी का आश्रम भी जलने लगा। वशिष्ठजी ने कार्त्तवीर्य को शाप दिया कि परशुरामजी तेरा नाश करेंगे। शाप के बाद कार्त्तवीर्य के लड़कों ने जमदग्नि को तंग कर उनका बछड़ा छुड़ा लिया। तब परशुरामजी ने युद्धकर कार्त्त-वीर्य के हजार बाहुओं को और उसकी सेना को काट डाला। कुछ समय बाद जब परशुरामजी समिधा और फल लेने के लिए वन को गये थे उस समय कार्तवीर्य के पुत्रों ने जमदग्नि को मार डाला। वन से लौटने पर अपने पिता को मरा हुआ देख परशुरामजी को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने युद्ध में कार्तवीर्य के सब पुत्रों को और पृथ्वी भर के सब क्षत्रियों को मार डाला। क्षत्रियों का संहार करने के बाद वे वन में तप करने के लिए चले गये। कुछ समय बाद कुछ ऋषियों ने यह कह कर उनकी निन्दा की कि तुमने क्षत्रियों को निःशेष करने की प्रतिज्ञा पूरी नहीं की, तुम क्षत्रियों से डर कर यहाँ छिपे हुए तप कर रहे हो। इस ताने से कुपित हो परशुरामजी ने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया। क्षत्रिय-विहीनकर परशुरामजी ने

सारी पृथ्वी को कश्यप को दान में दे दी। लोक-कल्याण के विचार से कश्यपजी ने परशुरामजी से कहा कि अब यह पृथ्वी मेरी है, आप अपने लिए कोई दूसरे स्थान का प्रबंध कीजिये। यह सुन परशुरामजी ने पश्चिमी समुद्र तट पर जाकर शूर्पारक नामक स्थान समुद्र से प्राप्त किया। इधर कश्यपजी ने पृथ्वी को ब्राह्मणों में बाँट दिया। किन्तु अपने धर्म-कर्म में लगे रहने के कारण ब्राह्मण पृथ्वी का शासन ठीक से न चला सके। दुष्ट लोग उत्पात मचाने लगे। पृथ्वी रसातल को जाने लगी। इसी समय कश्यप जी ने अपनी उरु (जाँघ) लगाकर पृथ्वी को रोका। इसी कारण पृथ्वी का नाम उर्वी पड़ गया। तब पृथ्वी ने प्रार्थना की कि आप मुझे एक राजा दें जो ठीक दण्ड-व्यवस्था करे और दुष्टों को शासित कर शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित कर सके। इसी बीच में परशुराम के भय से महर्षि पराशर ने राजा सौदास के पुत्र सर्वकर्मा की रक्षा की थी, राजा शिवि के पुत्र गोपाल की रक्षा वन में गायों के बीच में हुई थी, राजा प्रतर्दन के पुत्र वत्स की रक्षा बछड़ों के गोष्ठ में हुई थी और इसी प्रकार अन्यान्य क्षत्रिय-कुमारों की रक्षा विभिन्न स्थानों में हुई थी। कश्यपजी ने पृथ्वी के कहने से उन सबको बुलाकर उन्हें भिन्न-भिन्न स्थानों के राज्यों का अधिकार दे दिया।'

'यह कथा सुनकर युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए। फिर सब भीष्म के पास गये और वहाँ ऋषि-मुनियों को तथा भीष्म को प्रणाम कर बैठ गये। श्रीकृष्णजी ने भीष्म की प्रशंसा कर उनसे युधिष्ठिर को उपदेश देने को कहा। भीष्म ने श्रीकृष्णजी की श्रद्धा-भक्ति से स्तुति की। श्रीकृष्णजी ने उन्हें अपने दिव्य रूप का दर्शन देकर कृतार्थ किया और कहा—'आप परम तपस्वी, सत्यवादी, इंद्रियजित, दानी और ज्ञानवान हैं। आप छप्पन दिन बाद अवश्य ही दिव्य लोक को जायँगे। आप पाण्डवों को ज्ञान का तथा धर्म के तत्वों का उपदेश दीजिये।' फिर भीष्म जी के कहने से श्रीकृष्णजी ने उनके शरीर की व्यथा दूर कर दी। भीष्म की बुद्धि भी निर्मल हो गई। इतने में संध्या हो गई। सब अपने-अपने स्थानों को चले गये।

अध्याय ५३-५८

धर्मोपदेश के लिए भीष्म के पास; राजधर्म वर्णन

वैशम्पायन जी बोले—दूसरे दिन प्रातः-कृत्य समाप्त कर श्रीकृष्णजी केवल पाण्डवों को लेकर भीष्म के पास गये। भीष्म ने श्रीकृष्णजी की स्तुति-वन्दना की और इस के अनन्तर कहा—'हे जनार्दन! आप तो वेदमय हैं।

आप क्यों स्वयं उपदेश नहीं देते ?' श्रीकृष्णजी ने कहा—'मैं आपका यश स्थापित करना चाहता हूँ। आप जो उपदेश देंगे, धर्म के तत्वों का जो सूक्ष्म विवेचन करेंगे, वे वेद-वाक्य के समान सर्वमान्य होंगे और स्थिर रहेंगे।' भीष्म ने प्रसन्न होकर कहा—'जिनमें धैर्य, क्षमा, दया, शौर्य, शम, दम, ब्रह्मचर्य, तेज, धर्मबुद्धि, सत्य, दान, निर्भीकता, दक्षता आदि अलौकिक गुण हैं और जिन्होंने काम, क्रोध, भय, लोभ के कारण भी कोई अधर्म नहीं किया वे युधिष्ठिर मेरे सामने आकर धर्म के तत्व पूछें।' श्रीकृष्णजी ने कहा कि वंश-क्षय तथा आपके प्रति किये गये अपराधों के कारण लज्जावश तथा शाप के भय से वे आपके सामने नहीं आ रहे हैं। भीष्म ने कहा कि धर्मराज युधिष्ठिर को लज्जा या भय का कोई कारण नहीं हैं। उन्होंने तो धर्म-शास्त्र के अनुसार ही धर्म-युद्ध किया है। युद्ध ही उनका धर्म है। युधिष्ठिर ने सामने आकर भीष्म को प्रणाम किया। भीष्म ने उन्हें आशीर्वाद देकर प्रेम से पास बैठाला और धर्म-तत्व पूछने को कहा। युधिष्ठिर ने प्रजा-पालन और राज-धर्म को जानने की इच्छा प्रकट की।

भीष्म बोले—'पौरुष ही से सब काम करने चाहिए। दैव और पौरुष दोनों ही कार्य सिद्धि के लिए आवश्यक हैं; किन्तु दैव के संबंध में तो पहले से ज्ञान होता नहीं, इस

कारण पौरुष ही श्रेष्ठ है और उसी का सदा आश्रय लेना चाहिए। पौरुष ही प्रत्यक्ष फल देनेवाला है। यदि किसी कार्य में कठिनाई पड़े या विघ्न उपस्थित हो तो घबराना न चाहिए, बार-बार प्रयत्न कर-उसे पूरा करना चाहिए। जो अति सरल होता है उसका प्रभाव नहीं रहता और जो उग्र रहता है उसको देखकर सब डरते हैं, इस कारण न तो बिलकुल सरल ही रहना चाहिए और न बिलकुल उग्र ही। सदा क्षमाशील बने रहने से हानि ही होती है। ब्राह्मण वेद और यज्ञ की रक्षा करते हैं इस कारण राजा को ब्राह्मणों का सत्कार करना चाहिए। किन्तु यदि ब्राह्मण अत्याचार करे तो उसे भी दण्ड देना ज़रूरी है। नौकरों के साथ अधिक हँसी-मज़ाक़ न करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से नौकर ढीठ होकर मालिक का अनादर और काम में ढिलाई करने लगते हैं। शुक्राचार्य का मत है कि उद्योग न करनेवाला राजा और देशाटन न करने वाला ब्राह्मण नष्ट हो जाते हैं। स्वामी, मंत्री, सुहृद, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, सेना—ये राज के सात अंग हैं; इनके साथ जो कोई विरोध करे, वह गुरु या मित्र ही क्यों न हो, उसका नाश करना राजा का कर्तव्य है। जिसकी प्रजा नीति और अनीति को जानती है और अपने ऐश्वर्य को नहीं छिपाती, वही राजा श्रेष्ठ है। रक्षा करना ही राजधर्म का सार है। प्रजा की

रक्षा के लिए राजा को यदि विपत्ति ही उठानी पड़े तो उसे अपना धर्म समझकर उठाना चाहिए।' इस उपदेश के बाद सन्ध्या समय सब अपने-अपने स्थानों को चले गये।

अध्याय ५६-७४

राजा की उत्पत्ति, वर्ण आदि के धर्म, राजधर्म-राजनीति, ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठता, मुचकुन्द

दूसरे दिन युधिष्ठिर ने आकर नम्रता से प्रश्न किया कि राजा के अर्थ क्या हैं, वह क्यों शासन करता है? भीष्मजी बोले—'सत्ययुग में पहले राज्य न था और न राजा ही। सब प्रजा एक दूसरे की रक्षा करती थी। कुछ समय बाद प्रजा में मूर्खता छा जाने पर धर्म का लोप हो गया और प्रजा एक दूसरे की रक्षा करने में असमर्थ हो गई। अव्यवस्था और अनीति फैल गई। संसार को संकट में पड़ा हुआ देख देवताओं के प्रार्थना करने पर ब्रह्माजी ने एक लाख अध्यायों का एक नीति शास्त्र तैयार किया और देवगण से कहा—मैंने जगत के कल्याण के लिए तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष साधन के लिए नीतिशास्त्र की रचना की है। इसमें नीति के छः गुणों का विस्तार से विवेचन है। इसके पढ़ने से दण्ड

की रीति, शासन आदि का ज्ञान हो जायगा, इस कारण इसका नाम दण्ड-नीति भी होगा।' उस नीति-शास्त्र को पहले शंकरजी ने ग्रहण किया और उसे दस हज़ार अध्यायों में संक्षिप्त कर डाला। उनसे उसे इन्द्र ने ग्रहण किया और उसका संक्षेप पाँच हज़ार अध्यायों में कर डाला। फिर बृहस्पति ने उसे प्राप्त कर उसको तीन हज़ार अध्यायों में संक्षिप्त किया। उसी को शुक्राचार्य ने एक हज़ार अध्यायों में संक्षिप्त किया। इसी बीच में विष्णु भगवान ने विरजा नामक एक मानस पुत्र उत्पन्न किया, किन्तु उसने राज्य करना स्वीकार नहीं किया। विरजा के कीर्तिमान, कीर्तिमान के कर्दम, कर्दम के अनंग, अनंग के अतिबल और अतिबल के वेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इन लोगों ने क्रमशः एक के बाद एक ने राज का शासन और प्रजा की रक्षा की। वेन बड़ा अत्याचारी और दुष्ट राजा था, इस कारण ब्रह्मवादी महर्षियों ने प्रजा के कल्याण के विचार से उसे मार डाला। फिर प्रजा की रक्षा के लिए उन्होंने वेन के शरीर को मथा। उससे निषाद नामक पुत्र का जन्म हुआ, जिससे निषाद-वंश चला। निषाद को राजगद्दी के अनुपयुक्त समझकर ऋषियों ने वेन के शरीर से महाराज पृथु की उत्पत्ति की। पृथु के प्रभाव से पृथ्वी धर्म तथा धन-धान्य से परि-पूर्ण हो गई। पृथु के समय में राजा की स्तुति

करने के लिए ही सूत और मागध आदि की उत्पत्ति हुई। पृथु के गुणों के कारण प्रजा उनके वश में थी। राजा प्रजा का पालन करता है इसी कारण वह देव-तुल्य माना जाता है।'

'पवित्रता, अहिंसा, सत्य, सरलता, क्षमा, क्रोध न करना, धन का विभाजन करना, अपनी स्त्री में सन्तान उत्पन्न करना तथा नौकरों-आश्रितों का भरण-पोषण करना ये सब वर्णों के साधारण धर्म हैं। वेदों को पढ़ना-पढ़ाना, दान लेना, दान देना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, ये ब्राह्मण के विशेष धर्म हैं। दान करना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना और प्रजा की रक्षा करना, ये क्षत्रिय के विशेष धर्म हैं। युद्ध करना तथा चोरों, डाकुओं, दुष्टों को नष्ट करना, उन्हें दण्ड देना राजा का विशेष और सर्व श्रेष्ठ धर्म है। दान, यज्ञ, अध्ययन, ईमानदारी से धन का संचय करना और उचित रीति से पशुपालन-कृषि-व्यापार करना वैश्य का धर्म है। तीनों वर्णों की सेवा करना शूद्रों का धर्म है। शूद्र धन का सञ्चय न करे, क्योंकि धनवान होने से वह ब्राह्मण आदि की बराबरी करने लगेगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को चाहिए कि वे शूद्रों का भरण-पोषण करें और पुराने वस्त्र, छाता-जूता आदि उन्हें दिया करें। यदि सेवा करनेवाला शूद्र बिना पुत्र के मर जाय, तो उच्च वर्ण के मालिक को उसका पिण्ड-दान करना चाहिए। यदि

मालिक गरीब हो जाय तो उसका भरण-पोषण सेवक शूद्र को धन-धान्य द्वारा करना चाहिए। शूद्रों के धन का मालिक उसका स्वामी होता है। सब को श्रद्धा और पवित्रता के साथ यज्ञ करते रहना चाहिए। यज्ञ के समान कोई दूसरा धर्म नहीं है। पापी यज्ञ करने पर साधु हो जाता है। यज्ञ और वेदों के प्रचार के लिए ही ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई है। ब्राह्मण से ही तीनों वर्णों की उत्पत्ति हुई है। वेद जानने और यज्ञ करानेवाला ब्राह्मण देवता के समान है।'

'क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के कर्म करने वाले ब्राह्मण को नरक भोगना पड़ता है। नियम-विहीन, क्रूर, अशुद्ध, हिंसक, शूद्रागामी, सरकारी नौकरी करनेवाला ब्राह्मण (चाहे वेदों को भी जानता हो) को दान देने एवं उससे यज्ञ कराने से कोई फल नहीं मिलता। क्षत्रिय-धर्म सर्व-श्रेष्ठ है, क्योंकि उसके द्वारा ही और सब वर्णों तथा आश्रमों की रक्षा होती है। इसी के प्रभाव से संसार नियम-बद्ध रहता है। सारा संसार क्षत्रियधर्म के कारण ही सुख, शान्ति प्राप्तकर सकता है। प्राचीन समय में विष्णु भगवान ने इसी क्षत्रिय धर्म के अनुसार दानवों और दुष्ट क्षत्रियों का नाशकर देवताओं, ऋषियों तथा संसार की रक्षा की थी। यदि असुरों का नाश न किया जाता तो धर्म, ब्रह्मा, ब्राह्मण, देवगण आदि किसी का भी अस्तित्व न रह जाता।

क्षत्रिय धर्म के कारण ही सब की रक्षा होती है और सब फलफूल सकते हैं। युद्ध में अपने शरीर तक को होम देने से बढ़कर और दूसरा क्या त्याग हो सकता है। दण्ड-नीति और राजधर्म का नाश होने पर सभी प्राणी उच्छृं-खल हो जाते हैं और समाज नष्ट हो जाता है। इन्हीं सिद्धान्तों का उपदेश विष्णु-भगवान ने इन्द्र के रूप में महाराज मानधाता को दिया था। दूसरे लोग वानप्रस्थ, संन्यास आदि आश्रमों का पालन तथा दान, यज्ञ, तप आदि करने पर जिस पुण्य को प्राप्त कर सकते हैं उससे सौगुना अधिक पुण्य राजा को केवल प्रजा-पालन से मिलता है। प्राचीन समय में राजा के न रहने पर प्रजा नष्ट होने लगी। लोक-रक्षा के विचार से ब्रह्माजी ने मनु से कहा कि तुम राजा बनकर प्रजा की और धर्म की रक्षा करो। मनु ने कहा कि मैं असत् कर्मों से और प्रजा से बहुत डरता हूँ। तब ब्रह्माजी ने प्रजा की सम्मति से यह व्यवस्था कर दी कि पाप का भागी पाप करने वाला ही होगा तथा प्रजा हर तरह से राजा का आदर और हर प्रकार से उसकी सहायता करेगी। मनु ने राजा होकर धर्मपूर्वक दण्ड-विधान किया। उच्छृंखलता दूर हो जाने के कारण प्रजा सुख-शान्ति पूर्वक अपने धर्म-कर्म में लग गई। एक बार कौशल-नरेश वसुमना के प्रश्न करने पर बृहस्पतिजी

ने कहा था कि राजा ही प्रजा का हृदय, गुरु, सुख और गति है; धर्मपूर्वक प्रजा का शासन करनेवाला राजा देवलोक को जाता है। नीति-शास्त्र के अनुसार ही राजा को सन्धि, विग्रह, चढ़ाई, युद्ध, मंत्रियों, कर्मचारियों, गुप्त-चरों आदि की नियुक्ति, धन का संग्रह और व्यय, सड़कों, कुओं, नहरों तथा मकानों आदि के बनाने तथा प्रजा के सुख के साधनों की व्यवस्था करनी चाहिए। राजा ही काल का कारण होता है। जब राजा दण्ड-नीति के द्वारा अच्छे ढंग से प्रजा का पालन करता है तब सत्ययुग हो जाता है; चारों वर्ण अपने-अपने धर्म में लगे रहते हैं, सब को सब तरह के सुख और लाभ प्राप्त होते हैं। जिस समय राजा दण्ड-नीति को छोड़कर प्रजा को बहुत सताने लगता है उस समय कलयुग का उदय होता है; चारों वर्ण अपने-अपने धर्म से डिग जाते हैं; रोग, उत्पात, अकाल, आदि से प्रजा का क्षय होने लगता है; चारोंओर दुःख, दारिद्र्य, अधर्म, अशान्ति की बाढ़ आ जाती है; कलियुग को स्थापित करनेवाले राजा को इस लोक में संकटों का सामना करना पड़ता है और मरने पर हज़ारों वर्ष तक नरक की घोर यातना भोगनी पड़ती है। इस कारण राजा को बहुत-समझ बूझकर, धर्मपूर्वक शासन करना और दण्ड-नीति के अनुसार प्रजा का पालन करना चाहिए। वायु-

देव और महर्षि कश्यप ने राजा पुरुरवा को इसी दण्ड-नीति का उपदेश दिया था। उत्तम शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध से सभी का मन प्रसन्न होता है; किन्तु अन्तःकरण भयभीत हो तो इन भोगों में कोई किसी तरह का सुख नहीं पा सकता; अतएव जो सभी जीवों को अभय करके उनकी रक्षा करता है वही उत्तम पुण्य का भागी होता है; क्योंकि तीनों लोकों में प्राण-दान से श्रेष्ठ दान दूसरा नहीं है; राजा ही इन्द्र, यम और धर्म का स्वरूप होकर प्रजा को प्राण-दान देता और उसका पालन करता है।

'ब्राह्मण और क्षत्रियों में विरोध न होना चाहिए, क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रियों के विरोध से राज्य-व्यवस्था बिगड़ जाती है और धर्म की हानि होने के कारण प्रजा नष्ट हो जाती है। इस कारण राजा को सदा बहुदर्शी, विद्वान, बुद्धिमान पुरोहित को वरण कर उसकी सलाह से राज्य-शासन चलाना चाहिए। प्राचीन समय में मुचुकुन्द ने अपने बाहुबल से पृथ्वी को जीतकर कुबेर पर चढ़ाई की। कुबेर ने राक्षसों को भेजकर मुचुकुन्द की सेना का संहार करना प्रारम्भ किया। तब वशिष्ठजी ने अपने तपोबल से राक्षसों को नष्टकर मुचुकुन्द तथा उनकी सेना की रक्षा की। यह देख कुबेर ने मुचुकुन्द को धिक्कारा कि ब्राह्मण के बल का आश्रय लेकर तुम व्यर्थ में बलवान बनते हो। मुचुकुन्द

ने उत्तर दिया कि ब्राह्मण और क्षत्रिय के सम्मिलित बल के द्वारा ही प्रजा की रक्षा की व्यवस्था ब्रह्माजी ने की है; ब्राह्मण और क्षत्रिय के अलग-अलग हो जाने पर प्रजा का पालन उचित रूप से नहीं हो सकता।'

राजा सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों का नाश करके ही स्वर्ग का अधिकारी बन सकता है। कोई भी मनुष्य पूरी तरह से धर्मका आचरण नहीं कर सकता; अतएव वही काम अच्छा है जिसमें धर्म का अंश अधिक हो; बिल्कुल धर्म का परित्याग करने की अपेक्षा थोड़ा-सा धर्म करना अधिक अच्छा है, क्योंकि निकम्मे मनुष्य से बढ़कर कोई दूसरा पापी नहीं हो सकता।'

अध्याय ७५-८१

राज्य से अधर्म नहीं, आपद्धर्म, मित्र, श्रीकृष्ण नारद-संवाद

युधिष्ठिर ने पूछा कि राज्य करने से दण्ड देना पड़ता है, दूसरों के धन आदि हरण करने पड़ते हैं, तब राज्य और धर्म दोनों का एक साथ कैसे हो सकते हैं? भीष्म ने कहा—'प्रजा की रक्षा करने के कारण राजा को उसके धर्म का छटवाँ अंश प्राप्त होता है। राजा को चाहिए कि किसी को बल से, किसी को दान से, किसी को सम्मान

से अपने वशमें कर, वह प्रजा की रक्षा करता रहे। जो राजा सज्जनों, विद्वानों, गुणियों को आश्रय देता और दुष्टों का दमन करता है उसे सुख, यश, ऐश्वर्य और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। देवलक, (पूजापाठ की नौकरी करने वाला) ज्योतिषी, ग्राम-याजक (पुरोहित) और रास्ते पर कर वसूल करने वाला ब्राह्मण चाण्डाल के समान होता है। ऋत्विक, पुरोहित, मंत्री, दूत और जासूस का काम करने वाला ब्राह्मण क्षत्रिय के समान होता है। सेना में नौकरी करनेवाला ब्राह्मण वैश्य के समान है। धर्म-भ्रष्ट ब्राह्मण को राजा धार्मिक ब्राह्मणों की श्रेणी से अलग कर दे और उससे 'कर' वसूल करे। कर्महीन ब्राह्मण का धन ले लेने में राजा को अधर्म नहीं लगता। किन्तु ब्रह्मवेत्ता, कर्मनिष्ठ ब्राह्मण का आदर-सत्कार और भरणपोषण करना राजा का सबसे पहला कर्तव्य है। एक बार एक राजा को वन में राक्षसों ने पकड़ लिया। किन्तु जब उन्हें यह विदित हुआ कि उस राजा के राज्य में सभी वर्ण अपने-अपने धर्म का पालन नियमपूर्वक करते हैं तो उन्होंने उसे यह कहकर छोड़ दिया कि धर्म-पूर्वक दण्ड विधान करनेवाले, ब्रह्मबल से रक्षित राजा को किसी से भी भय नहीं हो सकता।

'आपत्ति पड़ने पर ब्राह्मण कृषि तथा पशुपालन द्वारा

अपना निर्वाह कर सकता है। किन्तु मदिरा, मांस, तिल, नमक, पकाया हुआ भोजन, घोड़ा, गाय, भैंस आदि पशु बेंचने से ब्राह्मण को नरक में जाना पड़ता है। राजा के निर्बल हो जाने पर सभी वर्णों के लोगों को शस्त्र लेकर अपनी और प्रजा की रक्षा करने का अधिकार होता है। प्रजा की रक्षा करते हुए संग्राम में मरने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। युद्ध करने वाले शत्रुओं को मारने में कोई पाप नहीं लगता। यथार्थ राजा वही है जो सज्जनों की रक्षा करता है और दुर्जनों को दण्ड देता है। यज्ञ करना बहुत आवश्यक है। किन्तु यज्ञ से बढ़ कर तप है। अहिंसा, सत्य, कोमलता, इंद्रिय-दमन और दया ये ही यथार्थ तप हैं; शरीर सुखा डालना और तपस्वी का वेष बना लेना तप नहीं है।

'बिना सहायक मित्रों के कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता। मित्र चार प्रकार के होते हैं:-सहार्थ, (परस्पर सहायक) कृत्रिम (धन आदि देकर बनाया गया) भजमान (पुश्तैनी) और सहज (रिश्तेदार) इनमें से सहार्थ तथा कृत्रिम से तनिक अधिक सतर्क रहना चाहिए; क्योंकि ये आसानी से शत्रुओं की ओर जा सकते हैं। वैसे तो किसी पर भी इतना दृढ़ विश्वास न करना चाहिए कि अपना जीवन ही उसके अधीन हो जाय। सभी की जाँच करते रहना ज़रूरी है। एकदम अविश्वास करना, सदा

सशंकित रहना तो मृत्यु से भी बढ़कर भयावह होता है। और एकान्त रूप से विश्वास कर लेना भी संकट से खाली नहीं होता। इस कारण उचित रीति से विश्वास और शंका दोनों ही उन्नति के लिए आवश्यक हैं। एक मित्र का अत्यधिक सम्मान एवं विश्वास करने से अन्य मित्र, बन्धु-बांधव रुष्ट हो जाते हैं। इस कारण सावधान होकर चतुरता-पूर्वक ऐसा व्यवहार करे जिसमें सभी संतुष्ट होकर सहायता और रक्षा करते रहें। श्रीकृष्णजी ने एक बार नारद जी से कहा—'शत्रु, मूर्ख-मित्र और चपल से गुप्त बात न कहनी चाहिए। मैं बहुत ही विकट परिस्थित में पड़ गया हूँ। प्रबल आहुक और अक्रूर वंश मेरे परम मित्र हैं, किन्तु यदि मैं इन दोनों में से किसी एक पर स्नेह प्रकट करूँ तो दूसरा कुपित हो जाय। इस कारण न तो मैं इनमें से किसी को त्याग ही सकता और न विशेष स्नेह ही प्रकट कर सकता। ये जिसके पक्ष में न हों वह अत्यन्त दुखी होगा; क्योंकि ये इतने प्रबल हैं कि वे जिसकी सहायता न करें वह विनष्ट हो जाय और जिसकी सहायता करें वह सहज ही में असाधारण ऐश्वर्य प्राप्त कर ले। अब ऐसा उपाय बतलाइए जिससे मेरा और मेरे कुटुम्बियों का कल्याण हो।' नारद जी ने उत्तर दिया—'आपने उग्रसेन को जो राज्य दिया है उसे अब आप वापस नहीं ले सकते,

क्योंकि वैसा करने से आपस ही में भयंकर वैर-विरोध उपस्थित हो जायगा। आप क्षमा, सरलता, नम्रता, दान और सम्मान के द्वारा ही अब अपने मित्रों और विरोधियों को अपने वश में कर सकते हैं। बुद्धि, क्षमा, इन्द्रिय निग्रह और निस्पृहता के द्वारा ही मनुष्य यशस्वी हो सकता है। हमेशा अपने पक्ष की उन्नति करते रहने से धर्म, कीर्ति, आय तथा ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। आप क्षमा, नम्रता, दान तथा सम्मान के द्वारा ही सब को वश में कर सकते हैं।'

अध्याय ८२-६१

मंत्री के गुण, कालकवृक्षीयाऋषि, इंद्र-बृहस्पति, कर-रीति, उत्तथ्य-मांधाता

भीष्म बोले—'जिस मनुष्य के द्वारा धन की आमदनी हो उसकी रक्षा अवश्य करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में एक प्राचीन इतिहास है। कोशल देश के राजा क्षेमदर्शी के राज्य में एक बार कालकवृक्षीय नामक एक महर्षि आये। वे एक कौवे को पिंजड़े में लिये हुए थे। 'वायसी विद्या' द्वारा वे भूत-भविष्य का हाल बतला देते थे। उन्होंने मंत्रियों तथा अन्य राज्य कर्मचारियों की चोरियों, षड्यंत्रों आदि का पता बतलाया। मंत्रियों ने रात के

समय उनके कौवे को मरवा डाला और वे उनके मारने का उपाय करने लगे। ऋषि ने डरकर राजा की शरण ली और सब हाल बतलाकर कहा कि आपके मन्त्री आदि आपको मारकर राज्य लेना चाहते हैं, मैंने उनके षड्यंत्रों का भंडाफोड़ किया है, इस कारण अब वे मुझे मारने का उपाय कर रहे हैं। राजा ने ऋषि की रक्षा का उपाय किया। फिर जाँच की। उनकी बातों को सही पाकर उन्हें अपना पुरोहित बना लिया और एक-एक करके मंत्रियों को दण्ड दिया। कालकवृक्षीय ऋषि की सलाह से चलकर राजा पृथ्वी भर का अधीश्वर हो गया तथा प्रजा भी सुख-समृद्धि से परिपूर्ण हो गई। राजा को चाहिए कि अपने हित करने वाले की सब तरह से रक्षा करे और अहित करनेवालों को एक-एक करके दण्ड दे, एक साथ अनेक प्रबल लोगों को दोषी ठहराने से वे सब मिलकर राजा का अनिष्ट कर सकते हैं।

'मंत्री, सेनापति, गुप्तचर तथा अन्य जिम्मेदारी के पदों पर बहुत समझ-बूझ और जाँचकर गुणवान और विश्वासी मनुष्यों को रखना चाहिए; क्योंकि इन्हीं के गुण-दोष पर राजा की उन्नति तथा अवनति निर्भर रहती है। बृहस्पति ने इन्द्र को उपदेश दिया था कि नम्र तथा मधुर-भाषी मनुष्य सब का प्यारा और सर्वश्रेष्ठ हो जाता है, ऐसा मनुष्य किसी का सर्वस्व हरण करके भी अपने मधुर वचनों

और नम्र स्वभाव से उसे अपने वश में किये रहता है। राजा को चाहिए कि वह छांटकर चारों वर्णों के मंत्रियों को रखकर शासन का कार्य चलाये। राजा को चाहिए कि उचित स्थानों पर दुर्ग-निर्माण तथा सब प्रकार से रक्षा और निर्वाह का प्रबन्ध कर नगर का निर्माण और उसमें विभिन्न जातियों और पेशों के लोगों के बसाने का प्रबन्ध करे। जासूसों के द्वारा मित्र-शत्रु सभी के विचारों का पता रखना ज़रूरी है। नगरों और वनों में कम-से-कम एक-एक तपस्वी को रखकर उससे मित्रता बनाये रखना आवश्यक है; क्योंकि उन तपस्वियों के द्वारा राजा को आपत्ति-काल में और साधारण समय में भी बहुत प्रकार की सहायता मिल सकती है। तपस्वियों से सब अपने भेद बता देते हैं।

'गाँवों, क़स्बों, नगरों आदि के प्रबन्ध के लिए अधिपतियों की नियुक्ति की जानी चाहिए। प्रत्येक अधिपत्ति अपने से ऊपरवाले के पास अपने कार्यों का और आय-व्यय का विवरण यथासमय नियम-पूर्वक भेजता रहे। वाणिज्य, व्यवसाय, क्रय-विक्रय, शिल्प, कृषि आदि पर उचित 'कर' वसूल करना चाहिए। किन्तु प्रजा से 'कर' के रूप में इस तरह से धन लेना चाहिए, जिसमें उसे तनिक भी कष्ट न हो; क्योंकि यदि 'कर' के द्वारा राजा प्रजा के अधिकांश धन को चूसने की चेष्टा करता है तो प्रजा का क्षय

होने लगता है और प्रजा के क्षय होने पर राज्य और राजा दोनों नष्ट हो जाते हैं। जो राजा अधिक 'कर' लेता है उसके राज्य से व्यापारी, शिल्पी, कृषक आदि भाग जाते हैं और इस प्रकार राजा के आय का द्वार बन्द हो जाता है। राजा मांधाता के पूछने पर ब्रह्मज्ञानी उतथ्य ने जो उपदेश दिया वह इस प्रकार है: धर्म की स्थापना और प्रजा की रक्षा के लिए ही राजा की उत्पत्ति हुई है। जो प्रजा और धर्म की रक्षा करता है वही राजा है। जिससे प्रजा का सुख-ऐश्वर्य बढ़े वही धर्म है। धर्म की रक्षा न होने से किसी का अधिकार किसी भी वस्तु, कन्या, स्त्री तथा, भूभाग पर नहीं रह जाता; कोई भी सत्कर्म, यज्ञ, वेदाध्यन, सेवा, लोकोपकार आदि नहीं हो सकते; चोर-डाकू, हिंसक, अत्याचारियों के कारण प्रजा त्रस्त हो उठती है; प्राण सदा संकट में पड़े रहते हैं, सभी भयभीत रहते हैं, प्रजा का क्षय होने लगता है। ऐसी भयावह, संकटपूर्ण स्थिति को दूर कर, प्रजा की रक्षा, उसके पालन, भरण-पोषण और सुख-साधन के लिए ही राजा की उत्पत्ति हुई है। वेद का वचन है कि अधर्म के द्वारा लक्ष्मी के गर्भ से दर्प नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। दर्प जिसके पास पहुँचा उसी को उसने नष्ट किया। इस कारण दर्प और अधर्म से सदा बचे रहना चाहिए। जो राजा अपनी रक्षा और प्रजा-पालन में मन

नहीं लगाता वह शीघ्र नष्ट हो जाता है। राजा के कर्त्तव्य भ्रष्ट और धर्महीन होने से सब प्रजा को कष्ट भोगने पड़ते हैं। दुर्बल को न सताना चाहिए; क्योंकि दुर्बल की आह से सर्वनाश हो जाता है। अनीति से प्रजा के धन को हरण करनेवाले राजा का नाश हो जाता है। यदि पुत्र भी अपराध करे तो उसे भी दण्ड देना राजा का धर्म है। बिना भेदभाव के दण्ड-विधान करना चाहिए। तपस्वियों तक के कार्यों की जांच राजा को करनी चाहिए। मनुष्यों का संग्रह करने, मीठी बातें बोलने, आदर देने, दान करने और सावधानी से शत्रु का भेद लेते रहनेवाले राजा की सदा उन्नति होती है। इसी उपदेश के अनुसार चलकर मांधाता ने पृथ्वी भर का राज्य प्राप्त कर लिया था।'

अध्याय ९२-१०६

वसुमना-वामदेव, युद्ध-धर्म, विजय के उपाय, क्षेमदर्शी-जनक

युधिष्ठिर के पूछने पर कि धर्मात्मा राजा को किस प्रकार आचरण करना चाहिए, भीष्म बोले—'पूर्व समय में यही प्रश्न कोशलपति वसुमना ने किया था। तब जो उत्तर तत्वज्ञानी वामदेव ने दिया था उसका विवरण यहाँ दिया जाता है। जो राजा धर्म का पालन करता है, वह सारी पृथ्वी को वश में कर लेता है। धर्मघातक, अभि-

मानी, निकम्मा, स्वेच्छाचारी, दण्डनीति का न जानने वाला, लोभी, कृपण, दुर्विनीत राजा तथा दुष्टमंत्री दण्डनीय हैं, वे शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। ईर्ष्याहीन, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान राजा सदा उन्नति करता रहता है। धर्म, अर्थ, काम, बुद्धि और मित्रों को सदा बढ़ाते रहना चाहिए; क्योंकि इन्हीं से सफलता मिलती है, तथा यश, लक्ष्मी और प्रजा की वृद्धि होती है। प्रिय मनुष्यों पर अत्यन्त प्रसन्न, अप्रिय मनुष्यों पर अत्यन्त कुपित और आर्थिक कठिनाइयों के पड़ने पर चिन्तित न होना चाहिए। दुर्ग आदि की रक्षा, युद्ध, न्यायानुसार प्रजा की रक्षा, मंत्रणा और प्रजा के सुख-साधन के द्वारा ही राज्य की वृद्धि होती है। एक मनुष्य ये सब काम नहीं कर सकता। इस कारण राजा को चाहिए कि वह चतुर, गुणी, विश्वासी तथा अनुरक्त मनुष्यों को विभिन्न कार्यों का भार सौंपे। अप्रिय मनुष्य को भी मीठी बातों से अपने वश में कर उनसे काम लेना चाहिए। दृढ़ मूल होकर राजा अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त करे और निर्बल राज्यों पर आक्रमण कर उन्हें अपने अधीन कर ले। वही राजा दृढ़ मूल है जिसके मंत्री हृष्ट-पुष्ट हों, देश अति समृद्धिशाली हो और प्रजा धनवान, संतुष्ट और वशीभूत हो। जिस राजा के सैनिक संतुष्ट और शत्रुओं को धोखा देने में दक्ष हों, वह छोटी-सी सेना

लेकर भी सारी पृथ्वी को जीत सकता है। जो राजा अपने कर्त्तव्य पूरे करता रहता है वह कभी संतापित और समाज में अपमानित नहीं होता। इस उपदेश के अनुसार चलकर ही वसुमना पृथ्वी भर के राजा हुए थे।

'दूसरे के राज्य में जाकर पहले प्रजा को मिलाकर उस पर शासन करने की चेष्टा करनी चाहिए। यदि प्रजा न माने और उस देश का राजा या सेना युद्ध ठान दे तो शत्रु जैसा युद्ध करे उसी प्रकार उसका उत्तर दे। यदि शत्रु छल-कपट से काम ले तो छल-कपट के द्वारा ही उसे परास्त करना धर्म है। युद्ध में बन्दी क्षत्रिय, राजकन्या, दासी आदि को एक वर्ष तक कैद में रक्खे और उनसे अपनी बात स्वीकार कराने के उपाय करे। शत्रु पर चढ़ाई करते समय यदि अपने पक्षवाला कोई रुष्ट हो जाय तो उसे सम्मान, दान आदि से प्रसन्न करे; क्योंकि अप्रसन्न मनुष्य को शत्रु फोड़ सकते हैं। जिसका राज्य विस्तृत है, प्रजा संपन्न और अनुरक्त है, मन्त्री तथा कर्मचारी संतुष्ट और स्वामिभक्त हैं वही राजा दृढ़-मूल है और उसी की विजय निश्चित है। विजय करना राजा का कर्त्तव्य है। युद्ध में शत्रुओं की हत्याएँ करके भी राजा प्रजा पालन, दुष्ट-संहार, यज्ञ-दान द्वारा पापों से मुक्त हो जाता है। युद्ध में खून गिरने से सारे पापों के प्रायश्चित हो जाते हैं। संग्राम में क्लेश

सहने से बढ़कर दूसरा तप नहीं है। निर्बलों की रक्षा करना सब से बढ़कर पुण्य का कर्म है। साथियों को छोड़कर रण-भूमि से भागना सब से बड़ा पाप और घृणित कार्य है। घर में चारपाई पर मरना क्षत्रिय के लिए सबसे निन्दनीय कार्य है। लड़ते-लड़ते मर जाने से दिव्य लोक प्राप्त होते हैं।

'एक बार राजर्षि अम्बरीष ने स्वर्ग में जाकर देखा कि उनका सेनापति सुदेव इंद्र के साथ विमान में बैठा स्वर्ग-सुख लूट रहा है। उनके पूछने पर इन्द्र ने कहा—'सुदेव ने युद्ध रूपी यज्ञ में प्राणों की आहुति देकर दिव्य लोक प्राप्त किये हैं। युद्ध से क्षत्रिय को सभी कुछ प्राप्त हो सकता है। युद्ध में मरे हुए वीर के लिए अन्त्येष्टि क्रिया की आवश्यकता नहीं रहती। मैं स्वयं युद्ध में नमुचि, पाक, जम्भ, वृत्र आदि को मारने के कारण स्वर्ग का अधीश्वर हो सका हूँ।' प्रतर्दन के साथ युद्ध करते समय राजा जनक ने अपने सैनिकों से कहा था कि जो वीर पुरुष युद्ध में मरता है उसे देवांगनाओं से परिपूर्ण दिव्यलोक प्राप्त होते हैं। सारा संसार वीरों के आश्रय पर रहता है, इस कारण सदा वीरों का आदर होता है। वीरता से बढ़कर विश्व भर में और कुछ भी नहीं है।

'स्थान और समय देखकर सेना की व्यवस्था करना और सैनिकों को उत्साहितकर शत्रुओं को युद्ध में नष्ट

करना चाहिए। शत्रु जिस शस्त्र और उपाय का अवलम्बन करे उसी के अनुसार शस्त्र और उपाय से उसे जीतना चाहिए। वीर पुरुषों के अनेक प्रकार और लक्षण होते हैं, किन्तु सभी वीर युद्ध के समय उत्साहयुक्त और प्रसन्न रहते हैं, तथा मरने-मारने में उन्हें भय नहीं लगता। जिस सेना के वाहन और सैनिक प्रसन्न, उत्साहपूर्ण हों, जिसके अस्त्र-शस्त्र, कवच, युद्ध-सामग्री ठीक हो, जिसके संचालक अनुभवी, दूरदर्शी और बुद्धिमान हों, वह सेना अवश्य विजय प्राप्त करती है। शत्रु का अच्छी तरह से दमन करने के बाद ही उसे क्षमा करे। विजित शत्रु के मरे हुए योद्धाओं के लिए शोक प्रकट करने और जीवित वीरों का सम्मान द्वारा विश्वास प्राप्त करने से ही राजा सुख से उन पर शासन कर सकता है।

'पूर्व समय में इन्द्र के पूछने पर बृहस्पति ने विजय के उपाय बतलाते हुए कहा था कि अपने क्रोध, भय तथा हर्ष का पता शत्रुओं को न लगने देना चाहिए। शत्रुओं से सदा मीठी-मीठी बातें और अच्छा बर्ताव करना चाहिए। शत्रु को परास्त कर निश्चिंत न बैठना चाहिए, क्योंकि मौका पाकर शत्रु फिर उभड़ सकता है। युद्ध में विजय अनिश्चित रहती है, इस कारण पहले साम, दान, भेद के द्वारा उसे वश में करने का प्रयत्न करना या विष देकर उसे नष्ट

करने का उपाय करना चाहिए। मौक़ा देख, शत्रु को असावधान अथवा निर्बल पाकर एकाएक हमलाकर उसे नष्ट कर डालना चाहिए। यदि अनेक शत्रु हों तो उनमें भेद डालकर एक-एक करके उनको पराजित, वश में या नष्ट करे; क्योंकि सब के साथ एक साथ युद्ध करने से हानि की संभावना रहती है। बलवान शत्रु के साथ ऊपर से प्रीति और नम्रता का व्यवहार रखकर गुप्तरीति से उसे नष्ट करने का उपाय करना चाहिए। दुष्ट सदा पीठ पीछे बुराई और अपकार करते हैं तथा उन्नति में बाधक होते हैं, अतएव उनसे सदा बचे रहना चाहिए। इन्द्र ने इन उपदेशों के अनुसार चलकर शत्रुओं को नष्ट किया था।

'एक बार कोशल राज क्षेमदर्शी बलहीन हो घोर विपत्ति में पड़, शान्ति प्राप्त करने के लिए कालकवृत्तीय महर्षि के पास गये। ऋषि ने उन्हें दुखी देख समझाया कि बुद्धिमान संसार के सभी पदार्थों को नश्वर समझकर उनके नष्ट होने पर शोक नहीं करते। जो वस्तु खो गई हो या प्राप्त न हुई हो उसके लिए शोक करना व्यर्थ है। मनुष्य का शरीर तक सदा साथ नहीं देता, ऐसी दशा में अन्य अनित्य वस्तुओं के लिए शोक करना व्यर्थ है। जो वस्तु प्राप्त हो उसी का उपभोगकर संतुष्ट रहना उचित है। धन की तृष्णा छोड़ने से ही शान्ति-सुख प्राप्त हो

सकते हैं। किन्तु यदि तुम इस वैराग्य मार्ग से संतुष्ट नहीं हो सकते तो इस विपत्ति के समय अहंकार छोड़, नम्र होकर शत्रुओं से मेल कर लो। राजा जनक के आश्रय में रहकर तुम धन प्राप्त कर सकोगे। धन पाने पर तुम्हें सहायक मिल जायँगे। तब तुम शत्रुओं में फूट डालकर और उन्हें व्यसनों में फँसाकर उनका नाश कर सकोगे। तुम कुत्ते की तरह सावधान, मृग की तरह भयभीत, कौए की तरह इंगितज्ञ बन, शत्रुओं को व्यसनों में फँसाकर उनके धन का नाश करो और तब विष-औषधियों द्वारा उनके घोड़ों, हाथियों, सैनिकों, सहायकों को नष्टकर जड़-मूल से संहार कर डालो। क्षेम-दर्शी ने कहा कि मैं कपट और पाखण्ड के द्वारा जीना और अधर्म के द्वारा धन-संग्रह करना नहीं चाहता। तब ऋषि ने उनकी धर्म-बुद्धि और दृढ़ता की प्रशंसा कर उनकी मित्रता राजा जनक से करा दी। क्षेमदर्शी के गुणों पर मुग्ध होकर राजा जनक ने उनके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया और धन-मान से उन्हें संतुष्ट कर दिया।'

अध्याय १०७-१२०

राजनीति, माता-पिता की महिमा, सत्य-मिथ्या, संकटों से त्राण, भले-बुरे, आलस्य, शत्रु को वश में करने के उपाय, दुष्टों के दुर्वचन, सहायकों की आवश्यकता, मुनि और कुत्ता

युधिष्ठिर के गणों के संबंध में प्रश्न करने पर भीष्म बोले—'लोभ और क्रोध से ही राजा में और गणों में विरोध हो जाता है और वे एक दूसरों को नष्ट करने के लिए उपाय करने लगते हैं। गणों में फूट न पड़े, सदा यही प्रयत्न करना चाहिए। गणों तथा मुखियों को मिलाये रहना और उनसे सलाह करना विशेष हितकारक होता है।'

'माता-पिता और गुरुजनों की सेवा करना ही परम धर्म है, इसी से मनुष्य यश, ऐश्वर्य, विजय और दिव्य लोकों को प्राप्त कर सकता है। वेद-शास्त्र का मत है कि दस श्रोत्रियों की अपेक्षा एक आचार्य, दस आचार्यों की अपेक्षा एक उपाध्याय, दस उपाध्यायों की अपेक्षा एक पिता, दस पिताओं से तथा सारे संसार से बढ़कर माता का महत्व है; किन्तु धर्मोपदेश देनेवाला गुरू इन सब से श्रेष्ट होता है; क्योंकि माता-पिता के द्वारा उत्पन्न किया हुआ शरीर नश्वर होता है, किन्तु गुरू के दिये हुए उपदेश कभी नष्ट नहीं होते। माता और गुरू का सदा सम्मान करना चाहिए।

'सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। किन्तु यथार्थमें सत्य का समझना सबसे कठिन बात है। जहाँ सत्य मिथ्या-रूप में और मिथ्या सत्य रूप में प्रकट हो, वहाँ सत्य न कहकर मिथ्या बोलना ही धर्म-संगत है। मनुष्यों की उन्नति करने तथा उनका क्लेश दूर करने और उनकी रक्षा करने के लिए ही धर्म की सृष्टि हुई है। अतएव यथार्थ धर्म वही है जिससे प्रजा समुन्नत, क्लेश हीन हो और सुरक्षित रह सके। यदि दुष्ट लोग किसी को मारने या लूटने के लिए पूछ-ताछ करें तो ऐसे अवसर पर झूठ बोलकर प्राण या धन की रक्षा करना परम धर्म है। ऐसे अवसर पर सत्य बोलने से पाप होता है। जो जैसा व्यवहार करे उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना उचित है। शठ के साथ शठता करना और सज्जन के साथ सरलता का व्यवहार करना धर्म है। 'जो मन-वचन-कर्म से कभी पाप नहीं करते, सदा सावधानी से चलते हैं; ब्रह्मचर्य-पूर्वक वेदों का अभ्यास करते हैं; अभिमान नहीं करते, दूसरे के ऐश्वर्य को देखकर जलते नहीं; अहंकार, लोभ, आलस्य आदि नीचवृत्तियों से दूर रहते हैं; पर निन्दा और परस्त्री से बचे रहते हैं; अपनी और दूसरे के उन्नति में प्रयत्नशील रहते हैं; दुष्टों के द्वारा की गई निन्दा को बिना विचलित हुए सह लेते हैं तथा देश, काल और पात्र को देखकर कार्य करते हैं वे संसार

के संकटों से छूट जाते हैं।

'प्राचीन समय में एक राजा ने अपने क्रूर कर्म के कारण मरने पर गीदड़ का जन्म पाया। पहले जन्म की सुधि रहने के कारण उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने मांस और दुष्ट कर्मों को त्यागकर सात्विक जीवन बिताना आरम्भ किया। उसके साथी गीदड़ों ने समझा-बुझाकर अपनी तरह चलाना चाहा, किन्तु उसने उत्तर दिया कि कोई आश्रम या योनि धर्म का कारण नहीं होती, संन्यास लेकर भी मनुष्य पाप कर सकता है और नीच योनि में उत्पन्न होकर भी मनुष्य सत्कर्म कर सकता है। उसके सात्विक आचरण को देख एक सिंह ने हठ करके उसे अपना मंत्री बनाया। गीदड़ ने उससे यह शर्त करा ली कि बिना जाँच किए वह उसकी किसी बात पर क्रोध न करेगा, क्योंकि पुराने नौकर और मंत्री द्वेष के कारण दुष्टता कर सकते हैं। गीदड़ ने मंत्री होकर नीति और धर्म के अनुसार व्यवस्था की। इससे दूसरे मंत्री और कर्मचारी बहुत भयभीत हुए। सबने अनेक प्रकार के उपायों द्वारा नये मंत्री को अपने अनुसार बनाना चाहा, किन्तु उसने अपना धर्म न छोड़ा। तब उन लोगों ने सिंह के भोजन को गीदड़ के यहाँ चुपके से रखवा दिया। नाना प्रकार के दोष लगाकर नये मंत्री के ऊपर राजा को कुपित कर

दिया। सिंह ने अपने भोजन को मंत्री के यहां देखकर तथा उसके विरुद्ध कही गई बातों को सच मानकर उसे प्राणदण्ड का हुक्म दे दिया। यह देख राजा की माता ने उसे अनेक प्रकार से समझाया और कहा कि बिना जाँच किये किसी बात को सच न मान लेना चाहिए। आकाश औंधे कड़ाह की तरह और जुगनू अग्नि के समान दिखाई देता है, किन्तु यथार्थ में न तो आकाश कड़ाह ही है और न जुगनू अग्नि ही। अतएव प्रत्येक वस्तु की परीक्षा कर लेनी चाहिए। संसार में लोभियों का लोभ-रहित मनुष्यों के साथ; दुर्बलों का बलवानों के साथ, मूर्खों का पंडितों के साथ, दरिद्रों का धनिकों के साथ अधर्मियों का धर्मात्माओं के साथ, और कुरूपों का रूपवानों के साथ, विरोध रहता ही है। तपस्या करने वाले वनवासी मुनियों के भी शत्रु-मित्र और उदासीन होते हैं। दुष्ट लोग ईर्ष्या से सज्जनों के कामों में दोष लगाते हैं। दूसरों के अपराध लगाने पर बिना जाँच किये ही जो दण्ड दे देता है वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। अपनी माता के कहने से सिंह ने जाँच की, जिसमें मंत्री के शत्रुओं का षड्यंत्र प्रकट हो गया। राजा ने मंत्री को सम्मानित कर प्रसन्न करना चाहा। गीदड़ ने कहा कि सम्मान के बाद मेरा ऐसा अपमान हुआ है कि मुझे यहाँ न रहना चाहिए। अपने पद से हटाये हुए असंतुष्ट, अप-

मानित, हृतसर्व्वस्व, लोभी, क्रोधी, दुर्बल, निर्दय अभिमानी, चिन्तित और सदा व्यसन में आसक्त सेवक मालिक के पास रहकर शत्रु के समान काम करते हैं। आपने इस समय मेरा घोर अपमान किया है। इस कारण मैं आपसे डरता रहूँगा और आपको मुझपर संदेह बना रहेगा। मेरे ऊपर दोष लगानेवाले भी क्षुब्ध और असंतुष्ट रहेंगे। ऐसे स्थान पर रहने में कुशल नहीं है। यह कह गीदड़ दूसरे वन में चला गया और प्रायोपवेशन द्वारा (अन्नजल छोड़) शरीर त्यागकर स्वर्ग को गया।

'उन्नति चाहने वाले का सबसे बड़ा शत्रु आलस्य है। प्राचीन समय में एक ऊँट ने तपकर ब्रह्मा से सौ योजन लम्बी गर्दन प्राप्त की। आलस्य के मारे उसने इधर-उधर जाना छोड़ दिया। वह अपनी गर्दन को घुमाकर एक ही स्थान पर पड़ा-पड़ा किसी तरह अपना पेट भर लेता। एक बार आँधी-पानी में उसने रक्षा के विचार से अपनी गर्दन को एक कंदरा में छिपा दिया। वहाँ गीदड़ उसकी गर्दन काटने लगे, पर वह आलस्य के मारे भाग न सका। इस प्रकार आलस्य के कारण मूर्ख ऊँट अपने प्राण गँवा बैठा। बुद्धि और आलस्य-त्याग ही सब सिद्धियों के आधार हैं।

'जो बुद्धिमान मनुष्य अपने शत्रुओं के बल, पराक्रम,

साधन, त्रुटियाँ देख-समझकर उचित रीति से कार्य करता है उसकी पराजय कभी नहीं होती। एक बार समुद्र ने नदियों से पूछा कि तुम अपनी धारा में बड़े-बड़े वृक्ष तो बहा लाती हो पर बेत को नहीं लातीं। गंगा जी ने उत्तर दिया कि जो बड़े-बड़े पेड़ घमंड के कारण तनकर खड़े रहते हैं वे ही हमारे प्रवाह में पड़कर नष्ट हो जाते हैं, किन्तु बेत तो हमारे प्रवाह के सामने नम्रता से झुक जाता है, इस कारण हमारे प्रवाह से उसे कोई हानि नहीं पहुँच सकती। बुद्धिमान, नीतिज्ञ पुरुष शत्रु को प्रबल देख बेत की तरह नम्र होकर अपनी रक्षा कर लेते हैं। सभा में दुष्टों के दुर्वचनों को धैर्य के साथ सहन करने से सज्जन का कुछ नहीं बिगड़ता। दुर्जनों के मुँह लगने से ही मनुष्य नीचे गिर जाता है।

'अकेला राजा राज्य का शासन नहीं कर सकता। बिना दूसरे की सहायता के कोई भी कार्य आसानी से पूरा नहीं हो सकता। वही समृद्धिशाली, विजयी और यशस्वी हो सकता है जिसके कर्मठ, विश्वासी, चतुर सहायक हों। एक समय एक वन में एक ऋषि तपस्या करते थे। वे सबके प्रति प्रेम रखते थे। उनके आश्रम में एक दुर्बल कुत्ता पड़ा रहता था। एक बार वहाँ एक चीता आया। कुत्ता उसे देख कर डरा। यह देख ऋषि ने अपने

प्रताप से उसे चीता बना दिया। फिर क्रमशः वहां बाघ, हाथी, सिंह और शरभ आये और ऋषि ने कुत्ते को डरा हुआ देख उसे क्रम से बाघ, हाथी, सिंह, शरभ बना दिया जिस में उसे किसी से भय न हो। अन्त में शरभ बन जाने पर उस दुष्ट ने उन ऋषि को ही खा जाने का विचार किया। तब ऋषिने हँसकर उसे फिर कुत्ता बना दिया। नीचों को आश्रय देकर बढ़ाने से वे सदा अपने उपकार करनेवाले को ही नष्ट करने के उद्योग में रहते हैं। बहुत जाँच करने के बाद गुणी, निर्दोष, उपयुक्त मनुष्यों को मंत्री और दूसरे जिम्मेदारी के पदों पर नियुक्त करना चाहिए। जो जिस पद के योग्य हो उसे उसी पदपर रखना चाहिए। सिंह के पद पर कुत्ते को रखकर कोई सफल नहीं हो सकता। नीच, दुराचारी, अन्यायी, घूँसखोर, अज्ञानी मनुष्यों को जिम्मेदारी के पद पर नियुक्त करने से प्रजा का अनिष्ट होता है और राजा स्वयं संकट में पड़ता है। इसके विपरीत योग्य, नीतिज्ञ, बुद्धिमान, शूर, अनुभवी, न्यायरत पुरुषों को उचित पदों पर रखने से प्रजा और राजा दोनों के ही ऐश्वर्य, सुख, प्रताप, संतोष बढ़ते हैं। जो अपने हितू-मित्रों की सबसे अधिक भलाई करता है वह स्वयं अधिक सुखी, समृद्धिशाली तथा यशस्वी होता है।

अध्याय १२१-१३०

दण्ड की उत्पत्ति और स्वरूप, वसुहोम-मांधाता, कामन्दक आंगरिष्ठ, इन्द्र-प्रह्लाद, ऋषभ-सुमित्र, वीरद्युम्न-तनु, आशा की कृशता, यम-गौतम और माता पिता की सेवा

युधिष्ठिर के धर्म का विवरण पूछने पर भीष्म बोले—'संसार में जिसके द्वारा सब जीवों पर अधिकार किया जा सकता है उसी को दण्ड कहते हैं और जिससे धर्म का प्रकाश होता है वही व्यवहार है। जो शत्रु-मित्र सब के लिए निष्पक्ष होकर दण्ड का विधान करता है वह धर्म-स्वरूप है। यथार्थ रूप से दण्ड का विधान करने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। दण्ड का तेज प्रज्वलित अग्नि के समान एवं रूप नीले कमल के समान और चेष्टा रुद्र के समान भयंकर रहती है। दण्ड साक्षात नारायण का रूप है। प्रजा दण्ड द्वारा सुरक्षित रहकर उन्नति करती है। यदि दण्ड न हो तो सभी एक दूसरे को सताने लगें और भय के कारण सभी व्यापार नष्ट हो जायँ। दण्ड मनुष्यों को सुमार्ग पर लगाता है। अपराध करने पर अपने प्रिय और पूज्य व्यक्ति को भी दण्ड देना राजा का धर्म है। पूर्व समय में अंगराज वसुहोम प्रचण्ड तप द्वारा देवर्षि तुल्य हो गये थे। राजा मांधाता के पूछने पर उन्होंने दण्ड की उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई

थी; प्राचीन समय में ब्रह्माजी ने अपने सर से क्षुप प्रजापति को उत्पन्न कर यज्ञ प्रारंभ किया। उनके दीक्षा लेकर यज्ञ में बैठने पर शासन न रहने के कारण प्रजा उच्छृङ्खल हो गई। कोई व्यवस्था न रहने से लूट-मार के कारण प्रजा छीजने लगी। यह देख ब्रह्माजी के प्रार्थना करने पर शूलपाणि ने दण्ड की उत्पत्ति की और सरस्वती जी ने दण्डनीति की रचना की। दण्ड-विधान के कारण संसार में फिर सुव्यवस्था, सुख, शान्ति स्थापित हो गई, प्रजा की उन्नति होने लगी। लोकपालों से ब्राह्मणों को और ब्राह्मणों से क्षत्रियों को दण्ड की प्राप्ति हुई। दण्ड परमात्मा-स्वरूप है। दण्ड से ही प्रजा की रक्षा होती है।

'जब मनुष्य शुद्ध चित्त से धर्म, अर्थ और काम का निर्णय करता है, तब इन तीनों का निश्चय एक साथ हो जाता है, और तीनों वर्ग एक साथ मिल जाते हैं। अर्थ का कारण धर्म, काम का कारण अर्थ और इन तीनों का कारण संकल्प है। संकल्प वासनात्मक है। विषय अपने आहार की सिद्धि के लिए प्रेरित करते हैं। धर्म, अर्थ और काम के यही कारण हैं। इन तीनों से छुटकारा पाना ही मोक्ष है। संसार में शरीर की रक्षा के लिए धर्म, धर्म के लिए अर्थ और इन्द्रियों के सुख के लिये काम की सेवा की जाती है। इनमें आसक्त न रहकर इनका सेवन करना

चाहिए; क्योंकि इनका सेवन करते-करते मोक्ष की ओर प्रवृत्ति होती है। फल की इच्छा धर्म का मल-स्वरूप है, दान और भोग न करना अर्थ का मलस्वरूप है और केवल वासना-तृप्ति के लिए काम-केलि करना काम का मल स्वरूप है। यही उपदेश देकर महर्षि कामन्दक ने राजा आंगरिष्ठ से कहा था कि जो मनुष्य धर्म और अर्थ को छोड़कर केवल काम का सेवन करता है उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, बुद्धि के भ्रष्ट हो जाने पर मोह उत्पन्न होता है, मोह के कारण धर्म और अर्थ का नाश हो जाता और मनुष्य दुराचारी हो जाता है। ऐसे दुराचारियों को दण्ड देकर राजा को धर्म और प्रजा की रक्षा करनी चाहिए।

'शील ही से मनुष्य को संसार-भर का ऐश्वर्य और राज्य प्राप्त हो जाता है। शीलवान होने के कारण ही मानधाता एक दिन में, जनमेजय तीन दिन में, नाभाग सात दिन में पृथ्वी भर के साम्राज्य को प्राप्त कर सके थे। प्राचीन समय में शील के कारण ही प्रह्लाद तीनों लोकों के अधीश्वर हो सके थे, राज्य छिन जाने पर इन्द्र ने बृहस्पति से ऐश्वर्य प्राप्ति का उपाय पूछा। बृहस्पति ने उन्हें शुक्राचार्य के पास और शुक्राचार्य ने प्रह्लाद के पास यह कहकर भेजा कि वे मुझसे अधिक अच्छा उपदेश दे सकेंगे। इन्द्र ब्राह्मण का रूप बनाकर प्रह्लाद की सेवा करने

लगे। कुछ समय बाद इन्द्र की सेवा से प्रसन्न होकर प्रह्लाद ने कहा कि मैं विद्वानों की सेवा से प्रसन्नकर उनसे उपदेश ग्रहण करता हूँ, सबकी सेवा में तत्पर रहता हूँ, ईर्ष्या-क्रोध-आलस्य त्यागकर धर्म के अनुसार चलता हूँ, इसी कारण मुझे इतना ऐश्वर्य, इतना बड़ा राज्य प्राप्त हुआ है; तुमने मेरी बड़ी सेवा की है, तुम मन चाहा वर माँग लो। ब्राह्मण (इन्द्र) ने कहा कि मुझे आप अपना शील (सच्चरित्रता) दे दीजिये। प्रतिज्ञा के कारण विवश होकर प्रह्लाद को अपना शील दे देना पड़ा। प्रह्लाद के शरीर से शील निकल कर ब्राह्मण के शरीर में प्रवेश कर गया। ब्राह्मण वहाँ से चला गया। शील के निकलते ही धर्म यह कहकर प्रह्लाद के शरीर से निकलकर चला गया कि जहाँ शील रहता है वहीं मैं भी रह सकता हूँ। फिर सत्य यह कहकर प्रह्लाद के शरीर से निकलकर चला गया कि जहाँ धर्म रहता है वहीं मैं रह सकता हूँ। इसके बाद सदाचार यह कहकर प्रह्लाद के शरीर से चला गया कि जहाँ सत्य रहता है वहीं मैं रह सकता हूँ। तदनन्तर बल यह कहकर प्रह्लाद के शरीर से निकलकर चला गया कि जहाँ सदाचार रहता है वहीं मैं रहता हूँ। अन्त में लक्ष्मी यह कहकर प्रह्लाद के शरीर से निकलकर चली गई कि जहाँ बल रहता है वहीं मैं रह सकती हूँ। धर्म, सत्य, सदाचार, बल और

लक्ष्मी ये सब शील के अधीन रहते हैं। किसी का अनिष्ट न करना, सत्पात्र को दान देना, सब पर दया करना, जिस काम से किसी का हित न हो और जिससे समाज में लज्जा प्राप्त हो उससे दूर रहना, समाज के हित के काम में लगे रहना ही शील (सच्चरित्रता) कहलाता है। दुश्चरित्र यदि किसी तरह ऐश्वर्य प्राप्त भी करले तो भी वह उसका भोग अधिक दिन तक नहीं कर सकता। जो ऐश्वर्य चाहता हो उसे शीलवान बनना चाहिए।

'आशा से बढ़कर और कोई भी वस्तु दुर्बल नहीं होती। प्राचीन समय में सुमित्र नाम का राजा एक मृग का पीछा करता हुआ उसे प्राप्त करने की आशा से घोर वन में चला गया। बहुत चेष्टा करने पर भी जब वह मृग उसके हाथ से निकल गया तब हारकर निराश हो राजा मुनियों के एक आश्रम में गया। और विनम्र होकर उसने उनसे पूछा कि आशा और आकाश में कौन अधिक सूक्ष्म है। तपस्वियों के मुखिया ऋषभ ने उत्तर दिया कि एक बार नर-नारायण के आश्रम में मुझे सींक ऐसे पतले महर्षि के दर्शन हुए थे। उसी समय वीरद्युम्न राजा ने अपने पुत्र के वियोग में उनसे यही प्रश्न किया था। महर्षि कृश ने उत्तर दिया कि आशावान मनुष्य से बढ़कर दुर्बल और आशा के अनुरूप कार्य-सिद्धि से बढ़कर दुर्लभ और कुछ

नहीं है। जो आशा के वश में है वही दुर्बल है और जिसने आशा को अपने वश में कर लिया है वही बलवान है। माँगने वाले मनुष्यों में धैर्य का होना दुर्लभ है। जिसने कभी माँगने वाले का अपमान न किया हो ऐसा मनुष्य भी दुर्लभ होता है। भरोसा देकर जो माँगनेवाले को टाल देता है वह माँगनेवाले से भी अधिक दुर्बल होता है। कृतघ्नों, नृशंसों, आलसियों, अपकारियों से की जाने वाली किसी वस्तु की आशा, एकलौते बेटे के मर जाने या कहीं चले जाने पर उसकी खबर पाने की आशा सबसे अधिक दुर्बल होती है। इसके अनन्तर महर्षि कृश ने अपने तपोबल से राजा के खोये हुए पुत्र को उससे मिला दिया। आशा को त्यागकर मनुष्य हिमालय पर्वत के समान अटल और दृढ़ हो सकता है।

'प्राचीन समय में यमराज ने महर्षि गौतम को उपदेश दिया था कि सत्य, धर्म, तपस्या, पवित्रता से माता-पिता की सेवा करने पर दिव्यलोकों की प्राप्ति होती है। ज्ञान के द्वारा मनुष्य उपाय सोचता है और धन तथा सहायकों का संग्रह कर सभी प्रकार के मनोरथ सफल किये जा सकते हैं। विपत्ति के समय अधर्म भी धर्म समझकर किया जाना चाहिए और बुद्धिमान को अपने तथा दूसरों के धर्म पर आघात पहुँचाकर भी अपनी विपत्ति टालने

का उपाय करना चाहिए। संसार में निर्धन मनुष्य निर्बल और धनवान मनुष्य बलवान होता है, इस कारण अपने प्राणों को और धर्म की रक्षा के लिए जैसे हो धन संग्रह करना चाहिए, क्योंकि धनवान मनुष्य सभी को अपने अधिकार में कर सकता है और सभी प्रकार विपत्तियों से पार पा सकता है।

आपद्धर्म पर्व

अध्याय १३१-१४०

धन-स्त्री-सर्वस्व त्याग कर आत्म-रक्षा करे, आपत्काल में धनहरण, कोष वृद्धि, बल की प्रशंसा, दस्यु को भी सिद्धि, आगे से सावधान, शत्रु से संधि, बिलाव-चूहा, ब्रह्मदत्त-पूजनी, भरद्वाज-शत्रुञ्जय।

युधिष्ठिर के प्रश्न करने पर भीष्म बोले—'यदि शत्रु बलवान हो और विपद पड़ने की आशंका हो तो कोष, भूमि, द्रव्य आदि देकर संधि करले, क्योंकि शरीर त्याग करना मूर्खता है। आत्म-रक्षा के लिए स्त्रियों-बच्चों तक को त्याग देना चाहिए। यदि अपनी सेना बिगड़ जाय और शत्रु से संधि न हो सकती हो तो राजा को चाहिए कि सबको छोड़कर अपने प्राणों की रक्षा करे और उचित

अवसर पर राज्य प्राप्त करने का उद्योग करे। स्वामि-भक्त और सन्तुष्ट सेना यदि थोड़ी हो तो भी उसे लेकर राजा विजय प्राप्त कर सकता है।

'जो मनुष्य दुष्टों से धन लेकर सज्जनों को देता है वह आपद्-धर्म के तत्वों को अच्छी तरह से जानता है। आपत्काल में राजा प्रजा की रक्षा के लिए किसी भी तरह का धन ले सकता है। जिस राजा का खजाना खाली होता है उसका सब जगह अनादर होता है और उसे उत्साह से काम करने वाले नहीं मिलते। इस कारण राजा को धन का संग्रह करना चाहिए। धर्म और राज्य की वृद्धि धन से ही होती है। जो राजा अपनी प्रजा को धन-हीन कर देता है वह स्वयं धन-हीन होकर नष्ट हो जाता है, और जो प्रजा के धन की रक्षा करता हुआ उससे उचित 'कर' लेता है वह जीवन भर राज्य का और धन का सुख भोगता है। सम्पत्ति होने पर बल, बल होने पर योग्य सहायक तथा अन्य सभी वस्तुओं की प्राप्ति होती है। संसार में धन-हीन मनुष्य पतित माना जाता है। धर्म और बल में बल ही श्रेष्ठ है। दूसरों को सतानेवाला दस्यु भी सदाचार के द्वारा पवित्र और स्वर्ग का अधिकारी हो सकता है। प्राचीन समय में कायव्य नामक दस्यु सदाचार के कारण स्वयं सिद्धि प्राप्त कर

सका और अपने साथी अन्य दस्युओं को भी कल्याण के मार्ग पर लगा सका था।

'एक तालाब में अनागतविधाता, प्रत्युत्पन्नमति और दीर्घसूत्री नामक तीन मच्छ रहते थे। एक दिन मछुओं ने मछलियाँ पकड़ने के विचार से उस तालाब से पानी निकलने का रास्ता कर दिया। तालाब के पानी को कम होता देख अनागतविधाता ने अपने मित्रों से कहा कि विपत्ति आने के पहले ही हम लोगों को यहाँ से निकल भागना चाहिए। किन्तु वे राज़ी न हुए। अनागतविधाता वहाँ से भाग कर दूसरे तालाब में चला गया। पानी निकल जाने पर अन्य मछलियों के साथ प्रत्युत्पन्नमति और दीर्घसूत्री भी पकड़े गए। प्रत्युत्पन्नमति ने तत्काल अपने छुटकारे का उपाय सोच किसी तरह से निकल कर मछुओं के हाथ से अपनी जान बचाई। किन्तु सदा आलस में पड़ा रहनेवाला दीर्घसूत्री आलस्य के कारण अपने प्राण गँवा बैठा। मनुष्य को चाहिए कि देश, काल और पात्र का विचार कर पहले से ही आनेवाली आपत्तियों का उपाय कर लिया करे।

'समय के अनुसार शत्रु मित्र हो जाता है और मित्र शत्रु हो जाता है। परिस्थिति बदल जाने से मनुष्य और कार्य भी बदल जाते हैं। जो मनुष्य समय के अनुसार

मित्रों के साथ विरोध और शत्रुओं के साथ संधि करता रहता है वह धन, ऐश्वर्य और सुख प्राप्त करता रहता है। एक वन में एक चूहा, एक विलाव, एक नेवला और एक उल्लू रहते थे। एक दिन एक चाण्डाल के जाल में विलाव फँस गया। अपने शत्रु को फँसा हुआ देख चूहा उस जाल के ऊपर आकर कुछ खाने लगा। इसी समय ऊपर उल्लू आ गया और नीचे नेवला। चारों ओर से अपने प्राणों पर संकट देख चूहे ने विलाव से यह कह कर संधि कर ली कि यदि तुम मेरी रक्षा करो तो मैं जाल काटकर तुम्हारे प्राण बचा दूँगा। विलाव राजी हो गया। चूहा अपने प्राणों पर खेलकर विलाव की गोद में जा बैठा। उल्लू और नेवला दोनों चूहे की आशा छोड़कर चले गए। तब विलाव की गोद से निकल कर चूहे ने यह कह, धीरे-धीरे जाल काटना शुरू किया कि बहेलिये के आ जाने पर मैं तुरन्त जाल काट दूँगा, जिसमें तुम अपने प्राण लेकर भागो, मुझ पर आक्रमण करने का तुम्हें समय ही न मिले। अपना स्वार्थ सिद्धि हो जाने पर कोई किसी की परवा नहीं करता। इस कारण काम को अधूरा रहने देना ही ठीक होता है। सवेरे भयंकर कुत्तों को लिए हुए बहेलिया आता देख पड़ा। चूहे ने झटपट रस्सी काट दी। विलाव अपने बचाव के लिए कूद

कर पेड़ पर चढ़ गया। चूहा भाग कर बिल में जा घुसा। बहेलिया के चले जाने पर बिलाव ने मीठी-मीठी बातें कहकर चूहे को अपने पास बुलाया और मित्र तथा मंत्री बनकर उससे साथ रहने का अनुरोध किया। चूहे ने उत्तर दिया कि संसार में केवल प्रयोजनवश शत्रु और मित्र बनते रहते हैं। एक समय एक मनुष्य मित्र हो सकता और परिस्थिति बदलने पर वही शत्रुता करने लगता है। न तो मित्रता अधिक समय तक रह सकती और न शत्रुता ही। जिससे लाभ होता है उससे मित्रता हो जाती है और जिससे हानि होती है उससे शत्रुता। (स्वार्थ ही मित्रता और शत्रुता का प्रधान कारण होता है।) हम दोनों को अपने-अपने प्राण बचाने थे इसी से हमारी मित्रता हुई थी। अब तुम्हारा काम निकल गया। अब इस समय तुम मुझे खा जाने के लिए ही बुला रहे हो। यदि तुम मुझे छोड़ भी दो तो तुम्हारे भाई, पुत्र आदि मुझे क्यों छोड़ने लगे, उनसे मेरी मित्रता कैसी? बलवान से सदा सावधान रहना चाहिए। तुम भी बहेलिये से सावधान रहकर अपना निर्वाह करो।' चूहे की बातें सुनकर बिलाव दूसरे स्थान पर चला गया। इस कथा में राजनीति का सार है। मनुष्य को समय देखकर शत्रुता और मित्रता करनी चाहिए। शत्रु से मित्रता कर लेने पर भी काम

निकल जाने पर उसका अधिक विश्वास न करे। धन, स्त्री तक देकर भी आत्म-रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि जीवित रहने पर धन, स्त्री आदि की प्राप्ति फिर हो सकती है, किन्तु जीवन चले जाने पर फिर वह लौटाया नहीं जा सकता।

'काम्पिल्य नगर में राजा ब्रह्मदत्त के महलों में पूजनी नामक एक चिड़िया रहती थी। उसे सब की बोलियों का ज्ञान था। एक बार पूजनी और रानी के एक ही दिन पुत्र उत्पन्न हुए। पूजनी राजकुमार को भी अपने पुत्र के समान प्यार करती और उसे अमृत तुल्य फल लाकर देती। जब कुमार पांच वर्ष का हुआ तो उसने खेलते-खेलते पूजनी के पुत्र को मार डाला। यह देख पूजनी को बड़ा दुःख हुआ। उसने राजकुमार की आँखें फोड़ डालीं। राजा को यह देखकर बड़ा दुःख हुआ। किन्तु पूजनी को उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र जाते देख उसने कहा कि तुमने मेरे पुत्र के अपराध का बदला लिया है इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है, हम तुम एक दूसरे के अपराध को क्षमाकर पहले की तरह ही हिलमिल कर एक साथ रहें। पूजनी ने कहा—'जिसका अपकार किया हो, या जिससे बदला लिया हो उसके पास रहना खतरे से खाली नहीं होता। विद्या, शूरता, निपुणता, बल और धैर्य पाँच मनुष्य के स्वाभाविक

मित्र हैं। इन्हीं के द्वारा संसार में सुख मिलता है। कुदेश, कुभार्या, कुपुत्र, कुराजा, कुदेश, कुमित्र और कुसंबंध सर्वथा त्याग देना चाहिए, कारण कि इनसे सदा दुःख और हानि ही होती है। यह कहकर पूजनी वहाँ से चली गई।'

'सौवीर देश के राजा शत्रुंजय ने एक बार महर्षि भरद्वाज से जाकर पूछा कि अलभ्य वस्तु की प्राप्ति, प्राप्त होने पर उसकी वृद्धि, बढ़ने पर उसकी रक्षा और रक्षित होने पर उसके सदुपयोग के उपाय बतलाइये। भरद्वाजजी बोले—'कल्याण चाहने वाला मनुष्य हाथ जोड़कर कसम खाकर, मीठी-मीठी बातें कहकर, नम्रता से तथा रो-गाकर अपना काम बना ले। कम बुद्धि वाले को समझा-बुझा-कर लपेट रहे, ना-समझ को झूठी आशा दे, बुद्धिमान को चतुराई से वश में करे। जब तक प्रतिकूल समय हो तब तक शत्रु को कंधे पर चढ़ाये रहे, समय अनुकूल होने पर उसे गिराकर नष्टकर डाले। कृतघ्न मनुष्य काम पूरा हो जाने पर अनादर करने लगता है, इस कारण उसका काम अधूरा ही छोड़े रहे। बुद्धिमान को चाहिए कि वह कोयल की तरह अपने पोष्यवर्ग का भरण-पोषण दूसरों से करावे, वराह की तरह शत्रुओं का सर्वनाश कर डाले, नट की तरह समयानुसार रूप बदलता रहे। आलसी, अभि-मानी, उद्योगहीन, लोकनिन्दा से डरनेवाला और काम

को टालनेवाला मनुष्य किसी काम में कृतकार्य नहीं हो सकता। जो वृक्ष की तरह फूलकर भी फलहीन, फलकर भी दुरारोह, अपक्व (कच्चा) रह कर भी पके के सामान देख पड़ता है वह कभी संकट में नहीं पड़ता। जब तक भय नहीं उपस्थित होता तब तक उससे डरना चाहिए, किन्तु भय के उपस्थित हो जाने पर सदा निडर होकर उसका सामना करना चाहिए। बिना कष्ट उठाये कल्याण नहीं हो सकता। अप्राप्त सुख की आशा में प्राप्त सुख को छोड़ना उचित नहीं है। जैसे भी हो अपनी दुरवस्था को दूर करे और फिर समर्थ होकर धर्माचरण करे। कार्य में विघ्न डालने वाले भाई, पुत्र, स्त्री, मित्र को भी दण्ड दे। अविवेकी, अभिमानी, उद्दण्ड गुरु भी दण्ड का अधिकारी होता है। शत्रु का मर्मच्छेदन किये बिना और मछुए की तरह अनेक जीवों का नाश किये बिना ऐश्वर्य को प्राप्ति नहीं हो सकती। ऋण, अग्नि, शत्रु और रोग को समूल नष्ट कर देना चाहिए, क्यों कि यदि इनका थोड़ा सा भाग भी बच जाता है तो वह शीघ्र ही बहुत बढ़ जाता है। वीर को हाथ जोड़ कर, डरपोक को डरा कर लोभी को धन देकर वश में करना चाहिए।' इस उपदेश के अनुसार चलकर राजा ने असाधारण सफलता प्राप्त की।

अध्याय १४१

आत्म-रक्षा के लिए विश्वामित्र का कुत्ते का मांस चुराकर खाना, जीवन-रक्षा परमधर्म

युधिष्ठिर ने पूछा कि आपत्काल में जीविका के नष्ट हो जाने और भोजन के न मिलने पर क्या करना चाहिए। भीष्म बोले—'आपत्काल में अभक्ष्य, अधर्म, अकर्म का विचार छोड़ कर जैसे भी हो आत्मा-रक्षा करना परमधर्म है, क्योंकि पाप कर्म से भी आत्म-रक्षा हो जाने पर बाद को तप, प्रायश्चित द्वारा मनुष्य अपनी शुद्धि कर निष्पाप हो सकता है, किन्तु प्राणों के न रहने पर फिर धर्म नहीं हो सकता। इस कारण आपत्काल में जैसे भी हो प्राण रक्षा करना आवश्यकता है। इस संबंध में एक प्रसिद्ध इतिहास है। प्राचीन समय में त्रेता और द्वापर के संधि-काल में घोर दुर्भिक्ष पड़ा। प्राणी दाने-दाने को तरस-तरस कर मरने लगे। धर्म, यज्ञ, दान, आदि सभी बन्द हो गये। अन्न-जल के बिना स्थान-स्थान पर मुर्दों के ढेर लग गये। महर्षि विश्वामित्र भी भूख से व्याकुल होकर खाने की खोज में भटकते हुए एक वन में चाण्डालों की झोंपड़ी में जा पहुँचे। बहुत प्रयत्न करने पर भी उन्हें खाने के लिए कोई वस्तु न मिल सकी। भूख और दुर्बलता के कारण वे एक चाण्डल की झोंपड़ी

के द्वार पर मूर्छित होकर गिर पड़े। कुछ समय बाद उन्हें उस चाण्डाल के पास कुत्ते के मांस का एक टुकड़ा देख पड़ा। वे उसे पाने के प्रयत्न में वहीं दुबके बैठे रहे। आधी रात को जब सब सो गये, तब वे चुपके से उस टुकड़े को चुराने के विचार से झोंपड़ी के अन्दर गये। आहट पाकर चाण्डल जाग पड़ा और चोर को मारने दौड़ा। डर कर विश्वामित्र जी ने अपना नाम और आने का कारण बतलाया तथा गिड़गिड़ा कर चाण्डल से मांस का टुकड़ा मांगा। चाण्डाल ने उनसे कहा कि आप ऐसे महर्षि को चाण्डाल के यहाँ से कुत्ते के मांस के टुकड़े को चुराना और उसे खाकर अपने धर्म को बिगाड़ना उचित नहीं है, आप ऐसा जघन्य पाप न करें। विश्वामित्र ने कहा—'प्राणों की रक्षा करना सब से श्रेष्ठ धर्म है। प्राणों के बच जाने पर प्रायश्चित और तप द्वारा पाप कर्मों को दूर किया जा सकता है। किन्तु धर्म-धर्म चिल्लाकर बिना खाये प्राण देना सब से जघन्य पाप है, क्योंकि प्राण न रहने पर कोई भी कर्म, कोई भी धर्म नहीं किया जा सकता। यही वेद-शास्त्र सम्मत धर्म है। वेद अग्नि स्वरूप हैं। उन्हीं के बल पर मैं चाण्डाल के घर से चुराकर कुत्ते का मांस खाकर अपने प्राणों की रक्षा कर सकता हूँ और इसके बाद तप के द्वारा अपने को

पवित्र कर सकता हूँ। जीवन-रक्षा ही मुख्य धर्म है। चाण्डाल ने अनेक प्रकार से समझा कर विश्वामित्र को कुत्ते के मांस को खाने से रोकना चाहा। अपने कुत्ते के मांस को अभक्ष्य, चाण्डाल के यहाँ की वस्तु को अग्राह्य, चोरी को घोर पाप बतलाया और कहा कि इस मांस के टुकड़े को खा लेने पर भी आप न तो अमर ही हो जायँगे और न आपको अक्षय तृप्ति ही होगी, धर्म को अक्षुण्ण रखकर मरने से दिव्य लोकों की प्राप्ति होती है, इस कारण इस नीच कर्म को न कीजिये, अपने धर्म को न बिगाड़िये। विश्वामित्र ने कहा कि अगस्त्य आदि महर्षि राक्षस का मांस खाकर भी पतित नहीं हुए थे। चाण्डाल ने कहा कि अगस्त्य जी ने लोक-रक्षा के लिए, दूसरों के प्राणों को बचाने के लिए वैसा किया था, आपके सामने तो केवल भूख का प्रश्न है, भूख के लिए अभक्ष्य खाना महा पाप होगा। विश्वामित्र ने कहा कि मेरा यह शरीर मित्र, प्रिय और अत्यन्त पूज्य है, इसकी रक्षा के लिए अभक्ष्य खाना भी पाप नहीं है, जो मनुष्य जीवित रहने की इच्छा करता हो उसे भूखों मर कर देह सुखा देना उचित नहीं, उससे अवश्य ही धर्म का नाश होता है, जैसे भी हो शरीर की तो रक्षा करनी ही चाहिए। चांडाल ने कहा कि जब मैं चाण्डाल होकर भी आपके इस कर्म को उचित नहीं सम-

झता तो अवश्य ही यह कर्म निन्दनीय है। विश्वामित्र ने कहा कि मेढ़क टर टर्र करते रहते हैं किन्तु गाएँ जल पीना नहीं छोड़तीं, चाण्डाल होने के कारण धर्म के संबंध में व्यवस्था देने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं, अपने को धर्मज्ञ समझ कर घमंड मत करो, मैं धर्म को भली-भाँति जानता हूँ, मुझे शरीर की रक्षा करनी ही चाहिए। चांडाल ने कहा कि जो मनुष्य चांडाल के यहाँ के कुत्ते के मांस को अभक्ष्य नहीं समझता उसके लिए संसार की कोई भी वस्तु अभक्ष्य नहीं हो सकती। विश्वामित्र ने कहा कि भोजन के बिना मरने की स्थिति आ जाने पर अभक्ष्य पदार्थ खा लेने पर भी अधर्म नहीं होता, शरीर रक्षा ही परम धर्म है। यह कहकर उन्होंने उस कुत्ते के मांस को लेकर उसका चरू बनाया और देवताओं और पितरों को उचित भाग अर्पण कर उसे खाया। हे धर्मराज्य! बुद्धिमान को चाहिए कि विपत्ति के समय जैसे भी हो अपना उद्धार करे। विश्वामित्र की तरह बुद्धि से काम लेकर जीवन की रक्षा करना सर्वथा उचित है। जीवित रहने पर ही मनुष्य धर्म और सत्कर्म कर सकता है। बुद्धि के द्वारा ही धर्म-अधर्म का यथार्थ निर्णय करना चाहिए।

अध्याय १४२-१४६

यथार्थ धर्म ज्ञान, मिथ्या-धर्म-ज्ञान, शरणागत सेवा, कबूतर-बहेलिया

भीष्मजी बोले—धर्म की केवल एक शाखा को ही पकड़ लेने से निर्वाह नहीं होता। प्रत्येक काम किसी समय धर्म और किसी समय अधर्म सिद्ध होता है। जिसे इस बात का पूरा ज्ञान नहीं होता उसे पग-पग पर ठोकरें खानी पड़ती हैं। मनुष्य दो तरह के होते हैं; यथार्थ-ज्ञानी और मिथ्या-ज्ञानी। जो ज्ञान की ठीक-ठीक खोज करता है उसी को सच्चा ज्ञान प्राप्त हो सकता है। यथार्थ धर्म के निर्णय के लिए तर्क और शास्त्र दोनों की सहायता लेनी चाहिए। न मारने योग्य प्राणियों को मारने से जो पाप लगता है, वही पाप मारने योग्य प्राणियों को न मारने से भी लगता है। एक समय पानी में भीगी हुई एक कबूतरी को भूमि पर बेहोश पड़ी हुई देख एक बहेलिये ने उसे पकड़कर एक पींजड़े में बन्द कर लिया। फिर वह वर्षा से व्याकुल हो एक बड़े पेड़ के नीचे जाकर पड़ रहा। उसी पेड़ पर उस कबूतरी का कबूतर रहता था। कबूतरी के न लौटने पर कबूतर उसके गुणों का बखानकर विलाप करने लगा। अपने पति के प्रेम को देखकर कबूतरी ने प्रसन्न होकर अपने पति से कहा कि आप मेरे लिए चिन्ता न करें, इस समय

शरण में आए हुए इस बहेलिये की सेवा-सहायता करना परम धर्म है। यह सुन कबूतर ने सूखे पत्ते इकट्ठे किये और लुहार के यहाँ से आग लाकर उन्हें जला दिया। फिर खुद आग में गिरकर बहेलिये को खाना देने के लिए भुन गया। पक्षी के इस सेवा-धर्म को देखकर बहेलिये को ज्ञान हो गया। कबूतरी को छोड़ वह तप करने के लिए चला गया। अपने पति के वियोग में कबूतरी ने उसी अग्नि में जल कर अपने प्राण त्याग दिए। दोनों को शरणागत की रक्षा के कारण स्वर्ग प्राप्त हुआ। इधर अन्न-जल छोड़ कर बहेलिए ने घोर तप आरम्भ किया और प्रायश्चित के रूप में अपने शरीर को अग्नि में भस्मकर स्वर्ग प्राप्त किया।

अध्याय १५०-१५२

ब्रह्महत्या का प्रायश्चित, मरा हुआ बालक फिर जी गया।

भीष्म बोले—'प्राचीन समय में राजा जनमेजय ने धोखे से ब्रह्महत्या कर डाली। ब्रह्महत्या के कारण प्रजा, पुरोहित और ब्राह्मणों ने उसे त्याग दिया। राज्य छोड़ कर जनमेजय वन में चला गया। राजा को अपने दुष्कर्म पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। तब महर्षि इन्द्रोत ने अश्वमेध यज्ञ कराकर उसकी ब्रह्महत्या को दूर कर दिया।

'प्राचीन समय में एक ब्राह्मण का एक बहुत ही

सुन्दर, गुणवान बालक मर गया। रोते हुए अपने आत्मीय-स्वजनों के साथ ब्राह्मण उसे श्मशान में ले गया, किन्तु स्नेह के कारण उसे छोड़कर लौटने की उनकी इच्छा न होती थी। यह देख गिद्ध ने आकर उपदेश दिया कि एक-न-एक दिन मरना तो सभी को पड़ता है, इसके लिए व्यर्थ शोक न करो। समय रहते सबके साथ घर लौट जाओ। उन्हें जाते देख एक गीदड़ ने उन्हें आकर समझाया कि निर्बल का, कार्य में व्यस्त का और श्मशान में मुर्दे का साथ बन्धु-बांधव ही देते हैं। गिद्ध और गीदड़ पारीपारी से उन लोगों को समझाते रहे। गिद्ध चाहता था कि ये लोग दिन ही में बालक को छोड़कर चले जायँ तो मैं इसे खालूँ। गीदड़ चाहता था कि ये संध्या तक रहें जिससे मैं रात में बालक खाऊँ। दोनों की बातों को सुनते हुए ब्राह्मण तथा उससे साथी वहाँ बैठे रहें। अन्त में उनके विलाप को सुनकर शिवजी ने बालक को फिर जीवित कर दिया।

अध्याय १५४-१६६

बलवान से विरोध, वायु-सेमर, लोभ, अज्ञान, संयम, तप, सत्य, तेरह दोष, स्त्री-रत्न, खड्ग आदि का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा—'बलवान से शत्रुता हो जाने पर क्या करना चाहिए?'

भीष्म बोले—'प्राचीन समय में हिमालय पर्वत पर वाले सेमर के पेड़ ने प्रबल वायु से अभिमान दिखला कर अपनी शाखाओं एवं टहनियों को खोया था। हे युधिष्ठिर! संसार में बुद्धि और बल के समान उत्तम और कुछ भी नहीं है। बुद्धिमानों तथा बलवानों के साथ शत्रुता करना दुर्बलों को उचित नहीं है। अपने बराबर वाले से भी खुलकर शत्रुता करना उचित नहीं है। धीरे-धीरे अपना बल प्रकटकर बदला लेना चाहिए।

'सारे अनर्थों, पापों, दोषों और नीचताओं, की जड़ लोभ ही है। काम, क्रोध, मोह, माया, अभिमान, गर्व, पराधीनता, अक्षमा, निर्लज्जता, चिन्ता, अपयश, धर्म-हीनता कृपणता, वासना, कुप्रवृत्ति, अवज्ञा, अविश्वास, कपट, चोरी, व्यभिचार, ईर्ष्या, झूठ, निन्दा, ढोंग, शोक आदि लोभ से ही होते हैं। वृद्धावस्था आजाने पर भी लोभ पीछा नहीं छोड़ता। लोभ से अज्ञान की उत्पत्ति होती है और अज्ञान के कारण ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, हिंसा, संताप उत्पन्न होते हैं। लोभ अज्ञान का कारण और फल है। लोभ को छोड़ कर मनुष्य शिष्ट आदर का पात्र और सुखी हो सकता है।

'धर्म के अनेक भेद हैं। उन सब में संयम ही श्रेष्ठ है। संयमी के लिये वन और घर, गृहस्थाश्रम और संन्यास सभी बराबर और उत्तम फल देने वाले होते हैं।

'तप सब धर्मों और सिद्धियों का मूल कारण है। ब्रह्माजी ने सृष्टि को रचने और पालने की शक्ति; देव-गण ने स्वर्ग, अमरत्व और ऐश्वर्य; ऋषियों ने सिद्ध तप के कारण ही प्राप्त की है।

'सत्य ही तप, योग, यज्ञ और ब्रह्मस्वरूप है, परम गति है। सत्य में ही सब प्रतिष्ठित हैं। सत्य तेरह तरह का है। इंद्रिय-निग्रह, समदर्शिता, अमात्सर्य, क्षमा, लज्जा, सहनशीलता, अनसूया, त्याग, ध्यान, आर्यत्व, धैर्य, दया और अहिंसा, ये तेरह सत्य के रूप हैं। सत्य ही धर्म का आधार है। हजार अश्वमेध यज्ञों से भी बढ़ कर सत्य है।

'काम, क्रोध, मोह, मद, विधित्सा, मात्सार्य, ईर्ष्या, शोक, निन्दा, दुष्कर्म, असूया, कृपा और भय, ये तेरह दोष मनुष्य के भीषण शत्रु हैं। शान्ति गुण के द्वारा इन का नाशकर मनुष्य अकल्याण और दुर्गति से बच सकता है। खेल में, विवाह के अवसर पर, किसी के उप-कार के लिए तथा प्राणों की रक्षा के निमित्त यदि झूठ भी बोलना पड़े तो उस से पाप नहीं लगता। नीच मनुष्य से भी उत्तम विद्या सीख लेनी चाहिए। अशुद्ध स्थान से भी सोना लेने में तथा नीच कुल से स्त्री-रत्न प्राप्त करने में दोष नहीं होता। स्त्री, सोना सदा शुद्ध हैं।

नकुल ने पूछा कि धनुष और खड्ग में कौन श्रेष्ठ

है ? भीष्म बोले ब्रह्माजी ने धर्म तथा सज्जनों की रक्षा के लिए यज्ञ द्वारा 'असि' को उत्पन्न किया और लोक-कल्याण के लिए उस असिको शिवजी को दे दिया। शिवजी ने उसके द्वारा दुष्ट दानवों का संहार कर धर्म की स्थापना और सज्जनों की रक्षा की। फिर शिवजी से विष्णु भगवान को, विष्णु से महर्षियों द्वारा संसार को वह असि प्राप्त हुई। धनुष की उत्पत्ति महाराज पृथु से हुई। धर्म रक्षा और लोक-कल्याण के लिए असि और धनुष दोनों ही आवश्यक और श्रेष्ठ हैं।

अध्याय १६७

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में सब श्रेष्ठ कौन है।

वैशम्पायन जी बोले—'इतना उपदेश सुनने के बाद युधिष्ठिर सबको लेकर हस्तिनापुर गये। वहाँ युधिष्ठिर के पूछने पर विदुर ने कहा—'धर्म ही सब से श्रेष्ठ है। धर्म से ही सब लोकों की स्थिति है। देवताओं ने धर्म के बल पर ही उन्नति की है। अर्थ धर्म का अनुगामी है।'

अर्जुन ने कहा—'इस कार्य-भूमि में कर्म ही सर्व श्रेष्ठ है। कर्म के द्वारा ही धर्म, अर्थ तथा काम की सिद्धि हो सकती है। सभी धनवान की उपासना, सेवा करते हैं। सभी नाना प्रकार के प्रयत्नों द्वारा धन की खोज में नाना देशों

में भटकते रहते हैं। निर्धनता अंधकार है, घोर नरक है और संपन्नता ही प्रकाश है, स्वर्ग है, सब का सुलभ साधन है। विना धन के जीवन, विद्या, गुण आदि सभी व्यर्थ हैं। धन के विना कोई इच्छा पूरी नहीं हो सकती। इस संसार में धन सब कामों का साधन है। अतएव धन सर्वश्रेष्ठ है।' नकुल और सहदेव ने अर्जुन की बात का समर्थन किया।

तब भीम बोले—'कामना से बढ़कर और कुछ भी नहीं है। कामना के द्वारा ही छोटे-बड़े सभी काम होते हैं। धर्म और अर्थ दोनों की स्थिति काम में ही है। प्राणी मात्र सुख चाहते हैं। और सुख की उत्पत्ति काम से ही होती है। विना कामना के स्वादिष्ट-से-स्वादिष्ट और उत्तम-से-उत्तम पदार्थों के सेवन से भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। संसार ही सभी चेष्टाएँ, सभी उद्योग कामना के ऊपर निर्भर रहते हैं।

युधिष्ठिर बोले—'जिसके लिए हानि-लाभ, निन्दा-स्तुति, शत्रु-मित्र सभी बराबर हो जाते हैं, जो वासना में नहीं फँसता वही मुक्त हो सकता है, उसी को सुख, संतोष प्राप्त हो सकते हैं। अतएव मोक्ष ही सर्वश्रेष्ठ है।' इसके अनन्तर सब भीष्म जी के पास गये।

मंकि ने धन पाने के अनेक उपाय किये, किन्तु सफलता न मिली। एक बार उसके दो बैल ऊँट के कंधों में उलझ कर नष्ट हो गये। यह देख उसे वैराग्य हो गया। ममता त्याग कर उसने अक्षय सुख प्राप्त किया। जनक ने भी ममता त्याग कर सिद्धि प्राप्त की थी। महात्मा बोध्य ने ययाति को, आजगर-वृत्ति ने प्रह्लाद को, इन्द्र ने धनी के रथ से कुचले गये शरीन ब्राह्मण को ममता त्याग का उपदेश देकर सुखी किया था। बुद्धि की प्रेरणा से मनुष्य जो अच्छे-बुरे कर्म करता है उनके अच्छे-बुरे फल भोगता है।

'महर्षि भारद्वाज के पूछने पर भृगुजी ने सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम बतलाकर कहा कि आत्मा के प्रभाव से ही शरीर में चेतना शक्ति आती है और सब इंद्रियाँ अपने-अपने कार्य करती हैं। संसार ब्रह्ममय है। सभी मनुष्य ब्रह्माजी से उत्पन्न हुए हैं, अतएव सभी ब्राह्मण हैं। विभिन्न कर्मों के कारण ही उन्हें भिन्न-भिन्न वर्ण प्राप्त हुए हैं। ब्राह्मण ही क्रोध और साहस के कारण क्षत्रिय; व्यापार, कृषि पशुपालन के कारण वैश्य और हिंसा, झूठ आदि के कारण शूद्र हो गये। आसक्ति रहित, धर्मरत प्राणी ही दिव्यलोकों को प्राप्त कर सकता है।'

———

अध्याय १६२-२००

सदाचार, अध्यात्म योग, ध्यानयोग जपयोग, जप से मोक्ष,जापक ब्राह्मण, बृहस्पति-मनु, अध्यात्मतत्व,सृष्टिक्रम, वामन-वराह-अवतार

भीष्म बोले—'दुराचारी, दुर्बुद्धि, बिना समझे बूझे काम करनेवाले लोग ही दुर्जन हैं; और सदाचारी, समझ-बूझकर काम करने वाले सज्जन कहलाते हैं। मनुष्य की इन्द्रियाँ विभिन्न विषयों को ग्रहण करती हैं, मन संदेह उत्पन्न करता है और बुद्धि सबका उचित निर्णय करती है। प्राणी बुद्धिमय है। बुद्धि के प्रभाव से ही आँख, कान, मन आदि को अपने-अपने विषयों का बोध होता है। बुद्धि के अभाव में कोई भी इन्द्रिय अपना काम नहीं कर सकती। सुख, दुःख और मोह इन तीनों भावों को बुद्धि नहीं लाँघ सकती। प्रणव का जप करना हितकर होता है। एक वेदज्ञ ब्राह्मण कामना रहित हो गायत्री का जप करने लगा। उसकी साधना से प्रसन्न होकर सावित्री देवी, धर्मराज, यमदेव आदि ने प्रकट होकर उसे वर देना एवं स्वर्ग, दिव्यलोकों आदि में ले जाना चाहा, पर ब्राह्मण लालच में न फंस सका। तब महाराज इक्ष्वाकु ने उससे जप का फल मांगा। ब्राह्मण ने फल दे दिया। इक्ष्वाकु ने अपने सत्कर्मों का फल उसे दिया। इसी समय इन्द्र, नारद, देवगण आदि वहाँ प्रकट हुए। ब्राह्मण

सबके सामने ब्राह्म-रन्ध्र से प्राण निकाल ब्रह्म में लीन हो गया। कामनाहीन जप के द्वारा उसे ब्रह्म की प्राप्ति हुई।

'बृहस्पति के पूछने पर प्रजापति मनुने बतलाया था कि जो विषय जिसे प्रिय होता है उसे उससे सुख की प्राप्ति होती है और अप्रिय विषय से दुःख की। मन और कर्म ही सब बातों के मूल कारण हैं। शब्द आदि पाँच गुण, आकाश आदि पंच भूत और आँख, कान आदि पाँच इन्द्रियाँ मन के अधीन हैं। मन बुद्धि के और बुद्धि स्वभाव के अधीन हैं। इन्द्रियों से मन, मनसे बुद्धि बुद्धि से जीवात्मा, और जीवात्मा से परमात्मा श्रेष्ठ है। केवल बुद्धि के द्वारा ही परमात्मतत्व की प्राप्ति हो सकती है। शारीरिक या मानसिक क्लेशों के बने रहने पर योग्याभ्यास नहीं होता। और योग्याभ्यास द्वारा मन को एकाग्र किये बिना न तो बुद्धि ही स्थिर रह सकती और न तो परमपद की प्राप्ति हो। अतएव शारीरिक और मानसिक क्लेशों से बचना परमावश्यक है। ज्ञान से इच्छा, इच्छा से प्रयत्न, प्रयत्न से कर्म, और कर्म से फल उत्पन्न होता है। सर्वव्यापी पुरुषोत्तम से इस सारे जगत की उत्पत्ति हुई है। सबसे पहले ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। उसी समय मधु नामक दैत्य ने उत्पन्न होकर ब्रह्मा को खा लेना चाहा। नारायण मधुसूदन ने उस दैत्य को मारकर ब्रह्मा की रक्षा

की। पुरुषोत्तम मधुसूदन ने ही लोक कल्याण के लिए वामन और वराह अवतार धारण कर समय-समय पर दुष्टों का नाश और सज्जनों की रक्षा की है।

अध्याय २१०-२२७

योग, मिथिलापति-पञ्चशिख, दम, तप, व्रत, बलि-इंद्र, इंद्र-नमुचि

मोक्ष धर्म के सम्बन्ध में प्रश्न किये जाने पर भीष्म जी बोले—'पूर्व समय में एक आचार्य ने अपने प्रिय शिष्य को उपदेश देते हुए कहा था कि वासुदेव ही संसार और वेदों के आदि हैं।

'हे धर्मराज ! दम ही सब सिद्धियों का आधार है। इंद्रिय दमन पर ही तप, सत्य, व्रत आदि निर्भर रह सकते हैं। एक बार बलि अपने अधिकार से भ्रष्ट हो गये। ब्रह्माजी ने इंद्र के पूछने पर बतलाया कि इस समय बलि गदहे के रूप में एक निर्जन कुटी में दिन बिता रहे हैं, तुम उनसे जाकर न्याय की बातें जान लो, पर उन्हें मारना मत। इंद्र ने बलि के पास जाकर उनका उपहास किया। बलि ने कहा कि यह तो समय की बात है। काल के सामने किसी का वश नहीं चलता। संसार में न जाने कितने अधीश्वर आये और काल के गाल में चले

गये। राज्यश्री, ऐश्वर्य, पृथ्वी किसी एक के अधीन नहीं रह सकती। समय आने पर मैं फिर संसार का राज्य करूँगा। इसी समय लक्ष्मी ने वलि के शरीर से निकल कर इंद्र के शरीर में प्रवेश किया। इसी प्रकार एक बार नमुचि ने ऐश्वर्यभ्रष्ट होकर इंद्र से कहा था कि कालकी प्रेरणा से ही सब होता है, इस कारण हर्ष-विपाद करना व्यर्थ है।

अध्याय २२८

उन्नति-अवनति के कारण, लक्ष्मी का आना-जाना

उन्नति-अवनति के लक्षणों के संबंध में पूछने पर भीष्म बोले—'पूर्व समय में नारद और देवराज इंद्र ध्रुव लोक में गंगा स्नानकर वहीं वैठ गये। उसी समय लक्ष्मी जी ने वहाँ आकर कहा—'देवराज! मैं अभी तक दानवों के पास रहती थी, क्योंकि वे सदाचारी, धर्मनिष्ठ, परोपकाररत, उद्योगी, तत्पर, निद्रा-आलस्यहीन, विपाद-द्वेष-ईर्ष्या-रहित, सावधान, कार्य-कुशल, उत्साही, निरहंकारी, सत्यवादी, तपस्वी, जितेन्द्रिय, दृढ़व्रती, मित्र-धन संग्रह करनेवाले थे। वे आपस में कभी न लड़ते थे। वे नीति के अनुसार चलते और सत्कार करने योग्य व्यक्तियों का सदा आदर-सत्कार करते थे। कोई नीच तथा वर्जित कार्य

न करते थे। किन्तु अब उनमें वे गुण नहीं रह गये हैं। वे काम और क्रोध के वश में हैं। आपस में सदा कलह करते रहते हैं। बुद्धिमानों, विद्वानों की नीतियुक्त बातें नहीं सुनते। अपना-अपना कर्तव्य पालन नहीं करते। भोजन और दूध खोलकर छोड़ देते हैं। उनकी स्त्रियाँ घरों में वस्तुओं को बिखरी पड़ी रहने देती हैं। घरों की कोई सुन्दर व्यवस्था नहीं है। उनमें दुराचार और अनाचार फैल गये हैं। इसी से अब मैं उन्हें छोड़कर तुम्हारे पास आई हूँ।'

अध्याय २२६-२३०

मोक्ष के अधिकारी, सर्वप्रिय, सर्वपूज्य, नारद के गुण

भीष्म बोले—'राग-द्वेष रहित जैगीषव्य ने देवल से कहा था कि जो स्तुति-निन्दा, लाभ-हानि, सुख-दुःख, शत्रु-मित्र को समान दृष्टि से देखते हैं, जो ज्ञानी, कर्त्तव्यरत, परोपकारी और वासना-तृष्णा से शून्य हैं वे ही परमपद को प्राप्त कर सकते हैं। एक बार महाराज उग्रसेन ने पूछा था कि किन गुणों से मनुष्य सर्वप्रिय और सर्वपूज्य हो सकता है? श्रीकृष्णजी ने कहा—'नारदजी में वे सब गुण हैं। वे विद्वान और सच्चरित्र हैं, किन्तु इसका उन्हें तनिक

भी अभिमान नहीं है। क्रोध, चपलता, भय और आलस्य उन्हें छू तक नहीं गये हैं। वे तत्व के ज्ञाता, क्षमाशील, जितेन्द्रिय, सरल, सत्यवादी, तेजस्वी, बुद्धिमान, विनीत, तपस्वी, सुशील, वाग्मी, मृदुभाषी, शुद्ध भोजन करने वाले, पवित्र और ईर्ष्याहीन हैं। वे सदा दूसरों के हित में लगे रहते हैं। वे किसी की निन्दा-प्रशंसा या विवाद में लिप्त नहीं होते। न तो वे किसी कार्य में असावधानी ही करते और न व्यर्थ समय ही गँवाते। वे धन, प्रियवस्तु की प्राप्ति से प्रसन्न न तो होते और न उनके वियोग में दुखी ही।'

अध्याय २३१-२५५

व्यास-शुक-संवाद, सृष्टि, प्रलय, काल, ज्ञान, योग, अध्यात्म

भीष्म बोले—'व्यासदेव के पुत्र शुकदेवजी वेदाध्ययन के अनन्तर जन्म भर ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करना चाहते थे। सृष्टि, लय, ब्रह्म, काल आदि का रहस्य बतलाकर उन्हें उपदेश देते हुए व्यासजी ने कहा कि मन और इन्द्रियों के वश में हो जाने पर, विषयों का भोग करते हुए भी देहाभिमान-शून्य ज्ञानी योगी कभी दोषों में नहीं फँसता। भव-सागर में जानेवाली देह रूपी नदी बड़ी भयंकर है। इन्द्रियाँ जल जन्तु हैं, मन और संकल्प दो किनारे

हैं, लोभ-मोह सियार और तृण हैं, काम-क्रोध सर्प है, सत्य घाट है, मिथ्या ही उस नदी की चंचलता है, क्रोध कीचड़ है, जिह्वा भँवर है, वासना गहराई है। सभी जीव इसी नदी में तेज़ी से बहे चले जा रहे हैं। केवल ज्ञान द्वारा इस नदी के पार उतरा जा सकता है। ज्ञान के द्वारा तृष्णा एवं वासना से छुटकारा मिल जाता है, और तृष्णा-वासना के शान्त होते ही मनुष्य इस नदी पर अनायास ही उतर जाता है। वेद का रहस्य सत्य है, सत्य का इन्द्रिय-निग्रह, इन्द्रिय-निग्रह का दान, दान का तप, तप का त्याग, त्याग का आत्मज्ञान, आत्मज्ञान का समाधि, समाधि का रहस्य ब्रह्मभाव की प्राप्ति है। विषय-वासना, शोक और संताप, ये मन को क्लेश देते हैं। अतएव इनको छोड़ देने से ही परम सुख क प्राप्ति हो सकती है। योगी ही मन और इन्द्रियों को वश में कर ब्रह्मदर्शन प्राप्त कर सकता है।

'काम-वृक्ष से फल पाने की आशा में मनुष्य नष्ट हो जाता है। काम-वृक्ष मोह से उत्पन्न होता है, क्रोध, अभिमान उसके स्कंध हैं, कर्तव्य की इच्छा उसका थलहा है, अज्ञान जड़ है, प्रमाद उसे पुष्टि देनेवाला जल है, ईर्ष्या पत्ते हैं, मोह-चिन्ता उसकी छोटी टहनियाँ हैं, पूर्वकृत पाप उसका सार है, शोक उसकी शाखा है, भय अंकुर है। तृष्णा ही उसकी लताएँ हैं। ज्ञानी योगी ही उसे समाधि-रूपी तलवार से

काटकर जन्म-मृत्यु-रूपी बंधन से छुटकारा पा सकता है। बुद्धि के गुण अनित्य हैं। इसका यथार्थज्ञान प्राप्त करने तथा योग द्वारा आत्म-दर्शन करने से ही परमपद प्राप्त हो सकता है।'

अध्याय २५६-२६५

अकम्पन और मृत्यु, धर्म का ज्ञान, धर्म की प्रामाणिकता कैसी ? जाजलि-तुलाधार

युधिष्ठिर ने पूछा कि मृत्यु क्या है ? भीष्म ने कहा—'सत्ययुग में राजा अकंपन का पराक्रमी पुत्र हरि युद्ध में मारा गया। राजा के पुत्र-शोक से व्याकुल होने पर नारद जी ने उन्हें समझाकर कहा कि सृष्टि के प्रारंभ में प्राणियों के बोझ से पृथ्वी को दबी हुई देख ब्रह्माजी ने मृत्यु को उत्पन्नकर प्राणियों के मारने का काम उसे दिया था। तभी से सब प्राणी मरने लगे। कोई भी मृत्यु से बच नहीं सकता। अतएव मृतप्राणी के लिये शोक करना व्यर्थ है।'

युधिष्ठिर ने पूछा कि धर्म का ज्ञान कैसे होता है ? भीष्म बोले—'वेद, स्मृति, सदाचार और अर्थ, इन चारों से धर्म का ज्ञान होता है। लोक-व्यवहार के लिए धर्म की स्थापना हुई है, धर्म से इस लोक और परलोक दोनों में ही सुख मिलता है। सत्य, दया, दान, चोरी न करना,

अहिंसा, ये धर्म के प्रमुख अंग हैं। किन्तु आपत्ति के समय असत्य, चोरी, आदि धर्म के विरुद्ध नहीं माने जाते। परन्तु साधारण स्थिति में दया, अहिंसा, सत्य का ही पालन करना कल्याण कारी होता है।'

युधिष्ठिर ने कहा—'जिस धर्म से अभ्युदय और कल्याण होता है वह केवल शास्त्र के पढ़ने से नहीं जाना जा सकता। साधारण धर्म से आपद्धर्म भिन्न होता है। और चूँकि आपत्तियाँ असंख्य हैं, इस कारण आपद्धर्म अनेक हैं। ऐसी दशा में शास्त्रों से आपद्धर्म का ज्ञान कैसे हो सकता है? शास्त्रों में कहा गया है कि सज्जन जो आचरण करते हैं वही धर्म है, और जो धर्म का आचरण करते हैं वे ही सज्जन हैं। इस व्याख्या के अनुसार न तो यह स्पष्ट होता कि धर्म क्या है और न यही कि सज्जन कौन हैं; क्योंकि सज्जन का और धर्म का सापेक्ष सम्बन्ध माना गया है। मोक्ष के विचार से भी शूद्र यदि वेद सुने तो उसका वह कार्य अधर्म माना जाता है और यज्ञ में हिंसा करना धर्म बतलाया गया है, इस प्रकार हिंसा धर्म है और वेद सुनना अधर्म। वेदों का ह्रास होते रहने के कारण सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का धर्म भिन्न-भिन्न माना गया है। जब समय-समय पर वैदिक धर्म बदलता रहता है, तब यह कहना कि वेद वाक्य यथार्थ हैं, केवल मनोरंजन की बात है।

वेद से ही स्मृतियाँ निकली हैं। जब वेद ही प्रामाणिक नहीं रह जाते, तब स्मृतियाँ कैसे प्रामाणिक मानी जा सकती हैं? कभी-कभी धर्म के किसी एक अंश को बलवान दुरात्मा रोक देते हैं, इस प्रकार धर्म का वह अंश नष्ट हो जाता है। इन बातों से तो यही जान पड़ता है कि धर्म का मर्म छूरे की धार से भी बढ़कर सूक्ष्म और पर्वत से भी अधिक गुरुतर है। वेद और स्मृतियों से तो धर्म का निर्णय नहीं होता, प्राचीन विद्वान जिसे धर्म बतला गये हैं आज वही धर्म कहलाता है।

भीष्म बोले—'इस सम्बन्ध में मैं तुम्हें तुलाधार और जाजलि का संवाद सुनाता हूँ। पूर्व समय में जाजलि ने समुद्र के तीर पर बड़ा कठिन तप किया। तप करते-करते उनके शरीर के अंग लकड़ी की तरह हो गये। उनकी जटाओं में चिड़ियों ने घोंसले बनाये और उनमें अंडे देकर बच्चे पैदा किये। बच्चे भी धीरे-धीरे बड़े होकर उड़ गये। जब बच्चे एक मास तक न लौटे तब जाजलि को अपनी तपस्या का गर्व हुआ। वे सोचने लगे कि मेरे समान तपस्वी, ज्ञानी दूसरा कोई नहीं है। इसी समय उन्हें आकाश-वाणी सुनाई दी कि तुम व्यर्थ गर्व मत करो, तुम काशी के तुलाधार नामक वणिक के समान धार्मिक नहीं हो। इस पर जाजलि को बड़ा क्षोभ हुआ। राक्षस-प्रेतों से मार्ग पूछकर वे

काशी गये और तुलाधार से मिले। तुलाधार उन्हें देखते ही अपनी दूकान छोड़कर उनकी अगवानी के लिए आये और आदर से उनका स्वागतकर अपने यहाँ ले गये। फिर उन्होंने जाजलि को उनके तप का, चिड़ियों के घोंसले तथा बच्चों का, एवं अकाशवाणी का विवरण सुनाकर पूछा कि मैं आपका क्या हित कर सकता हूँ। तुलाधार ने बिना बतलाये ही सारी बातें जान लीं, यह देख जाजलि को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा कि दूकानदारी में सब रसों को बेचनेवाले तुमको यह शक्ति कैसे प्राप्त हुई? तुलाधार ने नम्रतापूर्वक कहा—'जो मन-वचन-कर्म के द्वारा सबका हित करता है, जो सबका मित्र है, वही यथार्थ में धर्मात्मा है। मैं ईमानदारी से सबका हित करता हुआ व्यापार करता हूँ। मैं सब के साथ एक-सा व्यवहार रखता हूँ। किसी से ईर्ष्या-द्वेष नहीं करता। मैं अर्थ, काम और लोभ में आसक्त नहीं हूँ। जो मनुष्य इच्छा, द्वेष और भय त्याग देता है, दूसरों को भय नहीं दिखाता, किसी को बुराई नहीं करता, उसे अभयपद और मोक्ष प्राप्त हो जाते हैं। अभय से बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है। जो दूसरों को भय नहीं पहुँचाता उसे किसी से भय नहीं होता। और निर्भय होने पर ही बुद्धि स्थिर तथा निर्मल होकर परम तत्व को प्राप्त कर सकती है। वेदों में स्वर्ग-प्राप्ति

के लिए स्थूल धर्म और मोक्ष प्राप्ति के लिए अभय-दान-स्वरूप सूक्ष्मधर्म का विवेचन किया गया है। जीवों को बेचने मारने तथा खेती करने से हिंसा होती है। राजा नहुष ने मधुपर्क देते समय अनजान में गोवध किया था। उस पाप से छूटने के लिए महर्षियों को प्रयत्न करना पड़ा था। अज्ञान से किया गया पाप भी प्राणियों को दुःख देता है। धन-प्राप्ति के लोभ से वेदज्ञ ब्राह्मण धनी यजमानों को पशुहिंसावाले यज्ञ कराते हैं। उनसे स्वर्ग की प्राप्ति तो होती है, किन्तु जन्म-मरण का चक्र दूर नहीं होता। अतएव हिंसायुक्त यज्ञों के द्वारा दुःख से छुटकारा नहीं होता। पशु-बलि के स्थान पर वनस्पति, घी आदि की व्यवस्था की गई है। अहिंसा के कारण वनस्पति यज्ञ अधिक उत्तम माना जाता है। सभी कार्यों में श्रद्धा ही मुख्य है। ब्रह्माजी ने देवगण को बतलाया था कि श्रद्धावान व्यक्ति यदि अपवित्र हो और पवित्र व्यक्ति श्रद्धा-रहित हो, तो अपवित्र होने पर भी श्रद्धावान ही श्रेष्ठ है। इसी प्रकार के कृपण वेदज्ञ उस मनुष्य से श्रेष्ठ हैं जो सूद के द्वारा धन एकत्रकर बहुत दान करता है। श्रद्धाहीन मनुष्य के मन्त्र, अनुष्ठान तथा यज्ञ आदि सब कर्म निष्फल होते हैं। श्रद्धा के कारण मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर परमपद प्राप्त कर सकता है। श्रद्धा होने पर

सभी नदियाँ एक समान पवित्र करनेवाली और सभी पर्वत फल देने वाले हो जाते हैं, इस कारण तीर्थ-यात्रा के लिए भटकना व्यर्थ है। सच्चा तीर्थ तो वह है जहाँ मन और आत्मा का संगम हो सके। और यह संगम श्रद्धा के द्वारा ही संभव है। जो इंद्रियों को वश में कर, लाभ-हानि को समान समझ, सब प्राणियों तथा कार्यों में समान दृष्टि रख, फल की इच्छा छोड़, शुद्ध मन से श्रद्धायुक्त यज्ञ करता है उसी को सब धर्म का यथार्थ फल प्राप्त होता है।' तुलाधार के उपदेश से जाजलि को ज्ञान हो गया। यथासमय दोनों ने परमपद लाभ किया। राजा विचख्नु ने भी इसी धर्म के तत्व को जानकर मोक्ष प्राप्त किया था।'

युधिष्ठिर ने पूछा—'बिलकुल हिंसा न करने से जीवन-धारण और संसार में निर्वाह कैसे किया जा सकता है?' भीष्म बोले—'ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे अहिंसा-धर्म का पालन भी हो जाय और शरीर का नाश भी न हो।'

अध्याय २६६-२७०

कार्य में देर, चिरकारी, प्रजापालन में हिंसा,
गो-कपिल-संवाद, निष्काम कर्म

युधिष्ठिर बोले—'किसी कार्य के करने का विचार आने पर उसे शीघ्र कर डालना चाहिए या देर से?'

भीष्म बोले—'जो मनुष्य सोच-विचारकर कार्य करता है उससे भूल की संभावना नहीं होती। पूर्व समय में महर्षि गौतम के चिरकारी नामक बुद्धिमान, कार्य-कुशल, विचारवान पुत्र हुआ। वह प्रत्येक कार्य के संबंध में सब तरह से खूब सोच लेने के बाद उसे आरंभ करता था। देर तक सोचने के बाद काम करने के कारण ही लोग उसे चिरकारी कहने लगे। (चिर = देर। चिरकारी = यानी देर से काम करनेवाला) एक बार गौतम ने अपनी स्त्री अहिल्या को व्यभिचारिणी समझकर चिरकारी को आज्ञा दी कि तुम इसे मार डालो। पिता के वन में चले जाने पर चिरकारी उनकी बात पर गंभीरतापूर्वक विचार करने लगा। उसने सोचा कि पिता पुत्र के जन्म का कारण है, वह उसे अन्न-वस्त्र देता है, उसकी रक्षा करता है, उसे विद्या-ज्ञान देता एवं लोकाचार सिखलाता है, यहाँ तक कि संकट के समय भी उसे नहीं छोड़ता। पिता ही पुत्र का सबसे बड़ा देवता, हितू, रक्षक, गति और प्रभु है। अतएव पिता की आज्ञा पालन करना परमधर्म है। फिर सोचा, माता पुत्र के शरीर का प्रमुख कारण होती है। जन्म देने तथा पाल-पोसकर बड़ा करने में माता का भाग पिता की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। माता गर्भ में धारण करने के कारण धात्री, जन्म देने के कारण जननी, अंगों को देने और

पुष्ट करने के कारण अम्बा, प्रसव करने के कारण वीरसू कहलाती है। माता से अधिक स्नेह कोई दूसरा क्या करेगा? पुत्र माता से उऋण नहीं हो सकता। माता को मारने से बढ़कर पाप दूसरा नहीं हो सकता। फिर माता अहिल्या ने इन्द्र के छल के कारण उन्हें अपना पति समझ कर उनका कहना माना था। इसमें माता का कोई दोष नहीं है। दोष इन्द्र का है। अतएव माता की हत्या करना उचित नहीं है। पिता की आज्ञा का पालन करने से स्वर्ग में सुख मिलेगा। किन्तु माता के कारण तो इस लोक और परलोक दोनों में ही अक्षय सुख प्राप्त होगा। यह सोचकर चिरकारी ने माता का वध नहीं किया। इधर वन के एकान्त स्थान में शान्तिपूर्वक विचार करने पर गौतम को अपनी भूल समझ पड़ी। उन्होंने अतिथि के रूप में इन्द्र का स्वागत किया था। इन्द्र ने छल से अहिल्या को भ्रष्ट कर डाला। इसमें दोष स्त्री की सतर्कता-पूर्वक रक्षा न करनेवाले पति का ही तो विशेष है। यह सोचकर गौतमजी जल्दी-जल्दी आश्रम को लौट आये। अहिल्या को जीवित देख वे परम संतुष्ट हुए। उन्होंने प्रसन्न होकर चिरकारी को आशीर्वाद देकर उपदेश दिया कि क्रोध, दर्प, अभिमान, अनिष्ट-चिन्तन, अप्रियकार्य, पाप-कर्म तथा दण्ड-विधान में कभी जल्दी न करनी चाहिए। जो

अपने क्रोध को रोक लेता है और जो सोच-समझकर कार्य करता है उसे पछताना नहीं पड़ता।'

'युधिष्ठिर ने पूछा—'हिंसा किये बिना प्रजा-पालन कैसे हो सकता है ? भीष्मजी ने उत्तर दिया—'एक बार सत्यवान के पिता द्युमत्सेन ने एक मनुष्य को प्राण-दण्ड की आज्ञा दी। इस पर सत्यवान ने उनसे कहा कि किसी का वध करना तो पुण्य नहीं माना जा सकता। द्युमत्सेन ने कहा कि जो दुष्ट लोग दूसरों का अपकार करते हैं। यदि उन्हें दण्ड न दिया जायगा तो सुख, शान्ति और व्यवस्था कैसे हो सकती है ! बिना दण्ड के लोक-व्यवहार कैसे चलेगा ? सत्यवान बोले—'कभी-कभी दुर्जन भी अपना आचरण छोड़कर सज्जन हो जाता है, इस कारण ब्रह्म-दण्ड देकर किसी को सदा के लिए नष्ट कर डालना उचित नहीं है। जिसको प्राण दण्ड दिया गया हो, यदि उसी से कुटुम्ब का भरण-पोषण होता रहा हो तो उसके मारे जाने पर उसके निपराध कुटुम्बी भी नष्ट हो जाते हैं। इस कारण प्राणदण्ड देना उचित नहीं है। डाकू, हत्यारे आदि उपद्रवी यदि किसी और प्रकार से प्रजा को सताना और नष्ट करना न छोड़ें, तो प्राण-दण्ड देकर प्रजा की रक्षा करना चाहिए।'

युधिष्ठिर ने पूछा—'गृहस्थाश्रम और योग-धर्म,

दोनों में से कौन श्रेष्ठ है ?' भीष्मजी बोले—'ये दोनों धर्म श्रेष्ठ हैं, किन्तु इनका पालन करना बहुत कठिन है। इस सम्बन्ध में गो-कपिल-संवाद प्रसिद्ध है। एक बार महर्षि त्वष्टा अतिथि रूप से राजा नहुष के घर आये। नहुष ने वेद की विधि के अनुसार उन्हें मधुपर्क देने के लिए गोवध करने का विचार किया। उसी समय कपिलदेवजी ने वहाँ आकर कहा कि ऐसे वेद को धिक्कार है। उसी समय स्यूमरश्मि नामक महर्षि ने योगबल से गाय के शरीर में प्रविष्ट होकर कपिल से कहा—'आपने वेद-विहित हिंसा को देखकर वेद का अनादर किया है। किन्तु जिस हिंसा-रहित धर्म का आप अवलम्बन करते हैं वह भी तो वेद-विहित हैं। वेद में कर्मकाण्ड और ज्ञान-काण्ड दोनों का ही विधान है। बिना यज्ञ के इस लोक और परलोक में कहीं भी कल्याण नहीं होता।' कपिलजी ने कहा—'कर्म के फल को अनित्यता देखकर ही योगियों ने परब्रह्म की प्राप्ति के लिए ज्ञान-मार्ग का आश्रय लिया है। जो ज्ञान के द्वारा योग-सिद्धि और श्रेष्ठ गति प्राप्त कर सकते हैं, उन्हें गृहस्थाश्रम की झंझट की क्या आवश्यकता है ?' स्यूमरश्मि ने कहा—'गृहस्थों का आश्रय लिये बिना कोई भी किसी धर्म का पालन नहीं कर सकता। जैसे प्राणी माता के आश्रय में रहकर

जीते हैं, वैसे ही अन्य सभी आश्रम गृहस्थाश्रम से सहायता पाकर अपने-अपने धर्म का पालन कर सकते हैं। सन्तानोत्पत्ति और अन्न के कारण ही सृष्टि बनी रह सकती है और गृहस्थाश्रम में ही सन्तानोत्पत्ति और अन्न-संग्रह सम्भव हो सकता है। यज्ञ और तपस्या का साधन गृहस्थाश्रम ही है। गृहस्थाश्रम, मोक्ष का प्रतिबन्धक कैसे हो सकता है! श्रद्धाहीन, पूर्वापर विचार-हीन, आलसी तथा गृहस्थधर्म का पालन करने में असमर्थ मनुष्य ही संन्यास-आश्रम का अवलम्बन करके शान्ति और मोक्ष का उपाय करते हैं। इस वेदोक्त कर्म का अनादर करनेवाले को मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता।'

कपिलजी बोले—'निष्काम धर्म, यज्ञ आदि सकाम धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ है; क्यों कि सकाम धर्म के द्वारा स्वर्ग आदि के सुख तो प्राप्त हो जाते हैं; किन्तु जन्म-मरण से पीछा नहीं छूटता। केवल ज्ञान और निष्काम धर्म के द्वारा ही मनुष्य कर्म के बन्धन से छूटकर मुक्त हो सका है। बिना त्याग के न तो कोई ज्ञान ही प्राप्त कर सकता है और न निष्काम कर्म ही। गृहस्थ लोग विषय-सुख भोग सकते हैं, किन्तु विषयों के बन्धनों से छुटकारा पाकर त्याग विरले ही कर सकते हैं। इसी कारण पुण्य के क्षीण होने पर स्वर्ग से गिरकर जन्म-मरण के चक्र

में घूमना पड़ता है। कर्म के द्वारा चित्त की शुद्धि हो सकती है, चित्त के शुद्ध होते ही ज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञान के द्वारा जीवात्मा और परमात्मा का भेद दूर हो जाता है और मोक्ष प्राप्त हो जाता है।'

अध्याय २७१-२७८

अर्थ-काम से धर्म श्रेष्ठ, अहिंसात्मक यज्ञ, मोक्षधर्म, नारद-देवल-संवाद, माण्डव्य-जनक-संवाद, तृष्णा, मृत्यु

युधिष्ठिर ने पूछा—'धर्म, अर्थ और काम में कौन श्रेष्ठ है?' भीष्म बोले—'तीनों में तो धर्म ही श्रेष्ठ है। पूर्व समय में एक ब्राह्मण ने धन के लिए बड़ा प्रयत्न किया, किन्तु किसी भी देवता से उसे धन न मिल सका। तब उसने कुण्डधार नामक मेघ को पूजा के द्वारा प्रसन्न किया। मेघ ने देवगण को प्रसन्नकर ब्राह्मण के लिए वर चाहा। देवगण ब्राह्मण को धन, राज्य आदि देने लगे। किन्तु कुण्डधार ने उसे धर्म-बुद्धि ही दिलाई। देवगण के प्रभाव से ब्राह्मण को वैराग्य हो गया। वह वन में जाकर तप करने लगा। तप के प्रभाव से उसे सिद्धियाँ प्राप्त हो गईं। वह दूसरों को धन, राज्य, ऐश्वर्य देने की शक्ति पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। कुण्डधार के कहने से उसने अपने तपोबल से देखा कि धनी और राजा लोग घोर नरक में पड़े

हुए हैं। मनुष्य धन तथा भोग विलास आदि के फेर में काम, क्रोध, लोभ, भय, निद्रा, तन्द्रा तथा आलस्य के वशीभूत हो नाना प्रकार के क्लेश भोग रहे हैं। इससे प्रकट हो गया कि धन से थोड़ा-सा सुख किन्तु अनन्त कष्ट मिलता है। अनन्त और सच्चा सुख तो धर्म के द्वारा हो प्राप्त हो सकता है।

'पूर्व समय में सत्य नामक एक परम तपस्वी उञ्छ-वृत्ति से जीवन बितानेवाले थे। उनकी पत्नी पुरुकर धारिणी कठोर व्रत करनेवाली पतिव्रता स्त्री थी। एक बार धर्म ने मृग का रूप रख कर उनसे कहा कि आप यज्ञ में मेरी बलि देकर स्वर्ग प्राप्त कीजिये। सावित्री देवी ने भी प्रकट होकर ब्राह्मण से मृग की बलि देने का अनुरोध किया। किन्तु ब्राह्मण हिंसा करने को तैयार न हुआ। तब मृग ने दिव्य दृष्टि देकर ब्राह्मण को स्वर्ग के सुख दिखला दिये। स्वर्ग-प्राप्ति के लोभ से ब्राह्मण के मन में पशु-वध करके यज्ञ करने की प्रवृत्ति जागृत हो गई। यह देख मृग ने हिंसा की निन्दा कर ब्राह्मण के मन से हिंसा-वृत्ति दूर कर दी। किन्तु उसने पहले अपने मन में मृग का वध करके यज्ञ करने का विचार किया था, इस कारण उसकी तपस्या से प्राप्त बहुत-सा पुण्य नष्ट हो गया। तब धर्म-भगवान ने प्रकट होकर

उस ब्राह्मण को यज्ञ कराया। ब्राह्मण अहिंसा-व्रत के कारण पत्नी-सहित स्वर्ग को गया।

'मनुष्य विषयों में फँसकर अधर्म करता और घोर दुर्गति को प्राप्त होता है। धर्मात्मा विषयों से निवृत्त होकर इस लोक और परलोक में सुख पाता है। शान्ति और निष्काम धर्म द्वारा परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष पाना ही परम पुरुषार्थ है। महात्मा असित देवल ने नारदजी से सृष्टि-क्रम का वर्णन कर कहा था कि पाप-पुण्य के बंधन में पड़कर ही बार-बार मरना-और जन्म लेना पड़ता है, अतएव ज्ञान द्वारा कर्मों का त्याग कर पाप-पुण्य से रहित हो मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है। विदेहराज जनक ने माण्डव्य से कहा था कि तृष्णा ही सारे मोह, ममता, वासना और बंधन का कारण है। अतएव तृष्णा को छोड़ देने से ही शान्ति, ज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। प्राचीन समय में एक पुत्र ने अपने पिता को उपदेश दिया था कि मृत्यु से कोई भी नहीं बच सकता। और मृत्यु कब आ जाय इसका भी कोई निश्चय नहीं रहता। इस कारण सत्कर्म करके जल्दी-से जल्दी परम पद पाने का उपाय करना चाहिए। हिंसा, मोह, तृष्णा, द्वान्द्. अज्ञान को छोड़कर आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जो व्यक्ति सब प्राणियों को अभयदान

देकर गृहस्थाश्रम का त्याग करके, संन्यास धर्म का पालन करता है, वही परब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

अध्याय २७६-२८६

वृत्रासुर शुक्र-संवाद, धर्म का मर्म, विष्णु का माहात्म्य, वृत्रासुरबध, ज्वर की उत्पत्ति, दक्ष-यज्ञ-ध्वंस।

भीष्म ने कहा—'संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसका अन्त न हो। दुःख का अन्त अवश्य होता है। मुक्त हो जाना ही पुनर्जन्म का अन्त है। सभी विषयों की एक सीमा है। हे पाण्डव! संसार के अनुराग का कारण होने से ऐश्वर्य दूषित तो है; किन्तु उससे तुम लोगों का अपकार न होगा। तुम लोग धर्मात्मा हो इस कारण शम-दम आदि के द्वारा विषयों को जीतकर मोक्ष प्राप्त कर लोगे। ज्ञान के द्वारा जब अज्ञान नष्ट हो जाता है, तब सनातन ब्रह्म की प्राप्ति होती है। ब्रह्म की प्राप्ति यत्नसाध्य है। महात्माओं के सत्संग और यत्न द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार होता है।

'पूर्व समय में वृत्रासुर को ऐश्वर्य-भ्रष्ट देख दैत्य गुरु शुक्राचार्य ने पूछा कि तुम शत्रु से पराजित होने पर भी दुखी क्यों नहीं हो? वृत्रासुर ने कहा—'तपस्या और वेदाध्ययन के प्रभाव से मुझे मृत्यु और मोक्ष के विषय

में पूर्ण ज्ञान है। सभी को अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख, स्वर्ग-नरक आदि की प्राप्ति होती है। इसी कारण मैं शोक से पीड़ित और हर्ष से विह्वल नहीं होता। मैंने तप के प्रभाव से तीनों लोकों का ऐश्वर्य प्राप्त किया था और अपने दूषणों के कारण ही इस समय इस दशा को प्राप्त हुआ हूँ। युद्ध के पूर्व मुझे विष्णु भगवान ने दर्शन दिए थे, मुझे उस दर्शन रूपी तप का फल अब मिलेगा।' इसी समय वहाँ सनत्कुमारजी आए। वृत्रासुर ने विष्णु का माहात्म्य जानना चाहा। सनत्कुमारजी बोले—'विष्णु में ही यह संसार स्थित है। यह सब जीव विष्णु से ही उत्पन्न होते हैं और उन्हीं में लीन हो जाते हैं। विष्णु ही काल की सहायता से सब प्राणियों की बार-बार सृष्टि और संहार करते हैं। शास्त्र, तप, यज्ञ से उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। वे तो केवल निष्काम कर्म और इन्द्रिय-संयम् से ही प्राप्त हो सकते हैं। विष्णु भगवान सब प्राणियों के हृदयों में और विश्व भर में व्याप्त हैं। उनके पैर पृथ्वी, सर स्वर्ग, भुजाएँ दिशाएँ, कान आकाश, आँखें सूर्य, मन चन्द्रमा, बुद्धि ज्ञान, रसना जल रूप से स्थित हैं। उनके हृदय में धर्म और ग्रह उनके भौंहों में स्थित हैं। सत्व-रज-तम ये तीनों उन्हीं के स्वरूप हैं। उनके रोम वेद हैं और वाणी प्रणव है। उनका मुख सर्वत्र

व्याप्त है। ब्रह्म, धर्म, तप, मंत्र, शास्त्र, यज्ञ, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर उनके विभिन्न रूप हैं। सबके वे ही आदि कारण हैं। सब प्राणियों को परमात्मा स्वरूप देखने से ही ब्रह्मज्ञान हो जाता है। कृष्ण, धूम्र, नील, रक्त, हरित्, और शुक्ल, प्राणी इन्हीं छः वर्णों के होते हैं। तमोगुण प्रधान होने के कारण कृष्णवर्ण की गति सबसे निकृष्ट होती है। सतोगुण प्रधान होने से शुक्ल वर्ण की गति सबसे उत्तम होती है। क्रम से विभिन्न गतियों को प्राप्त करता हुआ प्राणी अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है। द्वन्दों को त्यागकर जब जीव सभी को विष्णुमय देखता है तभी जन्म-मरण के बंधन से छूटकर वह परमपद प्राप्त करता है।' इस उपदेश के प्रभाव से वृत्रासुर ने उस शरीर को त्याग कर सद्गति प्राप्त की। हे युधिष्ठिर! चेतन-स्वरूप परब्रह्म अनेक अवतार धारण करते हैं। ये श्री कृष्णजी उन्हीं परब्रह्म के आठवें अंश हैं। ये तीनों लोक भी उन्हीं आठवें अंश से उत्पन्न हुए हैं। कल्पान्त में विराट पुरुष का नाश हो जाता है। केवल विष्णु भगवान शयन करते रहते हैं। समय आने पर यही केशव फिर सृष्टि करते हैं। सारा संसार इन्हीं में स्थित है। हे पाण्डव! तुम लोग अपने सत्कर्मों के प्रभाव से सिद्धि प्राप्त करोगे।'

'पूर्व समय में वृत्रासुर ने अपने पराक्रम से तीनों

लोकों का राज्य प्राप्त कर लिया था। बहुत समय बाद बृहस्पति, वशिष्ठ आदि से प्रोत्साहन पाकर इन्द्र ने देवगण को साथ लेकर वृत्रासुर से युद्ध किया। युद्ध के अवसर पर भी बृहस्पति, वशिष्ठ आदि ने इन्द्र तथा देवगण को खूब प्रोत्साहित किया। फिर वशिष्ठ, बृहस्पति आदि ने ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के पास जाकर तीनों लोकों के प्राणियों के संकट का वर्णन कर वृत्रासुर के संहार में सहायक होने के लिए उनसे प्रर्थना की। विष्णु ने इन्द्र के वज्र में प्रवेश किया। शिवजी ने ज्वर रूप से वृत्रासुर के शरीर में प्रवेश कर उसे जर्जरित कर डाला। ऋषियों के कहने से इसी समय ज्वर से पीड़ित वृत्रासुर को इन्द्र ने वज्र से मार गिराया। तीनों लोकों का संकट दूर हो गया। वृत्र के मरते ही ब्रह्महत्या ने इन्द्र का पीछा किया। उसके भय से भागकर इन्द्र कमल नाल के तंतुओं में छिप गये। कुछ समय बाद ब्रह्माजी ने उस ब्रह्म हत्या को अग्नि, जल, वनस्पति और अप्सराओं में बाँट दिया। इंद्र यज्ञ करके शुद्ध हो गये।

'शिवजी हिमाचल की पुत्री भगवती पार्वती के साथ सुमेरु पर्वत के सावित्र नामक अगम्य चोटी पर निवास करते थे। इंद्र, कुबेर आदि देवगण, सिद्ध चारण, गंधर्व आदि उनकी सेवा करते थे। एक बार दक्ष प्रजापति ने

अश्वमेध यज्ञ प्रारंभ किया। भगवान शिवजी से आज्ञा लेकर इन्द्र, वरुण आदि देवगण अपना-अपना भाग लेने के लिए उस यज्ञ में गये। पार्वतीजी ने शिवजी से पूछा कि आप इस यज्ञ में क्यों नहीं जाते? शिवजी ने कहा कि पूर्वकाल में देवगण ने यज्ञ में अपने-अपने भागों की कल्पना करते समय मेरे भाग की कल्पना नहीं की थी, उसी प्राचीन प्रथा के अनुसार मैं इस समय भी यज्ञ में भाग नहीं लेता। इस बात से पार्वतीजी बहुत खिन्न हुईं। उन्हें दुखी देख शिवजी के गणों ने दक्ष के यज्ञ को विध्वंस कर डाला। यज्ञ मृग का रूप रखकर भाग खड़ा हुआ। तब शिवजी के पसीने से उत्पन्न होकर ज्वर ने उसका विनाश कर डाला। तभी से संसार में ज्वर की उत्पत्ति हुई। उसी ज्वर ने वृत्रासुर के शरीर में प्रवेश कर अशक्त और जर्जरित कर डाला था। उस ज्वर के तेज से पृथ्वी को भस्म होते देख ब्रह्माजी के कहने से शिवजी ने उसे अनेक भागों में विभक्त कर दिया।

'दक्ष ने हरद्वार में उस यज्ञ को प्रारंभ किया था। संसार भर के देवता, ऋषि, मुनि, सिद्ध, चारण, गंधर्व आदि निमंत्रित होकर अपनी-अपनी पत्नियों सहित, उस यज्ञ में गये थे। महर्षि दधीचि ने शिवजी के भाग को न देख, सब के सामने कहा था कि जिस यज्ञ में महादेवजी का

भाग न होगा वह सफल नहीं हो सकता। किन्तु प्राचीन प्रथा के कारण दक्ष ने उनका कहना न माना। तब दधीचिजी वहाँ से चले गये। इसके अनन्तर पार्वतीजी के कोप के कारण शिवजी ने अपने मुख से वीरभद्र को उत्पन्न कर यज्ञ को विध्वंस करने के लिए भेजा। पार्वती जी ने अपने अंश से नरमुण्डमाल-धारिणी महाकाली को उत्पन्न कर वीरभद्र के साथ कर दिया। दोनों ने रुद्रगण को साथ लेकर दक्ष के यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। अन्त में अपने अपराध को समझकर दक्ष ने वीरभद्र के कहने से शिवजी की बड़ी स्तुति और आराधना की। शिव-पार्वती ने प्रसन्न हो दक्ष को दर्शन दिये और वर मांगने को कहा। दक्ष ने भक्ति भाव से उनकी पूजा की और एक हजार आठ नाम से उनकी स्तुति की। शिवजी ने प्रसन्न होकर दक्ष के यज्ञ को सफलकर दिया। दक्ष ने देवगण के साथ शिवजी के भाग की कल्पना की। फिर शिवजी ने सब सिद्धियों को देने वाले, अति कठिन पाशुपत-धर्म से दक्ष को दीक्षित किया। अन्त में दक्ष के सब दुःखों को दूरकर तथा सब प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान कर शिवजी अन्तर्धान हो गये।

'यह संसार पंच महाभूतों का खेल है। जो ज्ञान द्वारा इसे समझ लेता है और विषय वासनाओं से निवृत्त

हो एकाग्रमन से विष्णु भगवान में लीन हो जाता है उसे जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा मिल जाता है।'

अध्याय २८७-९०

दुःख और मृत्यु की निवृत्ति, नारद-समंग-संवाद, नारद-देवल-संवाद, आरिष्टनेमि-सगर-संवाद, शुक्राचार्य की कथा।

युधिष्ठिर ने पूछा—'दुःख और मृत्यु से बचने का क्या उपाय है?' भीष्म बोले—'एक बार नारदजी के पूछने पर महात्मा समंगजी ने बतलाया था कि कर्म और उनके फल ही दुःख तथा जन्म-मरण के कारण हैं, अतएव वासना का त्याग और निष्काम कर्म के ही द्वारा दुःख और मृत्यु से पीछा छूट सकता है। इसी प्रकार गालव के प्रश्न करने पर नारदजी ने बतलाया था कि सावधानी से अपनी इंद्रियों को वश में करके विभिन्न आश्रमों के धर्मों का पालन करने तथा तृष्णा और आसक्ति को छोड़ने से ही परमपद प्राप्त हो सकता है। महात्मा अरिष्टनेमि ने राजा सगर को उपदेश दिया था कि सच्चा सुख तो मोक्ष में ही है और विषयों में उलझी हुई बुद्धि एवं वासनाओं में फंसे हुए मन को शुद्ध करके आत्माज्ञान प्राप्त करने से ही मोक्ष मिल सकता है। सभी

अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख पाते हैं, इस कारण अपने और अपने कुटुम्बियों के लिए चिन्ता करना व्यर्थ है। हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि को समान समझ कर संसार को अनित्य मान लेने पर विषय वासना छूट जाती है और मनुष्य परमार्थ चिन्तन में लग जाता है। जिसकी बुद्धि स्थिर और मन शान्त हो, और जिसे संसार की अनित्यता का ज्ञान हो जाय वह चाहे घर में गृहस्थ होकर रहे चाहे वन में संन्यासी बन कर, उसे विषय क्षोभ नहीं पहुँचा सकते और न कर्म उसके बंधन के कारण ही हो सकते हैं।

'पूर्व समय में भृगुवंशी शुक्राचार्य की माता देवताओं का अनिष्ट करने लगी, इस कारण विष्णु भगवान ने उसे मार डाला। तभी से शुक्राचार्य देवगण से शत्रुता मानने लगे। उन्होंने अपने घोर तप के प्रभाव से कुबेर (देवताओं के खजांची) से सब धन-ऐश्वर्य छीन लिया। कुबेर ने जाकर शिवजी से सारा हाल बतलाया। शिवजी ने क्रोधकर शुक्राचार्य को अपने त्रिशूल की नोक पर उठाकर अपने पेट में रख लिया। बहुत दिनों तक शिवजी के पेट में रहने के कारण शुक्राचार्य बहुत घबराने लगे। उन्होंने शिवजी की बड़ी स्तुति की। शिवजी ने उन्हें शुक्ररूप में अपने पेट से निकाल दिया। शुक्राचार्य के बाहर आते ही शिव-

जी ने उन्हें मार डालना चाहा। तब पार्वतीजी ने उनसे कहा कि आपके पेट से निकलने के कारण अब यह मेरा पुत्र हो गया है, इसे मारिये मत। शिवजी ने शुक्राचार्य को अभयकर दिया।'

अध्याय २६१-२६६

पराशर-जनक-संवाद, धर्मोपदेश, वर्ण-मोक्ष-धर्म

युधिष्ठिर ने पूछा—'कल्याण कैसे हो सकता है ?' भीष्म बोले—'पूर्व समय में यही प्रश्न राजा जनक ने पराशरजी से किया था। पराशरजी ने जो उपदेश दिया था वह इस प्रकार है। धर्माचरण और तप से ही इस लोक और परलोक में कल्याण हो सकता है। अपने धर्म पर चलकर मनुष्य दुःखों से छुटकारा पा सकता है। कर्म ही दुःख-सुख, जन्म-मृत्यु के कारण हैं। इच्छा-वासना-तृष्णा का त्याग, शम, दम, क्षमा, धैर्य, तेज, संतोष, सत्य, लज्जा, अहिंसा और दक्षता से ही मनुष्य सुख पाता है। किसी को न तो सदा सुख ही मिलता और न दुःख ही। सुख-दुःख का चक्र सदा चला करता है। जो जैसे कर्म करता है, उसे उसी तरह का फल भोगना पड़ता है। सर्व-भक्षी ब्राह्मण, कायर राजा, उद्योग-हीन वैश्य, आलसी शूद्र, क्रिया-भ्रष्ट विद्वान,

व्यभिचारिणी स्त्री, रागयुक्त योगी, मूर्ख वक्ता, प्रजा पर प्रेम न रखने वाला शासक, और दूसरों से दुर्व्यवहार करने वाला मनुष्य सदा दुःख पाता है। मन और इंद्रियों को वश में रखकर समयानुसार व्यवहार करने वाले को दुःख नहीं भोगने पड़ते। अज्ञान वश किया हुआ पाप प्रायश्चित करने से दूर हो जाता है, किन्तु जान बूझकर किया हुआ अशुभ कर्म प्रायश्चित से भी दूर नहीं होता। संसार में सभी प्राणी अपने-अपने हित, स्वार्थ और सुख के लिए कार्य करते हैं। अतएव यदि अपना सगा भाई भी अपकार या दुष्ट कर्म करे तो उसे त्याग देने में ही सुख है। सज्जनों के संसर्ग से ही गुण, सद्भाव, ज्ञान और सुख प्राप्त होते हैं। जिस रंग का संसर्ग होता है, पानी और स्वच्छ वस्त्र उसी रंग को ग्रहण कर लेते हैं। बारबार फूलों के संसर्ग से तिलों में सुवास आ जाती है। इस कारण समझ-बूझकर साथ करना चाहिए। न्याय पूर्वक उपार्जित धन से ही श्रद्धा पूर्वक किये गये यज्ञ, दान आदि कर्म शुभ फल देते हैं। पूर्व समय में सभी जितेन्द्रिय और धर्म परायण थे। इस कारण यदि किसी से धोखे में कुछ भूल हो जाती थी तो केवल धिक्कारने से ही उनको उचित दण्ड मिल जाता था और वे फिर वैसा दुष्टकर्म नहीं करते थे। कुछ समय बाद दानवों ने सबके शरीर

में प्रवेश कर काम, क्रोध आदि की वृद्धि कर उन्हें असत्कार्यों की ओर लगाया। धिग्दण्ड का प्रभाव जाता रहा। धर्म की हानि देख देवगण के कहने से शिवजी ने काम, क्रोध का नाश कर डाला। फिर प्राणी सद्गुणी और सत्कर्मी हो गये। ऋषियों ने इन्द्र को देवगण का राजा बनाकर स्वयं मनुष्यों का शासन प्रारंभ किया। सप्तर्षि अस्त्र-हीन हो शासन करते थे, इस कारण कुछ भागों का शासन विपृथु आदि क्षत्रियों ने अपने हाथों में ले लिया। तभी से शस्त्रसहित शासन प्रारंभ हो गया। किन्तु मनुष्य को अपने ऊपर धिग्दण्ड द्वारा ही शासन करना और मन तथा इंद्रियों को वश में कर अहिंसाव्रत के द्वारा काम, क्रोध आदि पर विजय पाकर शान्ति और सुख प्राप्त करना चाहिए। स्त्री, पुत्र, धन, मान आदि से ममता और विषयों से राग-द्वेष छोड़ने में ही परम कल्याण होता है। जो ममता, विषयवासना, राग-द्वेष में फँसा रहता है वह जन्म-मरण के बंधन से नहीं छूट सकता।'

जनक ने पूछा—'जब सभी मनुष्य ब्रह्माजी से उत्पन्न हुए हैं तब चार वर्ण और विभिन्न गोत्र कैसे हो गये?' पराशरजी बोले—'तप और सदाचार की कमी के कारण मनुष्य विभिन्न वर्णों में विभक्त हुए। तपस्या से ही आत्मा श्रेष्ठ होता है। माता-पिता चाहे जिस वर्ण के हों, किन्तु

अपने तप के बल पर मुनि उच्च हो जाते हैं। वशिष्ठ, ऋष्यशृंग, वेद, ताण्ड्य, कृप, कात्तीवान, कमठ, यवक्रीत, द्रोण, आयु, मतंग, द्रुपद मात्स्य आदि नीच वंश में जन्म लेकर भी श्रेष्ठ महर्षि हुए हैं। पहले अंगिरा, कश्यप, वशिष्ठ और भृगु से ही चार गोत्र चले थे। बाद में अनेक गोत्र हो गये। कर्म और जन्म इन दोनों के ही द्वारा मनुष्य नीच और उच्च दशा को प्राप्त होता है। जो मनुष्य नीच जाति में उत्पन्न होकर भी नीच कर्म नहीं करता वह नीच नहीं हो सकता और जो उच्चवंश में जन्म लेकर भी नीच कर्म करता है वह हीन दशा को प्राप्त हो जाता है। अपने धर्म का पालन करता हुआ जो ममता, वासना, तृष्णा राग, द्वेष को छोड़कर श्रद्धा, विनय, शम, दम द्वारा ज्ञान प्राप्त कर लेता है वही जन्म, मरण, दुःख, द्वन्द्वों से मुक्त होकर परमपद का अधिकारी होता है। वही जाति श्रेष्ठ है जिसमें जन्म होने पर मनुष्य शुभ कर्मों द्वारा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। अन्य योनियों में जन्म लेने की अपेक्षा मनुष्य-योनि में चाण्डाल होना भी उत्तम है, क्योंकि मनुष्य-योनि में ही ज्ञान और सत्कर्म संभव होते हैं। मनुष्य-योनि प्राप्त करना बहुत ही दुर्लभ है। मनुष्य-योनि पाकर जो स्त्री, पुत्र, धन, मान के मोह में तथा विषयवासनाओं के राग में फँस कर अपने जन्म को

व्यर्थ गंवा देते हैं उनसे बढ़कर मूर्ख दूसरा नहीं हो सकता। विषयों से बच कर मोक्ष के लिए प्रयत्न करना ही परम पुरुषार्थ है। मनुष्य के अच्छे-बुरे कर्म ही उसके साथ लगे रहते हैं और उन्हीं के अनुसार उसे जन्म आदि मिलते हैं। इस कारण समझ कर कर्म करना चाहिए।'

अध्याय ३००-३१९

हंस-साध्यगण, योग्य-सांख्य-क्षर-अक्षर-बुद्ध-अबुद्ध-मोक्ष निरूपण, कराल-वशिष्ठ-संवाद, जनक-याज्ञवल्क्य-संवाद

भीष्म बोले—'एक बार साध्यगण के प्रश्न करने पर दिव्य हंस का रूप धारण कर भगवान प्रजापति ब्रह्मा ने उपदेश दिया था कि तपस्या करना, सत्य बोलना तथा इंद्रियों एवं मन को जीत लेना परम आवश्यक है। सत्य, संयम, क्षमा और ज्ञान सर्वश्रेष्ठ हैं। प्रिय, धर्मयुक्त सत्य से बढ़कर और कुछ भी नहीं है। ज्ञान से बढ़कर दूसरा बल नहीं है।

'सांख्य और योग, ये दो मोक्ष के सर्वोत्तम मार्ग हैं। दोनों का फल एक ही है; दोनों में ही तप, पवित्रता, दया, व्रत आवश्यक बतलाये गये हैं, किन्तु दोनों की साधनाओं में, मार्ग में अन्तर है। योग अनुभव प्रधान है, सांख्य का मत शास्त्रों पर अवलम्बित है। योग के द्वारा

आत्मा को परमात्मा में लीनकर मोक्ष प्राप्त किया जाता है। सांख्य में तत्वज्ञान प्राप्तकर परम पद की प्राप्ति की जाती है। सांख्य में माना गया है कि प्राणियों के शरीर में काम, क्रोध, भय, निद्रा और श्वास ये पाँच दोष रहते हैं। इन्हें दूर कर मनुष्य को तत्वज्ञान प्राप्त करना चाहिए। अति सूक्ष्म जीवात्मा शरीर में निवास करता हुआ, स्वप्रकाशित इंद्रियों द्वारा सब पदार्थों को देखता है। जीवात्मा के न रहने पर सब इंद्रियां जड़ पदार्थों की तरह चेष्टा रहित होकर नष्ट हो जाती हैं। जब जीवात्मा कर्मों का त्याग करके अनन्त, निर्द्वन्द परमात्मा को प्राप्त करता है तब उसके सभी पाप-पुण्य समाप्त हो जाते हैं, वह जन्म-मरण से छुटकारा पा जाता है। सांख्य मतवाले ज्ञान के प्रभाव से परम गति पाते हैं।

'एक बार राजा कराल (जनक) के पूछने पर वशिष्ठ जी ने कहा था कि यह सम्पूर्ण जगत क्षर है। जिस अविनाशी अज, विश्वात्मा, सर्व शक्तिमान, सर्व व्यापी परमपुरुष से इस जगत को उत्पत्ति, पालन, नाश होता है वही अक्षर। वही अविनाशी आदि में क्रमशः प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, पंच तन्मात्राएँ, (शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध) पंच महाभूत (आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी,) पंच ज्ञानेद्रिय (कान, त्वचा, आंख, जिह्वा, घ्राण) पंच कर्म-

न्द्रिय (वाणी, हाथ, पैर, गुदा, लिंग) तथा मन इन चौबीस तत्वों को उत्पन्न कर सृष्टि की रचना करता है। जल, स्थल, आकाश के सभी प्राणियों में ये चौबीस तत्व पाये जाते हैं। इन चौबीस तत्वों से बने हुए शरीर सदा नष्ट होते रहते हैं, इसी कारण ये सब क्षर कहे जाते हैं। ईश्वर अविनाशी है इस कारण उसे अक्षर कहते हैं। जीवात्मा प्रकृति के साथ मिलने से मोह और अज्ञान के कारण बार-बार जन्म मरण, दुःख-सुख का भोग करता है। स्थूल शरीर की ही वृद्धि होती है। और वही नष्ट होता है, जीवात्मा तो केवल शरीर बदलता रहता है। जो पचीस वे तत्व जीवात्मा और छब्बीसवें तत्व परमात्मा का अभेद भाव समझ लेता है वह मुक्त हो जाता है। जो इन तत्वों को समझ लेता है अथवा योग द्वारा आत्मा को परमात्मा में लीन कर लेता है उसे संसार की किसी बात से भय नहीं रह जाता, वह मुक्त हो जाता है। सृष्टि और प्रलय करने वाली प्रकृति को अविद्या कहतेहैं और विद्या इन चौबीसों तत्वों से परे है। जब ज्ञान होने के कारण देहाभिमानी जीवात्मा प्रकृति को गुणों से युक्त और अपने को निर्गुण एवं प्रकृति से पृथक समझता है तब वह शुद्ध होकर परम पद प्राप्त करता है। परमात्मा सब यथार्थ तत्वों को जानता है, इस कारण उसे बुद्ध कहते हैं। जीवात्मा गुणों के कारण

अनेक रूप धारण करता और उन रूपों को यथार्थ समझाता है, प्रकृति के साथ रहने से वह विकृत जान पड़ता है तथा अपने को कर्ता समझकर अभिमान करता है, एवं परमात्मा तथा अपने यथार्थ रूप को भूल जाता है। अतएव उसी जीवात्मा को अबुद्ध कहते हैं। जब ज्ञान के प्रभाव से जीवात्मा अपने को जरा-मरण-हीन परमात्मा समझ लेता है तब वह परमात्मा में लीन हो जाता है।'

'पूर्व काल में जनक वंशी राजा वसुमना को भृगुवंशी महर्षि ने उपदेश दिया था कि तुम सब का हित करते हुए आत्मतत्व को जान कर शुभ कर्मों में मन और बुद्धि को लगा कर परम पद प्राप्त करो।

'एक बार राजा जनक (देवरात के पुत्र) के प्रश्न करने पर याज्ञवल्क्य ने सांख्य, योग, तत्व, सृष्टि, प्रलय, सत्वगुण आदि का सविस्तर रहस्य बतलाकर कहा—'मैंने कठोर तप के द्वारा सूर्य नारायण को प्रसन्नकर उन से यजुर्वेद की पन्द्रह सखाएँ प्राप्त की। फिर अपने मामा वैशम्पायन आदि से बदला लेने के विचार से मैंने सौ शिष्यों को शतपथ, उपनिषद्, तर्क और परिशिष्ट सहित यजुर्वेद पढ़ाकर तैयार किया और वेद के तात्पर्य को संसार के सामने प्रकट करना प्रारम्भ किया। गन्धर्वों के राजा विश्वावसु ने भी मुझसे वेदों का तात्पर्य समझकर

वेद प्रचार करना प्रारंभ किया था। वेदाध्ययन तप और सत्संग के अनन्तर मैं इसी निर्णय पर पहुँचा हूँ कि ज्ञान से ही मोक्ष होता है। मनुष्य को अज्ञान के कारण बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसना पड़ता है। ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य जन्म-मरण से छूट जाता है। सभी वर्ण ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं, इस कारण सभी ब्राह्मण माने जा सकते हैं और सभी वर्णों को ज्ञान प्राप्त करने और वेद पढ़ने का अधिकार है। सम्पूर्ण जगत ब्रह्ममय है। ज्ञान से ही सबको तत्वों के रहस्य और मुक्ति प्राप्त हो सकती है। वेदाध्ययन, तप, यज्ञ आदि से मोक्ष नहीं मिल सकता। मोक्ष तो केवल ज्ञान के द्वारा ही संभव है।

अध्याय ३२०-३२१

'महर्षि पञ्चशिख ने राजा जनक के पूछने पर कहा था कि जीवन्मुक्त योगी के अतिरिक्त और दूसरा कोई भी मृत्यु और बुढ़ापे को नहीं जीत सकता।'

युधिष्ठिर ने पूछा—'क्या गृहस्थाश्रम में रहकर ही कोई मोक्ष प्राप्त कर सकता है?' भीष्मजी बोले—'इस संबंध में एक प्राचीन उपाख्यान है। पूर्व समय में जनक वंश में धर्मध्वज नामक एक राजा थे। वे मोक्ष-शास्त्र,

राजनीति के ज्ञाता एवं इन्द्रियजित थे। सुलभा नामक योगधर्मावलम्बिनी संन्यासिनी उनका यश सुनकर घूमती हुई उनकी परीक्षा लेने के लिए जनकपुर में आई और योगबल से बहुत ही सुन्दर रूप धारणकर राजा के सामने जा पहुँची। धर्मध्वज ने उसका उचित सत्कार किया। सुलभा ने योगबल से राजा के शरीर में प्रवेश कर उनपर पूर्ण अधिकार कर लिया। राजा ने सुलभा का प्रभाव देख मुस्कराकर कहा—'तुम कौन हो और कहाँ से आई हो? मैं महर्षि पञ्चशिख के उपदेश से ज्ञान-योग के द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्तकर वासनाओं एवं तृष्णा पर जीत प्राप्तकर द्वन्द्वों से छुटकारा पा, समदृष्टिमय जीवन्मुक्त हो गया हूँ। मुझे स्त्री, पुत्र, राज्य, यश आदि किसी से भी मोह-ममता नहीं रह गई है। जब संन्यासियों में काम, द्वेष, मान, दम्भ, स्नेह आदि वर्तमान हैं तब उनमें और गृहस्थों में भेद क्या है? केवल कपड़े रँगने, सर मुँड़ाने, दण्ड-कमण्डल धारण करने अथवा निर्धन होने से ही मोक्ष नहीं मिल सकता। विषय-भोग करनेवाले संन्यासी का दण्ड-कमण्डल और रँगे वस्त्र धारण करना व्यर्थ है। त्यागी-संन्यासी वही है जो ममता, मोह, वासना, तृष्णा, आसक्ति तथा भेद-भाव छोड़ दे। ऐसी स्थिति में राज्य करना और वन में रहना एक-सा ही है। इसी कारण मैं निर्लिप्त होकर राज्य

करता हूँ। संन्यासिनी बनकर तुमने मेरा शरीर रोक रक्खा है, तुम मेरे शरीर में प्रविष्टि हुई हो, इस कारण तुम्हें व्यभिचार का दोष लगा है। तुम पर-स्त्री हो। फिर संन्यासिनी हो। न जाने किस वर्ण तथा गोत्र की हो! इस कारण यदि तुमसे कोई पुत्र हुआ तो वह वर्ण-संकर, आश्रम-संकर, गोत्र-संकर या धर्म-संकर होगा। फिर मैं तुम्हें प्रेम नहीं करता, इस कारण मेरा तुम्हारा संयोग अमृत-तुल्य न होकर विष-तुल्य होगा। तुम गुप्त रूप से किसी राजा का कोई कार्य सिद्ध करने के विचार से तो नहीं आई हो?'

सुलभा बोली—'सार्थक, सरल, संक्षिप्त, सुमधुर सुन्दर पदों से युक्त बात कहनी चाहिए। कड़वी, निर्मूल, अर्थ-धर्म-काम-विरुद्ध, दोष-युक्त, क्रम-हीन, युक्तिशून्य तथा व्यर्थ की बात कभी न कहना चाहिए। शरीर की अवस्था और स्थिति बदलती रहती है और आत्मा शरीर को बदलती रहती है। ऐसी दशा में यह पूछना कि तुम कौन हो, कहाँ से आई हो, व्यर्थ है। फिर जब तुम आत्मज्ञान के कारण सब को समान मानते हो, तो यह अपने-पराये का भाव कैसा? और जब तुम अन्य राजाओं से भय खाते तथा संधि-विग्रह करते हो, तब तुम्हारा निर्लिप्त भाव कहाँ रहा? फिर तुम्हारी शैया के आधे भाग पर तुम्हारी स्त्री अधिकार किये रहती है, तुम्हें मंत्रियों, सेवकों आदि

के कहने के अनुसार चलना है, तब तुम्हारा सब पर एकाधिपत्य तथा पूर्ण स्वतंत्रता कैसी? तुम्हारा और मेरा आत्मा एक है, तब दोनों के मिलने में दोष कैसा? फिर तुम जीवन-मुक्त हो, ऐसी दशा में तुम्हारे सूने शरीर में मेरी आत्मा का प्रवेश धर्म-विरुद्ध कैसा? जैसे हाथ पर रक्खे हुए दूध के बर्तन में पड़ी हुई मक्खी हाथ में नहीं छू जाती, वैसे ही ब्रह्मनिष्ट पुरुष को वर्ण और आश्रम के धर्म नहीं छू सकते। मैं प्रधान नामक राजर्षि की कन्या हूँ। योग्य वर न मिल सकने के कारण मैंने संन्यास ले लिया है। मैं तुमको मोक्षधर्म का ज्ञाता जानकर तुमसे धर्म-चर्चा करने आई थी। किसी प्रकार के संकरों की उत्पत्ति की बात ही व्यर्थ है। वितण्डावादी कभी मोक्ष का अधिकारी नहीं हो सकता।' सुलभा के इन तर्कों के आगे राजा से कुछ न कहते बना।

अध्याय ३२२-३३४

शुकदेव-चरित, व्यास-नारद-उपदेश, व्यास का भय और पुत्र-प्राप्ति, शुकदेव जनक के पास वेश्याओं के बीच, वैशम्पायन आदि का वेद-पाठ, शुकदेव का मोक्ष

युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म शुकदेवजी की कथा कहने लगे—'व्यासदेव ने अपने पुत्र शुकदेव को निर्भय

घूमते हुए देख, वेद-वेदांग पढ़ाकर उपदेश दिया कि तुम अब चौबीस वर्ष के हो गये हो, अतएव तुम अपनी इंद्रियों को वश में कर तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करो और आत्म-दर्शन कर मोक्ष प्राप्त करो। पूर्व समय में पुत्र की कामना से सुमेरु पर्वत पर मैंने घोर तप किया। शिवजी ने प्रसन्न होकर मुझे वर दिया कि तुम्हें ब्रह्मज्ञानी तथा मोक्ष का अधिकारी पुत्र मिलेगा। वर पाकर एक बार व्यासजी अग्निहोत्र के लिए अग्नि प्रज्वलित करने लगे। इसी समय घृताची नामक अप्सरा को देख उनका मन चंचल हो उठा। महर्षि का मन विचलित देख, घृताची शुकी का रूप रखकर उनके पास गई। व्यासदेव ने उसे पक्षी के रूप में देख अपने मन को संयत करना चाहा, किन्तु वे ऐसा कर न सके। उनका अंश यज्ञ की लकड़ी पर गिर पड़ा। उसीसे अग्नि के समान परम तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा, इंद्र, नारद आदि ने आकर उसके संस्कार कराये और व्यासदेव से उन सब ने कहा कि इस पुत्र के कारण आपका यश अमर हो जायगा। वे वहीं रहकर ब्रह्मचर्यपूर्वक वेद-वेदांग का अध्ययन करने लगे। फिर पिता के कहने से उन्होंने बृहस्पतिजी के पास जाकर अध्ययन किया। वहाँ से लौटकर वे मोक्ष-धर्म के ज्ञान के लिए व्यासजी के पास गये। व्यासदेव ने उन्हें मोक्ष-धर्म की शिक्षा के लिए राजा जनक के

पास भेजा। आकाश-मार्ग से चलने की शक्ति रहने पर श्रीशुकदेवजी पैदल इलावृतवर्ष, हरिवर्ष किम्पुरुषवर्ष, चीन और हूण देशों को पारकर मिथिलानगरी में पहुँचे। राजमहल के सामने पहुँचने पर उन्हें द्वारपाल ने रोका। वे मान-अपमान, घाम आदि का विचार न कर वहाँ रुके रहे। बाद में द्वारपाल उन्हें दूसरी ड्योढ़ी में ले गया। वहाँ भी शुकदेवजी शान्त बैठे रहे। तब एक मंत्री ने उन्हें तीसरी ड्योढ़ी के अन्दर प्रमदावन लेजाकर ठहराया। नवयौवना, सुन्दरी पचास वेश्याओं ने उनका आदर-सत्कारकर उनको दिव्य भोजन कराये और हास्य, गायन, नृत्य आदि से उनका मनोरंजन करना चाहा। पर शुकदेवजी किसी ओर आकर्षित न हुए। रातभर वे वहाँ कोमल, सुगंधित सेज पर वेश्याओं से घिरकर सोये। पर उनके मन में कोई विकार न हुआ। सवेरे राजा अपने मंत्रियों, रनिवास की स्त्रियों, सेवकों आदि को साथ लेकर शुकदेवजी से मिलने आये। शुकदेवजी ने उनसे आने का कारण बतलाया। राजा ने उन्हें आश्रम आदि के धर्मों के मर्म को बतलाकर मोक्ष-धर्म का रहस्य बतलाया। उनसे विदा होकर शुकदेवजी आकाश-मार्ग से अपने पिता के आश्रम में गये। वहाँ गरुड़जी निवास करते हैं। वहाँ इंद्र, वरुण आदि दिग्पाल जाया करते

हैं। विष्णु-भगवान ने पुत्र के लिए वहीं घोर तप किया था। कार्तिकेय ने तीनों लोकों को तृण समान तुच्छ समझ, उसी पर्वत पर यह कहकर अपनी शक्ति गाड़ दी थी कि जो कोई मुझसे अधिक बलवान और ब्रह्मनिष्ठ हो वह इस शक्ति को उखाड़ डाले या हिला दे। तीनों लोकों को भय-विह्वल देख लोक-कल्याण के लिए विष्णु-भगवान ने उस शक्ति को केवल हिला दिया, कार्तिकेय के गौरव की रक्षा के विचार से उसे उखाड़ा नहीं। प्रह्लाद कार्तिकेय के प्रताप और गौरव को न सह सकने के कारण उस शक्ति को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करने लगे, किन्तु वे उसे हिला तक न सके। शक्ति के प्रभाव से वे मूर्छित होकर गिर पड़े और चिल्लाने लगे। शिवजी ने भी उसी स्थान पर घोर तपकर सिद्धि प्राप्त की थी। इसी पर्वत के पूर्वभाग के एक निर्जन स्थान पर व्यासजी ने सुमन्तु, वैशम्पायन, जैमिनि और पैल नामक चार शिष्यों को सांगोपांग वेद पढ़ाये थे। इसी स्थान पर व्यासजी के पास जाकर शुकदेव ने जनकजी से सब रहस्यों के प्राप्त करने की सारी बातें बतलाईं। कुछ समय बाद सुमन्तु, पैल आदि ने सम्पूर्ण वेदों को प्राप्तकर व्यासजी से यह वर माँगा कि हम चारों को और शुकदेवजी को छोड़कर अब और कोई दूसरा वेदों का प्रतिष्ठाता न माना

जाय। व्यासजी ने उन्हें मनचाहा वर देकर उनसे कहा कि ब्राह्मणों को अग्रसरकर चारों वर्णों को वेद सुनाना चाहिये, अब तुम लोग संसार में वेदों का प्रचार करो। शिष्यों के चले जाने पर व्यासजी कुछ उदास हो गये। इसी समय नारदजी ने आकर उनसे कहा कि आप शुकदेवजी के साथ ज़ोर-ज़ोर से वेदपाठ करें तो सबका कल्याण हो। पिता-पुत्र वेदों का पाठकर जगत का कल्याण करने लगे। एक दिन पाठ करते समय ज़ोर की आँधी आई। शुकदेवजी के पूछने पर व्यासजी ने वायु की उत्पत्ति बतलाकर कहा कि पृथ्वी और आकाश में सात प्रकार के विभिन्न वायु चला करते हैं और इस शरीर में भी वे प्राण, अपान आदि रूप में सारा कार्य संचालित करते हैं। ये सब विष्णु के श्वास-रूप हैं।

'उपदेश देकर वेदव्यासजी मंदाकिनी के तट पर चले गये। उसी समय वहाँ नारदजी आये। शुकदेवजी ने उनका उचित रूप से स्वागत किया। नारदजी ने शुकदेवजी को सदाचार, सत्य, तप, त्याग, ब्रह्मचर्य, वासना-तृष्णा-निवृत्ति, इन्द्रियदमन, संसार की नश्वरता, मृत्यु की अनिवार्यता, तथा आत्मदर्शन का रहस्य बतलाकर मोक्ष प्राप्त करने का उपदेश दिया। शुकदेवजी ने नारदजी को प्रणामकर कहा कि आपके उपदेश से मैं योगबल के द्वारा वायुरूप हो

सूर्यमण्डल में प्रवेश करूँगा; क्योंकि सूर्यमंडल चंद्रमंडल की तरह न तो घटता-बढ़ता और न पृथ्वी पर ही गिरता है। यह कह तथा नारदजी से विदा होकर वे अपने पिता की आज्ञा प्राप्तकर कैलाशपर्वत पर चले गये और वहाँ योग द्वारा ध्यानावस्थित हुए। फिर योगबल से वायुरूप हो वे आकाशमण्डल में विचरते हुए मलयपर्वत को पार कर आगे बढ़े। पञ्चचूड़ा, उर्वशी, पूर्वचित्ति आदि अप्सराएँ उनका गुणानुवाद करने लगीं। उनके मुख से अपने पिता का नाम सुनकर शुकदेवजी ने आकाश, दिशाओं, पर्वतों, वनों, नदियों आदि से कहा कि यदि पिता मुझे पुकारें, तो तुम सब मेरी ओर से उन्हें उत्तर देना।

'शुकदेवजी को आकाश-मार्ग से जाते जान, पुत्र-स्नेह से कातर हो, व्यासजी 'हा पुत्र ! हा पुत्र !!' चिल्लाते हुए उनके पीछे दौड़े। निश्चय के अनुसार नदी, वन-पर्वत आदि व्यासदेव को उचित उत्तर देने लगे। पुत्रविरह से व्याकुल व्यासजी विलाप करते हुए मंदाकिनी के तीर जा पहुँचे। कुछ देवांगनाएँ वहाँ बिना वस्त्र के स्नान कर रहीं थीं। शुकदेव जी के जाते समय उन्हें तनिक भी लज्जा न हुई। किन्तु व्यासदेव के आते ही वे लज्जा एवं संकोच से भागकर अपने अंगों को छिपाने लगीं। यह देख व्यासदेव को लज्जा और प्रसन्नता हुई। लज्जा इस कारण कि मैं विषयासक्त हूँ, प्रसन्नता

इस कारण कि मेरा पुत्र ऐसा विषय-त्यागी हुआ कि उसे देख इन देवांगनाओं को कुछ भी लज्जा-संकोच न हुआ। व्यासदेव को दुखी देख शिवजी ने उन्हें अनेक प्रकार से समझाकर शान्त किया और वर दिया कि तुम सदा अपने पुत्र की छाया देख सकोगे।' व्यासजी को अपने पुत्र के ब्रह्मलीन होने पर संतोष हुआ।

अध्याय ३३५-३४१

देव-पितर-आराधना, नारायण-नारद-संवाद, श्वेतद्वीप, उपरिचर वसु को शाप, नारद का विष्णु-दर्शन, विष्णु-माहात्म्य, अवतार, वासुदेव-संकर्षण प्रद्युम्न-अनिरुद्ध, देवगण के अधिकार

युधिष्ठिर ने पूछा—'किसकी आराधना से स्वर्ग, सिद्धि तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है ?' भीष्मजी बोले—'सत्य-युग में विश्वात्मा, सनातन नारायण ने धर्म के पुत्र होकर नर, नारायण, हरि और कृष्ण के रूप में अपने चार अंश प्रकट किये। नर-नारायण ने बदरिकाश्रम में जाकर घोर तप द्वारा असह्य तेज प्रकट किया। उन्हें पूजा में रत देख नारद जी ने नम्रता से प्रश्न किया कि आप स्वयं विश्वात्मा हैं, फिर आप किस देवता-पितर की आराधना करते हैं ? नर-नारायण ने मुसकराकर कहा—'जो अज्ञेय, अचल, अजन्मा,

अक्षय, अव्यक्त, अविनाशी, कर्महीन, गुणातीत, क्षेत्रज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, सर्वनियंता, सर्वोत्पादक तथा आदि कारण है, उसी से हमारी और सब देवगण की उत्पत्ति हुई है और उसी को हम परमदेवता, परमपिता मानकर उसी की आराधना करते हैं। ब्रह्मा, शिव, विष्णु, दिग्पाल आदि उसी से उत्पन्न होकर उसी की शक्ति और कृपा से अपना-अपना कार्य करते हैं। वह निर्गुण, निर्विकार होते हुए भी माया के प्रभाव से सगुण हो जाता है। उसी की आराधना से प्राणी परमपद प्राप्त कर सकता है।

'नारायण से आज्ञा लेकर नारदजी श्वेतद्वीप को गये। पूर्व समय में लोक-कल्याण और प्रजा के सुख-शान्ति के उद्देश्य से सप्तर्षियों (मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ) ने विष्णु-भगवान की आराधना कर सरस्वती की कृपा से नीतिशास्त्र का प्रणयन किया। उसी के अनुसार बृहस्पति, शुक्राचार्य तथा मनु ने लोक-शासन और लोक-कल्याण की व्यवस्था की। धर्म-परायण, विष्णुभक्त, तत्वज्ञ, प्रजारक्षक राजा उपरिचर ने उस नीति-शास्त्र को देवगुरु बृहस्पति से प्राप्तकर साम्राज्य की स्थापना की। एक बार राजा ने विष्णु-भगवान की प्रसन्नता के लिए महायज्ञ प्रारम्भ किया। सब देवगण ने प्रकट होकर अपना-अपना यज्ञ-भाग ग्रहण किया। विष्णु-

भगवान ने भी केवल राजा को दर्शन देकर अपना भाग स्वीकार किया। इस पर बृहस्पतिजी ने क्रोधकर कहा कि विष्णु को सबके सामने प्रकट होकर अपना भाग लेना होगा। इस पर महर्षि एकत, द्वित, त्रित ने कहा 'हम लोगों ने विष्णु-भगवान के दर्शनों के लिए हज़ारों वर्ष तक घोर तप किया, श्वेतद्वीप गये, किन्तु तो भी हमें उनके दर्शन न हो सके। जब हम लोग श्वेतद्वीप में पहुँचे, तो हम लोगों की देखने की शक्ति जाती रही। इस कारण वहाँ विष्णु भगवान के प्रकट होने और श्वेतद्वीप-वासियों द्वारा उनकी स्तुति सुनने पर भी हम उनके दर्शन न कर सके। हमें बड़ा क्षोभ हुआ। तब हमें आकाशवाणी सुन पड़ी कि बिना पूर्ण भक्ति और त्याग के कोई भी भगवान का दर्शन नहीं पा सकता, तुम लोग यहाँ से लौटकर शुभ कर्मों में लगो, समय आने पर तुम्हें दर्शन होंगे। हे बृहस्पतिजी! जब इतनी तपस्या, इतना प्रयत्न करने पर भी हमें दर्शन न हो सके तो क्रोध के द्वारा तुम कैसे भगवान के दर्शन कर सकते हो।' सब के समझाने से बृहस्पतिजी शान्त होगये। यज्ञ शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ।

'एक बार महर्षियों और देवगण में यज्ञ को लेकर विवाद हुआ। देवगण कहते कि वेदों में बकरे की बलि का विधान है, महर्षि कहते कि अज बीज के अर्थ में प्रयुक्त

हुआ है। इस कारण बीजों और वनस्पतियों से ही यज्ञ करना चाहिये। उन्होंने वेदज्ञ राजा उपरिचर से निर्णय करने के लिए कहा। उपरिचर ने देवगण की बात का समर्थन करके कहा कि यज्ञ में पशुबलि देना वेद-सम्मत है। इस पर महर्षियों ने उन्हें शाप दिया कि तुम देवगण का पक्ष करके हिंसा का समर्थन करते हो, इस कारण तुम्हें स्वर्ग से गिरकर पृथ्वी में धँसना पड़ेगा। शाप के कारण उपरिचर स्वर्ग से गिरकर पृथ्वी में समा गये। तब देव-गण ने यज्ञ द्वारा उन्हें शाप से मुक्त कराया। विष्णु भगवान ने राजा की भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें शाप से मुक्तकर दिव्य लोक में बुला लिया।

'श्वेत द्वीप में पहुँचकर नारदजी ने वहाँ के तेजस्वी, सतोगुण प्रधान, सिद्ध, इंद्रिय-रहित, विष्णुभक्त महात्माओं के दर्शन किये। फिर भगवान के दर्शनों की इच्छा से उन्होंने भक्ति-भाव से स्तुति की। भगवान ने अपने सर्व व्यापी, दिव्य, विराट रूप के दर्शन देकर कहा—'तुम मेरे परमभक्त हो, इस कारण मैं तुम्हें इस रूप के दर्शन देता हूँ। संसार के सभी पदार्थ अनित्य हैं। सब प्राणियों का आत्मभूत मेरा वासुदेव-रूप ही नित्य और ज्ञानमय है। वासुदेव से संकर्षण-रूपी जीवात्मा का प्रादुर्भाव होता है। जीवात्मा के कारण ही सोलह कलाओंवाले शरीर

में चेतना आती है। संकर्षण से प्रद्युम्न (मन) की और प्रद्युम्न से अनिरुद्ध (अहंकार) की उत्पत्ति होती है। अनिरुद्ध से ब्रह्मा तथा चराचर जगत की उत्पत्ति होती है। रुद्र, आदित्य, वरुण, वायु आदि सभी का आदि कारण मैं ही हूँ और मुझमें ही यह सारा जगत लीन हो जाता है। धर्म-रक्षा के लिए मैं समय-समय पर अवतार लेता हूँ। हंस, कूर्म, मत्स्य, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण और कल्कि ये मेरे दस प्रमुख अवतार हैं। द्वापर और कलियुग की संधि में मैं नारायण-नरके कृष्ण-अर्जुन के रूप में प्रकट होकर दुष्टों का संहार और सज्जनों का अभ्युदय करूँगा।' आदिपुरुष से विष्णुमाहात्म्य तथा वेदों के सार भूत उपनिषद् प्राप्तकर नारजीने उन्हें ब्रह्माजी को सुनाया। ब्रह्माजी ने इस ज्ञान को संसार में प्रकट किया। देवगण ने विष्णुमाहात्म्य जानकर यज्ञ के द्वारा उनकी आराधना कर अपने-अपने अधिकार पाये। विष्णु-भगवान ने ही लोक-कल्याण के निमित्त यज्ञ की कल्पनाकर प्रवृत्ति और निवृत्ति-मूलक दो मार्गों की स्थापना की। देवगण तथा कतिपय महर्षि आदि प्रवृत्ति-मार्ग का अनुसरण करते हैं और कुछ महर्षि निवृत्ति मार्ग का अवलम्बन कर परमपद प्राप्त करते हैं। शिष्यों के पूछने पर व्यासदेव ने कहा कि परब्रह्म परमात्मा सर्वत्र व्याप्त

होकर संसार की उत्पत्ति, पालन और नाश करते हैं। केवल योगावलम्बी ज्ञानी को ही उनके दर्शन हो सकते हैं। उनकी पूजा, आराधना तथा उपासना ही सर्वश्रेष्ठ कर्म है।'

अध्याय ३४२-३४३

भगवान के नामों के अर्थ, ब्राह्मणों का प्रभाव, नारायण-रुद्र-युद्ध

जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायन बोले—'एक बार अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से उनके नामों के अर्थ पूछे। श्री कृष्णजी ने उत्तर दिया कि मेरे अनेक नाम बतलाये गये हैं। उनमें से कुछ गुणों के अनुसार हैं और कुछ कर्मों के। सृष्टि के आदि में नारायण के अनिरुद्ध नामक अंश से संहारकर्ता रुद्र की उत्पत्ति हुई। रुद्र मेरे आत्म-स्वरूप हैं। मैं उनकी पूजा करता हूँ। यदि मैं उनकी पूजा न करूँ तो कोई मेरा सत्कार न करे। मैंने सर्वसाधारण को आत्मा की पूजा में लगाने के लिए रुद्रदेव की पूजा का नियम बनाया है। जो रुद्र को जानता है वही मुझे जान सकता है। जो रुद्र का भक्त है वही मेरा भक्त हो सकता है। रुद्र और मैं, दोनों एक रूप हैं। मैं और रुद्र दोनों ही आत्मरूप से सब प्राणियों में स्थित हैं। मैंने पुत्र के लिए रुद्र की आराधना की थी। रुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र आदि सभी नारायण की आराधना करते हैं। नार (जल) ही

आश्रय-स्थान होने के कारण मेरा नाम नारायण है। वासु का अर्थ निवास है और देव का अर्थ प्रकाशक। मैं सभी को प्रकाशित करता हूँ और सब प्राणियों का निवास मुझमें ही है, इस कारण मेरा नाम वासुदेव है। विष्णु का अर्थ है गति उत्पन्न करनेवाला, दीप्तिमान, व्यापक तथा प्रवेश एवं निर्गम स्थान। मैं प्राणियों को उत्पन्न करता हूँ, उन्हें गति देता हूँ, सबमें व्याप्त हूँ, मेरे तेज से सब प्रकाशित हैं, सब मुझसे उत्पन्न होते और मुझमें ही लीन हो जाते हैं, इस कारण मेरा नाम विष्णु है। सभी प्राणी दम गुण द्वारा सिद्धि प्राप्त करने की इच्छा से त्रिलोक-स्वरूप मेरी कामना करते हैं इसी से मेरा नाम दामोदर है। संसार को प्रकाशित करनेवाली सूर्य-चंद्र की किरणें मेरे केश हैं इसी से मेरा नाम केशव है। अग्नि और चंद्रमा जगत को प्रसन्न रखने के कारण हृषी कहे जाते हैं और वे मेरे केश रूप हैं, इस कारण मेरा नाम हृषीकेश है। पृथ्वी को कर्षण करने (जोतने) तथा कृष्णवर्ण के होने के कारण मेरा नाम कृष्ण है। मैं कुण्ठा-रहित हूँ, इससे मेरा नाम वैकुण्ठ है। मैं कभी ब्रह्मपद से च्युत नहीं होता, इस कारण मेरा नाम अच्युत है। आकाश और पृथ्वी को धारण करने के कारण मेरा नाम अधोक्षज है। मेरे ब्रह्मरूप से ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है। वेदों और

यज्ञों के द्वारा ब्राह्मण ही संसार को धारण किये हुये हैं। ब्राह्मणों का प्रभाव अद्भुत है। गौतम के प्रभाव से इन्द्र के शरीर में भग हो गये। च्यवन ने अश्विनीकुमारों को यज्ञ-भाग दिलाते समय इंद्र की भुजा को निश्चेष्ट कर दिया था। दधीचि की हड्डियों के बने हुए वज्र से ही इंद्र वृत्रासुर को मार सके थे। यज्ञ-विध्वंस होने पर दक्ष ने तप के द्वारा रुद्र के माथे में तीसरा नेत्र उत्पन्न कर दिया था। ब्राह्मण के शाप से नहुष को इन्द्रासन से गिरकर सर्प होना पड़ा। भरद्वाज ने आकाश-गंगा के जल के छींटे विष्णु की छाती में मारे थे, जिससे उनकी छाती में चिह्न बन गया। भृगु के शाप से अग्नि सर्वभक्षी हो गये। दक्ष के शाप से चन्द्रमा को क्षय हो गया। हिमालय ने रुद्र से अपनी कन्या पार्वती का विवाह करना स्वीकार कर लिया था। बाद में भृगु ने पार्वती को अपने लिए हिमालय से माँगा। हिमालय के इनकार करनेपर भृगु ने शाप देकर उसे रत्नहीन कर दिया। तपस्वी, वेदज्ञ, ब्रह्मज्ञाता ब्राह्मणों का प्रभाव बहुत अद्भुत होता है। दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करने के अनन्तर रुद्र का शूल बदरिकाश्रम में गिरा। नारायण के प्रभाव से वह शूल फिर रुद्र के पास लौट गया। यह देख रुद्र क्रोधित होकर नरनारायण को मारने के लिये आये। तब नारायण ने उनके गले को अपने हाथ से पकड़

कर दबाया। इसी से रुद्र का गला नीला पड़ गया। दोनों में भीषण युद्ध होने लगा। अन्त में लोक-क्षय के भय से ब्रह्मा तथा इन्द्र आदि ने आकर रुद्र से नर-नारायण की महिमा का वर्णनकर युद्ध बन्द कर देने की प्रार्थना की। युद्ध बन्दकर रुद्र नारायण की शरण में गये। नारायण ने कहा कि तुम्हारे शूल से मेरी छाती में जो चिह्न हो गया है वह श्रीवत्स के नाम से प्रसिद्ध होगा। देवगण के चले जाने पर नर-नारायण लोक-कल्याण के लिए तप करने लगे। हे अर्जुन! उन्हीं अनन्त शक्तिशाली रुद्र ने तुम्हारे रथ के आगे रहकर तुम्हें विजय दिलाई है।'

अध्याय ३४४-३५१

नारद बदरिकाश्रम में पितृकर्म, मधु-कैटभवध, व्यास की उत्पत्ति नारायण-महिमा

जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायनजी बोले—'श्वेत द्वीप से लौटकर नारदजी बदरिकाश्रम में आये और नर-नारायण को प्रसन्न कर, वहाँ रहकर तप और देव-पितर-आराधना करने लगे। एक बार नारायण के पूछने पर नारद ने बतलाया कि मैं ब्रह्मा का पुत्र हूँ, किन्तु शाप के कारण मुझे दक्ष का पुत्र होना पड़ा। पूर्वकाल में देवगण अग्निष्वात्ता आदि को वेद पढ़ाकर दानवों के साथ युद्ध

करने चले गये। अधिक समय तक युद्ध में लगे रहने के कारण देवगण को वेद भूल गये। तब उन्होंने युद्ध से लौटने पर अग्निष्वाता को अपना पितर मानकर उनसे फिर वेद पढ़े। पिता, माता और पितामह के रूप में मनुष्य सर्वव्यापी परमात्मा की ही आराधना करता है। नारायण ने बतलाया कि सबसे आदि कारण परमपुरुष ने वराह रूप रखकर देवों का उद्धार किया था और तीन पिण्ड बनाकर पितर-आराधना की पद्धति प्रचलित की। उसी मार्ग का अनुसरणकर मनुष्य कल्याण प्राप्त कर सकता है। कुछ समय बाद नारायण की आज्ञा पाकर नारदजी अपने आश्रम को चले गये।

'सृष्टि के आरंभ में अनिरुद्ध नामक हरि की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ। उसमें फिर ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। वे सृष्टि उत्पन्न करने के विचार से तप में लगे थे, इसी समय जलकी बूँदों से मधु-कैटभ नामक दानवों ने उत्पन्न होकर उन्हें मारना चाहा। तब नारायण ने दानवों को मारकर उनकी रक्षा की। भगवान समय-समय पर धर्म और वेदों की रक्षाकर जगत का कल्याण करते हैं। सात्विकी, राजसी और तामसी वृत्ति के अनुसार ही मनुष्य विभिन्न धर्मों का आश्रय ग्रहण करता है। सांख्य, योग, पञ्चरात्र, आरण्यक, वेद आदि सभी का मूल आधार और अन्तिम

लक्ष्य एक ही है, किन्तु वृत्ति के अनुसार विभिन्न मनुष्य विभिन्न मार्ग पसंद करते हैं। सृष्टि के आदि में नारायण ने अपने प्रभाव से अपान्तरत्तमा नामक महर्षि को उत्पन्नकर उनसे कहा कि तुम वेदों का विभाजन करो। अपान्तरतमा ने जगत के कल्याण के लिए वेदों का यथाक्रम विभाजन किया। तब नारायण ने उनके संयम, तप, सत्य तथा अध्यवसाय से प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया कि तुम हर मन्वन्तर में प्रकट होकर वेदों का विभाजन किया करो। तुम्हें भूत, भविष्य, वर्तमान, सभी का पूर्ण ज्ञान रहेगा। वे ही अपान्तरतमा नामक महर्षि सत्यवती और पराशर के संयोग से कृष्णद्वयपायन व्यास के रूप में प्रकट हुए।

'एक बार ब्रह्माजी ने रुद्रदेव को बतलाया था कि नारायण ही सब को उत्पन्न, सबका पालन और नाश करते हैं। वे ही सब में व्याप्त हैं, उन्हीं की शक्ति से संसार के सब व्यापार चलते हैं।'

अध्याय २५३-२६६

धर्म निष्फल नहीं, उञ्छवृत्ति सर्वश्रेष्ठ, धर्मारण्य-पद्मनाभ कथा

युधिष्ठिर के श्रेष्ठ धर्म के संबंध में पूछने पर भीष्म जी बोले—'धर्म कभी निष्फल नहीं होता। सब आश्रमों

में स्वर्ग और मोक्ष देने वाले धर्मों का विधान है। जिसमें जिसकी रुचि होती है उसी धर्म को मनुष्य स्वीकार करता है और उसी की वह सबसे अधिक प्रशंसा करता है। पूर्व समय में इंद्र के पूछने पर नारदजी ने धर्मारण्य का उपाख्यान सुनाया था। भागीरथी के तट पर महापद्म नगरी में धर्मारण्य नामक एक सत्यवादी, सच्चरित्र, वेदज्ञ ब्राह्मण रहते थे। पुत्रों के योग्य हो जाने पर वे अपना कर्तव्य सोचने लगे। इसी बीच में एक अतिथि ने आकर उन्हें बतलाया कि गोमती के किनारे नैमिषारण्य में पद्मनाभ नामक तत्वज्ञानी नाग रहता है, उससे श्रेष्ठ धर्म प्राप्त हो सकता है। धर्मारण्य सब से विदा होकर नागपुर गये। वहाँ पद्मनाभ की स्त्री ने उनका आदर-सत्कार किया और आने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने कहा कि मैं पद्मनाभ से मिलने आया हूँ। स्त्री ने कहा कि वे प्रतिवर्ष एक महीने के लिए सूर्य-देव का रथ हाँकने के लिए जाते हैं, उनके लौटने में अभी पंद्रह दिन बाकी हैं। ब्राह्मण व्रत करता हुआ गोमती के तीर बाट जोहता रहा। नाग के कुटुम्बियों ने बहुत अनुरोध किया, किन्तु धर्मारण्य ने भोजन न किया। अन्त में यथासमय पद्मनाभ ब्राह्मण के पास आये। औपचरिक बातों के अनन्तर धर्मारण्य ने पूछा कि आपने सूर्यदेव में कौन-सी विशेष बात देखी। पद्मनाभ ने तेज, प्रताप, संसार के

के पालन आदि की बातें बतलाकर कहा—'एक दिन हमें दिव्य प्रकाश से युक्त एक दूसरे सूर्य देख पड़े। वे आकर सूर्यनारायण में विलीन हो गये। हमारे पूछने पर सूर्यदेव ने बतलाया कि वे उञ्छवृत्तधारी एक इंद्रियजित, परम संतोषी, विषय-तृष्णा-रहित, समदर्शी तपस्वी थे और अपनी उञ्छवृत्ति के कारण सूर्यनारायण में लीन हुए थे। इस बात के सुनते ही धर्मारण्य नाग को नमस्कार कर वहाँ से चलने लगे। पद्मनाभ नाग ने आश्चर्यचकित हो उनसे आने और इस प्रकार बिना कुछ कार्य हुए ही चले जाने का कारण पूछा। धर्मारण्य ने कहा कि मैं श्रेष्ठ धर्म को जानने के लिए आपके पास आया था। आपकी बात से मुझे विश्वास हो गया कि उञ्छवृत्ति ही इस समय मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म है। क्रमसे ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों को विधिवत् पालन करने के अनन्तर अब मुझे पूर्ण संतोष धारणकर उञ्छवृत्ति ग्रहण करनी चाहिए। मुझे आपसे श्रेष्ठ धर्म का मर्म प्राप्त हो गया। नाग से विदा होकर धर्मारण्य महर्षि च्यवन के पास गये और उनसे उञ्छवृत्ति की दीक्षा लेकर वे परमार्थ पालन में लग गये।'

शान्तिपर्व समाप्त

———

महाभारत

अनुशासन पर्व

(आनुशासनिक पर्व)

अध्याय १

मृत्यु, काल आदि कर्मके अधीन, गौतमी-सर्प उपाख्यान

युधिष्ठिर के यह कहने पर कि मेरे ही कारण आपकी यह दशा हुई और करोड़ों वीरों का संहार हुआ। भीष्म बोले—'धर्मराज! तुम ईश्वर के अधीन आत्मा को पाप-पुण्य का कारण क्यों समझते हो? इस सम्बन्ध में एक उपाख्यान है। गौतमी नाम की एक शान्त ब्राह्मणी थी। उसका एकलौता बेटा साँप के काटने से मर गया। एक बहेलिया उस साँप को पकड़कर गौतमी के पास लाया और उसे मारने के लिये कहने लगा। गौतमी ने कहा 'इसके मारने पर भी मेरा बेटा जीवित नहीं हो सकता, और न इसके छोड़ देने से मेरी कोई हानि ही है। व्याध ने कहा—'अप्रिय घटना के लिए शोक करना और शत्रु से बदला लेना प्राणि-मात्र का काम है। इंद्र ने वृत्तासुर को मारकर इंद्रासन पाया था और रुद्र ने दक्ष के यज्ञ को भंग करके यज्ञ में भाग पाया था। फिर यह दूसरों को काटकर

दुःख देगा, इस कारण इसे मार डालना ही धर्म है; क्योंकि इसके मारे जाने से अनेक प्राणियों की रक्षा होगी।' तब साँप ने मृत्यु को और मृत्यु ने काल को मूल कारण बतलाकर अपने को निमित्तमात्र ठहराया। इसी समय काल ने प्रकट होकर कहा—'मैं तो निमित्त मात्र हूँ, असल में सभी बातों का कारण एक मात्र कर्म है। कर्म ही मनुष्य को उबारता और डुबाता है। इस बालक के पूर्व कर्मों ने ही हमसे यह काम करा लिया है। जैसे मनुष्य कर्मों के अधीन रहता है वैसे ही कर्म भी कर्ता के अधीन रहते हैं। जो जैसा कर्म करता है उसको उसी के अनुसार फल भोगने पड़ते हैं।' हे युधिष्ठिर! अपने कर्मों के कारण ही इस युद्ध में सब मारे गये हैं। तुम्हारा कोई दोष नहीं है।'

अध्याय २

गृहस्थ कैसे मृत्यु को जीते? अतिथिसत्कार और ओघवती

भीष्म बोले—इक्ष्वाकु के वंश में राजा दुर्योधन बड़े पराक्रमी हुए। देव-नदी नर्मदा ने उन्हें अपना पति बनाया। उनके सुदर्शना नाम की एक अद्भुत सुन्दरी कन्या हुई। अग्निदेव ने उस पर मुग्ध होकर ब्राह्मण के वेश में राजा के पास जाकर उसे अपने लिए माँगा। राजा ने उन्हें दरिद्र ब्राह्मण जानकर कन्या देने से इनकार कर दिया। किन्तु

अन्त में विवश होकर राजा को उनकी बात माननी पड़ी। अग्निदेव ने सुदर्शना से सुदर्शन नामक एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया। राजा नृग के पितामह राजा ओघवान ने अपनी परम सुन्दरी कन्या ओघवती का विवाह सुदर्शन से कर दिया। ओघवती के साथ सुदर्शन कुरुक्षेत्र में गृहस्थ बन कर रहने लगे। कुछ समय बाद सुदर्शन ने प्रतिज्ञा की कि मैं गृहस्थाश्रम धर्म का पूरी तरह से पालनकर मृत्यु को जीत लूँगा। अतिथि-सत्कार को उन्होंने सबसे बड़ा धर्म समझकर अपनी स्त्री को आज्ञा दी कि यदि अतिथि तुम्हारा शरीर भी माँगे तो उसमें भी तुम आना-कानी न करना। कुछ समय बाद फल, मूल, लकड़ी आदि लाने के लिए सुदर्शन वन में गये। इसी समय एक ब्राह्मण उनकी कुटी पर आया। ओघवती ने उसका उचित सत्कार किया। ब्राह्मण ने उससे समागम करना चाहा। ओघवती ने अन्य अनेक प्रकार से उसे सन्तुष्ट करना चाहा, किन्तु वह न माना। विवश होकर ओघवती आत्म-समर्पण के लिए तैयार हुई। इसी समय सुदर्शन वन से लौटे। कुटी का द्वार बन्द देख वे अपनी स्त्री को पुकारने लगे। ब्राह्मण ने अन्दर से उत्तर दिया कि मैं अतिथि हूँ, तुम्हारी पत्नी अंग-दान देकर मुझे सन्तुष्ट कर रही है। अतिथि की बातें सुनकर भी सुदर्शन के मन में क्रोध, ईर्ष्या, क्षोभ आदि कुछ न हुआ। यह

देख ब्राह्मण ने दिव्य रूप धारणकर कहा—'मैं धर्म हूँ। अतिथि-सत्कार, गृहस्थाश्रम धर्म और प्रतिज्ञा का पालन, इन सबके द्वारा तुमने अपनी मृत्यु को जीत लिया। तुम्हारी आज्ञाकारिणी सती पत्नी पर कोई बुरी दृष्टि तक नहीं डाल सकता। मैं परीक्षा लेने आया था। तुम दोनों सदेह स्वर्ग जाओगे।' उसी समय इन्द्र उन दोनों को सदेह स्वर्ग ले गये।

अध्याय ३-४

विश्वामित्र क्यों क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए ?

युधिष्ठिर ने पूछा—'विश्वामित्रजी क्षत्रिय से ब्राह्मण कैसे होगये ? शूद्र के कारण ब्राह्मणी माता में उत्पन्न होने पर मतंगजी लाख प्रयत्न करने पर भी ब्राह्मण न होसके।'

भीष्म बोले—'भरतवंशी राजा अजमीढ़ के वंश में राजा गाधि हुए। उनकी कन्या सत्यवती से च्यवन के पुत्र ऋचीक ने विवाह करना चाहा। राजा ने उन्हें धन-हीन समझकर पहले तो अपनी कन्या देने से इनकार कर दिया, किन्तु फिर कन्या के बदले एक हजार श्याम-कर्ण घोड़े माँगे। ऋषि ने वरुणदेव से माँगकर हजार श्यामकर्ण घोड़े राजा को दे दिये। राजा ने अपनी कन्या का विवाह ऋचीक से कर दिया। ऋचीक ने सत्यवती

की सेवा से प्रसन्न होकर उसे एक परम सात्विक पुत्र देना चाहा। सत्यवती ने अपनी माता के लिए भी एक पुत्र माँगा। ऋचीक ने दो चरु तैयार किये, एक अपनी पत्नी के लिए और दूसरा उसकी माता के लिए। ऋषि के चले जाने पर सत्यवती की माता ने यह समझकर कि ऋषि ने अपने लिए श्रेष्ठ पुत्र का विधान किया होगा, अपनी कन्या का चरु स्वयं खा लिया और अपना चरु उसे खिला दिया। उस सात्विक चरु के कारण महाराज गाधि की रानी के परम धार्मिक विश्वामित्र जी हुए, जो अपने तपोबल से उसी जन्म में ब्राह्मण हो गये। विश्वामित्र के पुत्रों से भी ब्राह्मण ही उत्पन्न हुए।

अध्याय ५-११

नृशंसता-धर्म, वृक्ष और तोता, उद्योग की महिमा, लक्ष्मी किसके पास रहती हैं

भीष्म बोले—'अनृशंसता के सम्बन्ध में इन्द्र और तोते का आख्यान है। प्राचीन समय में एक वृक्ष पर एक तोता रहता था। एक बहेलिए के विष से बुझे हुए बाण के लगने के कारण वह पेड़ सूख गया। तब उसपर रहनेवाले पक्षी आदि अन्य हरे भरे वृक्षों पर चले गये। किन्तु एक तोता वृक्ष के पुराने उपकारों का विचारकर

उसी वृक्ष के साथ प्राण देने के लिए तैयार हो गया। यह देख ब्राह्मण का वेश बनाकर इन्द्र उसके पास गये और अनेक प्रकार से उसे समझा कर दूसरे वृक्ष पर जाने के लिये कहने लगे। तोते ने कहा कि अपने अनृ-शंसता-धर्म के कारण मैं जानता हूँ कि आप इन्द्र हैं। किन्तु मैं अपने उपकार करनेवाले को इस संकट के समय छोड़ नहीं सकता। अनृशंसता-धर्म पर तोते को दृढ़ देख कर इंद्र ने उसके कहने से वृक्ष को फिर हरा-भरा कर दिया। तोता अनृशंसता धर्म के कारण स्वर्ग को गया।

'प्राचीन समय में वशिष्ठजी के पूछने पर ब्रह्माजी ने कहा था कि उद्योग से बढ़कर और कुछ नहीं है। उद्योग रूपी खेत में ही भाग्य रूपी बीज पनप सकता है। उद्योगी मनुष्य का सभी जगह सम्मान होता है और धन, ऐश्वर्य, सिद्धि, स्वर्ग, मोक्ष आदि सभी उसे प्राप्त हो जाते हैं। उद्योग-हीन मनुष्य सदा अप्रतिष्ठा और दुःख पाते हैं। कृपण, आलसी, निरुद्योगी, निरर्थक काम करनेवाला, पराक्रम-हीन और तप न करनेवाला मनुष्य धन, विद्या, ऐश्वर्य, मान तथा सुख-संतोष नहीं प्राप्तकर सकता। उद्योग न करने से कोई काम नहीं हो सकता। उद्योग करने पर भाग्य भी साथ देता है। भाग्य के भरोसे बैठे रहना उचित नहीं। उद्योग से मनुष्य अपने भाग्य को पलट

सकता है। विष्णु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र, वायु, इन्द्र आदि सभी ने उद्योग और तप के द्वारा ही अनन्त शक्ति और अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। तप और उद्योग के द्वारा ही महर्षि दिव्य शक्तियाँ प्राप्तकर सकते हैं। कर्म के द्वारा ही मनुष्य को अच्छी या बुरी गति मिलती है। जैसे फूल और फल समय आने पर आप-ही-आप फूलते और फलते हैं उसी तरह पूर्व कृत कर्म उचित समय पर कर्ता को प्राप्त होते हैं। विद्वान, विनीत, जितेन्द्रिय, सच्चरित्र, ब्रह्मज्ञ तथा मृदु-भाषी ब्राह्मण सदा लोक कल्याण में लगा रहता है। उसका सदा आदर और हित करना चाहिए। प्राचीन समय में एक गीदड़ और एक बानर ने एक दूसरे से बतलाया था कि पूर्वजन्म में ब्राह्मण के साथ की गई प्रतिज्ञाओं को पूरा न करने के कारण ही उन्हें अधम योनि में जन्म लेना पड़ा था।'

'नीच मनुष्य को उपदेश देने में तपस्या नष्ट हो जाती है। प्राचीन समय में एक तपस्वी महर्षि के पास जाकर एक शूद्र ने संन्यास धर्म की दीक्षा लेनी चाही। महर्षि ने यह कहकर उसे दीक्षा देने से इनकार कर दिया कि संन्यास धर्म में शूद्र का अधिकार नहीं है। ऋषि की आज्ञा लेकर वह शूद्र उसी वन में कुटी बनाकर नियमपूर्वक तप और महर्षियों की सेवा करने लगा। कुछ समय

बाद उसकी तपस्या और सेवा से प्रसन्न होकर महर्षि ने उसे अपना मित्र मान लिया और वे नित्य उसकी कुटी पर जाने लगे। एक दिन उसके कहने से महर्षि ने उसे विधिपूर्वक श्राद्ध कराया। कुछ समय बाद ऋषि और शूद्र दोनों की मृत्यु हो गई। शूद्र ने राजा के घर में जन्म लिया और महर्षि ने एक ब्राह्मण के। यथासमय उसे राज्य-गद्दी मिली। उसने उस ब्राह्मण पुत्र को अपना पुरोहित बनाया। पुरोहित के प्रत्येक काम पर राजा हँस देता। कुछ समय बाद पुरोहित ने नम्रतापूर्वक राजा से हँसने का कारण पूछा। राजा ने कहा कि मैं 'जाति स्मर' हूँ, मुझे पूर्वजन्म की सब बातें याद हैं। यह कह, उसने पुरोहित को पूर्वजन्म की सब बातें बतला दीं। पुरोहित को तपो-भ्रष्ट होने का बड़ा दुःख हुआ। सब कुछ छोड़कर उन्होंने फिर तप किया और उसके द्वारा अलौकिक सिद्धि प्राप्त की।'

'एक बार कामदेव की माता रुक्मिणी के पूछने पर नारायण की गोद में शोभापानेवाली लक्ष्मीजी ने बतलाया था कि मैं उद्योगी, कार्य-कुशल, क्रोध-हीन, जिते-न्द्रिय, उदार, चतुर, सदाचारी, धर्मयज्ञ, बुद्धिमान, परोप-कारी, विचारवान, उत्साही, तथा प्रयत्नशील मनुष्यों के पास रहती हूँ। अकर्मण्य, उद्योगहीन, आलसी, कृतघ्न, आचार-भ्रष्ट, नृशंस, उद्धत, कपटी, क्रोधी, बल-बुद्धिहीन, क्रोधी,

थोड़े में सन्तुष्ट होनेवाले, कलह-प्रिय, कर्म-हीन मनुष्य के पास नहीं रह सकती। लज्जाहीन, व्यभिचारिणी, अपवित्र, दयाहीन, पति की निन्दा करनेवाली, घर की वस्तुओं को उचित रूप से न रखनेवाली, कलह-प्रिय, फूहड़ स्त्रियों में मैं कदापि नहीं रह सकती। नारायण ही सब गुणों और धर्मों के आधार हैं इस कारण मैं उन्हीं में एकान्त भाव से निवास करती हूँ।

अध्याय १२-१३

स्त्री को सहवास में अधिक सुख, कल्याण का उपाय

युधिष्ठिर ने पूछा—'सहवास में स्त्री पुरुष में से किसको अधिक सुख मिलता है?' भीष्म जी बोले—'प्राचीन समय में भंगास्वन नाम के एक बड़े प्रतापी राजा थे। उन्होंने यज्ञ करके सौ प्रतापी पुत्र प्राप्त किये। इस कारण इन्द्र उनसे रुष्ट हो गये। एक बार राजा वन में शिकार खेलने गये। इन्द्र ने अपनी माया से उन्हें स्त्री बना दिया। भंगास्वन में मृदुता, दुर्बलता और भीरुता आदि स्त्रियों के प्रधान गुण आ गये। यह देख उन्हें बड़ा दुःख हुआ। राजधानी में जाकर उन्होंने प्रजा, पुरोहित और पुत्रों को सारा हाल बतलाया। फिर पुत्रों को राज देकर वन में जा उन्होंने घोर तप करना प्रारम्भ किया।

उसी वन में एक तपस्वी रहते थे। उनके संयोग से स्त्री (भंगास्वन) के सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उन्होंने इन सौ पुत्रों को ले जाकर अपने पहले के पुत्रों से मिलाया। सब पुत्रों ने प्रेम से मिलकर राज्य करना आरम्भ किया। यह देख इन्द्र को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने पुत्रों में कलह उत्पन्न कर दी। सब लड़के आपस में लड़कर मर गये। भंगास्वन शोक से विह्वल हो गये। तब इन्द्र उनके पास गये और सब हाल बतलाकर कहा कि तुमने मेरा अनादर किया था उसी का यह फल है। भंगास्वन ने अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगी और रो-धोकर इन्द्र को प्रसन्न कर लिया। इन्द्र ने कहा कि मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। अब तुम जिन सौ पुत्रों को कहो मैं उन्हें जीवित कर दूँ। भंगास्वन ने कहा कि स्त्री के रूप में मेरे गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न हुए हैं, उन्हें आप जीवित कर दें; क्योंकि वे मुझे अधिक प्रिय हैं। इन्द्र ने प्रसन्न होकर सब पुत्रों को जीवित कर दिया और कहा कि यदि तुम पुरुष होना चाहो तो मैं तुम्हें फिर पुरुष बना दूँ। भंगास्वन ने कहा कि अब स्त्री ही रहने की मेरी इच्छा है; क्योंकि सहवास में स्त्री को ही अधिक सुख प्राप्त होता है।

'मन-वचन-कर्म से दूसरों का अहित न करना ही सब से श्रेष्ठ है। जो दूसरों का अहित नहीं करता, उसका

सब प्रकार से सब स्थानों और समयों में कल्याण होता है।'

अध्याय १४-१८

महादेवजी का माहात्म्य, उपमन्यु, श्रीकृष्ण आदि का तप द्वारा शिवजी को प्रसन्न कर वर पाना

युधिष्ठिर ने भूतभावन, देवदेव महादेव का माहात्म्य पूछा। भीष्म जी बोले—'शिवजी के माहात्म्य का वर्णन पूरी तरह से कोई भी नहीं कर सकता। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि सभी देवता शिवजी से ही उत्पन्न हुए हैं और उन्हीं की शक्ति से अपना-अपना कार्य सँभाले हुए हैं। शिवजी सर्वत्र व्याप्त हैं। उन्हीं से यह सारा विश्व उत्पन्न होता है और उन्हीं में लीन हो जाता है। शंख-चक्र-गदाधर वासुदेव ही दिव्य दृष्टि द्वारा शिवजी के दिव्य स्वरूप के दर्शन कर सकते हैं। श्रीकृष्णजी ही हमें शिवजी की महिमा सुना सकते हैं।'

श्रीकृष्णजी बोले—'शिवजी का आदि-अन्त कोई नहीं जानता। रुक्मिणी से उत्पन्न मेरे पुत्र प्रद्युम्न जब शम्बर दैत्य को मारकर आये, तब उन्हें देखकर जाम्बवती के मन में भी पुत्र की कामना जागी। तब सब से विदा होकर तप करने के विचार से मैं हिमालय पर्वत पर परमतपस्वी उपमन्यु के आश्रम में गया। वहाँ तप

के प्रभाव से गाय, सिंह, बिल्ली-चूहे, साँप-नेवले आदि अपने स्वाभाविक वैर को भूलकर प्रेम-पूर्वक एक साथ रहते थे। उपमन्यु ने मेरा स्वागतकर कहा—'इस आश्रम में शिवजी पार्वती-सहित सदा निवास करते हैं। शिवजी की कृपा से हिरण्यकशिपु ने स्वर्ग का, कुशद्वीपवासी विद्युत्प्रभा ने तीनों लोकों का राज्य प्राप्त किया था। शत मुख असुरने शिवजी को प्रसन्नकर सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति और वेद-विद्या प्राप्त की थी। ब्रह्माजी ने तप कर शिवजी से एक हज़ार यज्ञशील पुत्र प्राप्त किये थे। शिव जी की कृपा से ही बालखिल्य ऋषियों ने इंद्र को परास्त करनेवाले गरुड़जी को उत्पन्न कराने में योग दिया था। शिवजी ने पहले कोप कर जल को नष्ट कर दिया था। और फिर देवगण के प्रार्थना करने पर जल की उत्पत्ति की थी। अत्रि की पत्नी अनुसूया ने अपने पति से पृथक होकर शिवजी की कृपा से दिव्य चरु प्राप्त कर परम तेजस्वी बालक उत्पन्न किया था। शिवजी की प्रसन्नता से ही शाकल्य और सावर्णि प्रसिद्ध ग्रंथकर्ता एवं नारद तेजस्वी-यशस्वी हो सके हैं। मैंने भी शिवजी की कृपा से अक्षय यौवन और दिव्य सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। लड़कपन में दूसरों को दूध-भात खाते देख मैंने अपनी माता से दूध माँगा। दरिद्रता के कारण माता ने दूध न मिलने

पर पानी में आटा घोलकर दिया। जब मैंने कह दिया कि यह दूध नहीं है, तब माता ने दुखी हो मुझे शिवजी की आराधनाकर ऐश्वर्य प्राप्त करने को कहा। मैंने एकाग्र-मन से शिवजी की आराधना और कठोर तपस्या की। अन्त में शिवजी मेरी परीक्षा लेने के लिए इंद्र का रूप धारणकर ऐरावत पर सवार होकर वरदान देने के लिए आये। उनके बहुत समझाने पर भी मैं अपनी इस प्रतिज्ञा पर अड़ा रहा कि मैं शिवजी को छोड़कर और किसी दूसरे देवता से वर आदि कुछ भी न लूँगा। अन्त में मुझे दृढ़ देख शिवजी प्रकट हो गये। मैंने भक्ति-भाव से उनकी पूजा-स्तुति की। शिवजी ने मुझे त्रिकालज्ञ, सर्वगुण-संपन्न होने और अक्षय यौवन प्राप्त करने का वर दिया। वे सदा मेरे इस आश्रम में निवास करते हैं।'

'उपमन्यु जी ने मुझे बतलाया कि शिवा-पर्वती से मुझे वर प्राप्त होंगे। यथासमय उपमन्युजी ने मेरा सर मूँड़कर मुझे शास्त्रोक्त विधि से दीक्षा दी। मैं नियम-पूर्वक कठोर तप करने लगा। अन्त में पार्वतीजी-सहित शिव जी प्रकट हुए। ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र आदि उनकी स्तुति कर रहे थे। मैंने भक्ति-भाव से शिवजी की पूजा और स्तुति की। शिव-पार्वती ने प्रसन्न होकर मन-चाहे वर दिये। मैं शिवजी से विदा होकर उपमन्युजी के पास लौट

आया। उपमन्युजी ने मुझे शिवजी की महिमा सुनाकर कहा कि महात्मा तण्डि ने शिवजी की स्तुति, आराधना कर उनसे परमज्ञानी, कल्प-सूत्रकार पुत्र उत्पन्न किया। इसके अनन्तर उपमन्यु ने मुझे शिवजी के एक हज़ार आठ नाम सुनाये। महात्मा तण्डि ने इन नामों के पाठ के द्वारा ही शिवजी को प्रसन्न किया था। उपमन्यु से विदा होकर मैं द्वारका आया और वहाँ शिवजी की कृपा से मेरे अंश से जाम्बवती के साम्ब ऐसा अद्वितीय पुत्र उत्पन्न हुआ। शिवजी की महिमा अपार है।'

श्रीकृष्णजी की बातें सुनकर व्यासजी ने कहा—'शिवजी की स्तुति और तप करने से ही मुझे शुकदेव ऐसा पुत्र प्राप्त हुआ।' कपिलदेवजी बोले—'मेरे अनेक जन्म के शुभ-कृत्यों से प्रसन्न होकर शिवजी ने मुझे दिव्य ज्ञान दिया है।' वाल्मीकिजी बोले—'शिवजी की आराधना से ही मेरी ब्रह्महत्या छूट गई और मैं दिव्य सिद्धियाँ प्राप्तकर सका।' परशुरामजी बोले—'शिवजी की कृपा से ही मैं इतना प्रबल हो सका था।' विश्वामित्रजी ने कहा—'शिवजी की कृपा से ही मुझे ब्राह्मणत्व प्राप्त हुआ है।' इन्द्र के मित्र, बृहस्पति के समान विद्वान गृत्समद ने कहा—'वशिष्ठ के शाप से मैं हिंसक पशु हो गया था। शिवजी की कृपा से ही मैं अक्षय पुण्य का भागी एवं इंद्र का मित्र और

अद्वितीय विद्वान तथा अजर, अमर हो सका हूँ।' जैगीषव्य ने कहा—'शिवजी की दया से ही मुझे दिव्य सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं।' गर्ग ने कहा—'महादेवजी के आशीर्वाद से ही मैं चौसठ कलाएँ, हजार ब्रह्मज्ञपुत्र और दीर्घायु पा सका हूँ।' पराशर ने कहा—'शंकरजी के आशीर्वाद से ही मुझे वेदव्यास ऐसे पुत्र प्राप्त हुए।' माण्डव ने कहा—'उन्हीं देवदेव की महिमा से मैं शूली पर से जीवित उतर कर दिव्य शक्तियाँ प्राप्तकर सका हूँ।' गालव ने कहा—'जब मैं विश्वामित्रजी से वेद-शास्त्र प्राप्तकर घर लौटा तो मेरी माता ने रो-रोकर पिता की मृत्यु के समाचार सुनाये। मैंने शिवजी को प्रसन्न कर अपने पिता को फिर से जीवित कर लिया।' श्रीकृष्णजी तथा अन्यान्य महर्षियों के मुख से देवदेव शंकर की महिमा सुनकर युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए।

अध्याय १९-२१

स्त्रियों का स्वभाव, अष्टावक्र-बुढ़िया-रूपी उत्तर दिशा

युधिष्ठिर बोले—'विवाह के समय वेद के अनुसार यह प्रतिज्ञा कराई जाती है कि 'आपस में मिलकर धर्माचरण करेंगे।' यह धर्माचरण क्या है? यज्ञ का अनुष्ठान, या सन्तानोत्पत्ति, या इंद्रिय-सुख-साधन?' भीष्म बोले—

'इस सम्बन्ध में एक आख्यान है। महर्षि अष्टावक्र महर्षि वदान्य की कन्या सुप्रभा पर मुग्ध होकर उससे विवाह करने का प्रयत्न करने लगे। वदान्य ने कहा कि तुम उत्तर दिशा में हिमालय, कैलाश के आगे नील-वन में जाकर एक वृद्धा-तपस्विनी से मिल आओ तब मैं तुम्हें अपनी कन्या दूँगा। अष्टावक्र उत्तर दिशा की ओर गये। रास्ते में कुवेर ने उन्हें आदर से अपने यहाँ रक्खा। अप्सराओं का नाच देखते हुए वे एक वर्ष तक अलकापुरी में विलमे रहे। फिर कुवेर से विदा हो वे आगे बढ़े। अनेकानेक वनों, पर्वतों को पार करने के बाद उन्हें एक दिव्यपुरी देख पड़ी। उसके फाटक पर अत्यन्त सुन्दरी सात कन्याओं ने उनका स्वागत किया। पहले तो उनका मन विचलित हो गया, किन्तु फिर उन्होंने अपने मन को वश में कर लिया। पुरी के अन्दर एक दिव्य मणिमय महल में एक बुढ़िया ने उनका आदर-सत्कार किया। रात को बुढ़िया ऋषि के पलंग पर आगई और उनसे लिपटकर कहने लगी—'मैं आप पर आसक्त हूँ, आप मेरी इच्छा पूरी कीजिये और स्वर्ग से भी बढ़कर सुखों को यहाँ रहकर भोगिये। यह सब ऐश्वर्य, धन, रत्न आपके ही हैं।' ऋषि ने कहा कि मैं स्त्री-सुख का स्वाद नहीं जानता। मैं दूसरे की स्त्री से दूर ही रहना चाहता हूँ। व्यभिचार से बढ़कर दूसरा

पाप नहीं है। बुढ़िया ने कहा कि आप यहाँ कुछ रोज़ रहें, आपको स्त्री-सुख का अनुभव हो जायगा। दूसरे दिन सन्ध्या समय बुढ़िया ने सुगन्धित तेल की मालिश की और फिर वह गुन-गुने पानी से उनको स्नान कराने लगी। ऋषि को इतना आनन्द आया कि स्नान करते-करते सारी रात बीत गई और उनको पता न चला। सूर्योदय होने पर आश्चर्य-चकित हो उन्होंने देवाराधना की। स्त्री ने उन्हें भोजन कराना प्रारम्भ किया। स्वादिष्ट भोजनों के स्वाद और स्त्री के प्रेम-भाव ने उन्हें ऐसा मुग्ध कर लिया कि वे बराबर दिनभर भोजन ही करते रह गये। सन्ध्या होने पर उन्हें पता चला कि सारा दिन भोजन करने में ही बीत गया है। आधी रात को बुढ़िया ने ऋषि से समागम करना चाहा। ऋषि ने कहा कि मैं पराई स्त्री से मिलकर पाप का भागी नहीं बनना चाहता। स्त्री ने कहा कि मैं स्वाधीन हूँ। ऋषि ने कहा कि स्त्री कभी स्वतंत्र नहीं हो सकतीं। लड़कपन में उसे पिता के, जवानी में पति के और बुढ़ापे में पुत्र के अधीन रहना पड़ता है। तुम स्वतंत्र कैसे हो सकती हो ? स्त्री ने तुरंत सोलह वर्ष की अद्वितीय सुन्दरी कन्या का रूप धारण कर कहा—'मैं अविवाहिता कन्या हूँ और पिता-भ्राता आदि के न होने से मैं पूर्ण स्वतंत्र हूँ। आप मेरे साथ विवाह कर लें। मैं आपके

ऊपर मुग्ध हूँ। पुरुष का स्पर्श करते ही स्त्री का धैर्य छूट जाता है। कामदेव के कारण मैं मरी जा रही हूँ। स्त्रियाँ स्वभाव से ही कामातुर होती हैं। उनको पुरुष का संसर्ग सबसे अधिक प्रिय लगता है। जब उनमें काम का वेग उत्पन्न होता है तब वे पिता, माता, भाई, पति, पुत्र, देवर आदि किसी की भी परवा नहीं करतीं; वे अपनी इच्छा पूरी करके ही दम लेती हैं। काम के वेग के कारण वे व्यभिचारिणी हो जाती हैं। हज़ारों में कहीं एक स्त्री पतिव्रता और लाखों में कहीं कोई एक स्त्री सती निकलती है। आप मेरा अनुरोध मानकर मेरे साथ इस स्थान पर स्वर्ग से भी बढ़कर सुख-ऐश्वर्य का भोग कीजिये।' पहले तो अष्टावक्र का मन चलायमान हो गया। वे उसके ऊपर मुग्ध हो गये। किन्तु अन्त में योग-बल से उन्होंने अपने मन को वश में कर लिया। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब वे न डिगे, तब स्त्री ने कहा कि महर्षि वदान्य ने आपकी परीक्षा लेने और स्त्री-स्वभाव से परिचित कराने के लिए ही आपको यहाँ भेजा था। मैं उत्तर दिशा हूँ। मैंने यह सब बातें आपको स्त्री-स्वभाव का ज्ञान देने के लिए ही की थीं। उसका आशीर्वाद लेकर अष्टावक्र वदान्यजी के पास लौट आये। तदनन्तर वदान्यजी ने अपनी कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया।

अध्याय २२-२६

दान देने योग्य ब्राह्मण, पुण्य और पाप, तीर्थों से और गंगा से पुण्य गंगा-महिमा

भीष्म बोले—'सत्य, एवं क्रोध का त्याग, अहिंसा, दया, इन्द्रिय-निग्रह, सरलता ये धर्म के मुख्य अंग हैं। जो ब्राह्मण इनका आचरण नहीं करते उन्हें दान देनेवाला मनुष्य नरक को जाता है और दस हज़ार वर्ष तक मरे हुए बैल का मांस और विष्ठा खाता एवम् चाण्डाल की योनि में जन्म पाता है। कश्यपजी का मत है कि जो ब्राह्मण सदाचारी नहीं होता, वह वेद, यज्ञ और कुलीनता के द्वारा भी अपना उद्धार नहीं कर सकता। क्रोधहीन, धर्मपरायण, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, लोभहीन, सहनशील, लोकहितैषी, विद्वान, कर्मनिष्ठ, पवित्र, सुशील, सदाचारी, वेद-धर्म का प्रचार करनेवाला ब्राह्मण ही दान और पूजा का पात्र होता है। श्राद्धकर्म के लिए शास्त्र में बतलाये गये गुण वाले ब्राह्मण को ही भोजन कराने से ही पुण्य होता है। दोषयुक्त, वर्जित ब्राह्मण को श्राद्ध में खिलाने से पाप का भागी होना पड़ता है। दीन, दुखी, भयग्रस्त, अशक्त, अनाथ आदि को भोजन-वस्त्र देने और उनकी रक्षा करने से अक्षय पुण्य प्राप्त होता है। धर्म और वेदों के बेचने, प्राणियों को व्यर्थ सताने, आश्रम-नगर-गाँव आदि में आग लगाने, अन्धे,लूले,लँगड़े, अपाहिज, अनाथ, तथा निर्बल का सर्वस्व

छीनने से घोर पाप लगता है।

'मनुष्य को दिन के पहले भाग में धन उपार्जन करना, मध्याह्न में धर्म-कर्म करना और उसके अनन्तर विषय-भोग में लगना चाहिए। धर्म-अर्थ-काम इन तीनों में से किसी एक में फँस जाना उचित नहीं है। महर्षि गौतम के पूछने पर अंगिरा जी ने कहा था कि विभिन्न तीर्थों में स्नान, व्रत, दान आदि से मनुष्य पापों से छुटकारा पा जाता है और अक्षय पुण्य प्राप्त करता है। महर्षि सिद्ध ने शिल-वृत्ति से कहा था कि गंगा-स्नान से सभी तरह के पाप छूट जाते हैं और मनुष्य को अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है।'

अध्याय २७-३७

ब्राह्मणत्व की दुर्लभता, मतंग का तप, वीतहव्य ब्राह्मण, श्रीकृष्ण-पृथ्वी संवाद, इन्द्र-शम्बर संवाद, सुपात्र-ब्राह्मण

भीष्म बोले—'प्राचीन समय में एक ब्राह्मणी ने एक शूद्र के वीर्य से मतंग नामक पुत्र उत्पन्न किया। उस ब्राह्मणी के पति ने मतंग को अपना पुत्र समझकर उसके सब संस्कार किये और उसे ब्राह्मण मानकर उसका पालन-पोषण किया। मतंग के बड़े होने पर एक बार ब्राह्मण ने उसे यज्ञ की सामग्री एकत्र करने की आज्ञा दी। मतंग एक गधे को गाड़ी में जोतकर सामग्री एकत्र करने के लिए जाने लगा।

गदहा सीधे रास्ते से न जाकर अपनी माता की ओर बढ़ा। मतंग ने क्रोध में भरकर उसे बुरी तरह से पीटा। यह देख गधे की माता ने मतंग से कहा कि तेरी माता ने कामातुर होकर नाई से तेरी उत्पत्ति की है, इस कारण तुझमें ब्राह्मण के सात्विक गुण न होकर चाण्डाल की क्रूरता भरी हुई है; तू ब्राह्मण नहीं चाण्डाल है। यह सुन-कर मतंग को बड़ा क्षोभ हुआ। उसने ब्राह्मण से जाकर सब हाल बतलाया और फिर ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिए घोर तप करना प्रारम्भ किया। उसकी उग्र तपस्या से तीनों लोक और देवगण घबरा उठे। सब के कहने से इन्द्र मतंग को वर देने के लिए आये। मतंग ने ब्राह्मणत्व चाहा। इन्द्र ने नाना प्रकार के भोगों, ऐश्वर्यों, सिद्धियों को देकर उसे संतुष्ट करना चाहा, किन्तु मतंग अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहा। इन्द्र यह कहकर चले गये कि ब्राह्मणत्व अत्यन्त दुर्लभ है, तुम उसे प्राप्त नहीं कर सकते। मतंग निराश नहीं हुआ। वह बराबर तप करता रहा। इन्द्र को विवश होकर कई बार आना पड़ा और हर बार मतंग ने उनसे ब्राह्मणत्व ही माँगा। अन्त में इन्द्र ने अनेक प्रकार से समझाकर मतंग को इस वरदान पर राज़ी कर लिया कि वह छन्दा देव के नाम से प्रसिद्ध होकर स्त्रियों में पूज्य हो और तीनों लोकों में उसकी ख्याति हो।

महात्मा मतंग ने शरीर त्यागकर अपनी तपस्या के कारण श्रेष्ठ गति प्राप्ति की; किन्तु उन्हें ब्राह्मणत्व न प्राप्त हो सका।

'मनु के पुत्र शर्याति और शर्याति के पुत्र हैहय हुए। हैहय ही वीतहव्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। वीतहव्य के सौ पराक्रमी पुत्र हुए। उन्होंने काशी के राजा हर्यश्व को युद्ध में मार डाला। हर्यश्व के पुत्र सुदेव सिंहासन पर बैठे, उन्हें भी वीतहव्य के पुत्रों ने हराकर मार डाला। उनके पुत्र दिवोदास काशी के सिंहासन पर बैठे। वीतहव्य के पुत्रों ने दिवोदास को भी युद्ध में परास्त कर दिया और उनकी सेना, धन-सम्पत्ति आदि को नष्ट कर डाला। अपने प्राणों की रक्षा के लिए दिवोदास भागकर महर्षि भरद्वाज की शरण में गये। भरद्वाज ने अभय-दान देकर उन्हें अपनी शरण में लिया। ऋषि की कृपा से दिवोदास के प्रतर्दन नामक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। यथासमय भरद्वाज के आशीर्वाद से प्रतर्दन ने अपने पिता के शत्रुओं को युद्ध में परास्त कर नष्ट कर डाला। अपने पुत्रों के मारे जाने और सेना के नष्ट होने पर महाराज प्रतर्दन भागकर महर्षि भृगु के आश्रम में जा छिपे। प्रतर्दन उनका पीछा करते हुए भृगुजी के आश्रम में गये और अपने शत्रु को ऋषि से मांगने लगे। भृगुजी ने कहा कि मेरे आश्रम में तो केवल ब्राह्मण हैं, क्षत्रिय कोई

नहीं है। यह देखकर कि भृगुजी के प्रभाव से राजा वीतहव्य क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये, तब प्रतर्दन अपने नगर को लौट गये। महर्षि भृगु की कृपा से वीतहव्य और उनके वंशवाले ब्राह्मण हो गये। महर्षि शौनक ब्रह्मर्षि वीतहव्य के ही वंश में हुए हैं।

'श्रीकृष्णजी के पूछने पर नारदजी ने कहा था कि सदाचारी, विद्वान, जितेन्द्रिय, त्यागी, तपस्वी, लोभ-क्रोधहीन ब्राह्मण देवताओं से भी बढ़कर हैं। देवताओं, ब्राह्मणों, वृद्धों, अतिथियों के सत्कार से सहज ही में सद्-गति प्राप्त होती है। काशीराज शिवि ने अपनी शरण में आये हुए कबूतर की रक्षा के लिए अपने शरीर का मांस देकर अक्षय प्राप्त की थी। तप-त्याग और सदाचार के द्वारा ब्राह्मणों ने इतनी शक्ति प्राप्त कर ली थी कि शक, यवन, काम्बोज, द्राविड़, कलिंग, पुलिन्द, उशीनर, कोलि-सुर्प माहिषक आदि क्षत्रियों को शूद्र बना दिया। ब्राह्मणों के तेज के सामने क्षत्रियों का तेज और बल दब जाता है। भृगुवंशियों ने तालजंग आदि क्षत्रियों को, अंगिरा के पुत्रों ने नीप क्षत्रियों को, भरद्वाज ने वीतहव्य के पुत्रों और ऐला क्षत्रियों को परास्त किया था। पृथ्वी ने श्रीकृष्णजी से बतलाया था कि वेदज्ञ, तपस्वी, सदाचारी ब्राह्मणों की कृपा और सहायता से ही विजय, ऐश्वर्य, सुख-शान्ति प्राप्त हो सकती

है। तपस्वी ब्राह्मण के शाप से ही चन्द्रमा कलंकयुक्त, समुद्र का जल खारा और इन्द्र सहस्र भगवाले हो गये थे। ब्रह्माजी ने ब्राह्मणों को उत्पन्न करके उनसे कहा था कि तुम लोग अपने कर्त्तव्य का पालन करके ब्राह्मी-श्री प्राप्त करो। अहिंसा, श्रद्धा, इन्द्रिय-निग्रह, ज्ञान, स्वाध्याय नियम, तपस्या तथा त्याग के द्वारा ही तुम सबसे श्रेष्ठ हो सकते हो और मनवांच्छित पदार्थ प्राप्तकर सकते हो। यदि तुम लोग सेवा-वृत्ति स्वीकार करोगे अथवा अपने कर्तव्य को छोड़ दोगे तो तुम अपने धर्म से भ्रष्ट और पतित हो जाओगे। दान लेने से ब्राह्मण का तेज नष्ट हो जाता है। एक बार इन्द्र ने कपट वेष बनाकर शम्बर दैत्य से पूछा कि आप किस प्रकार यह सब राज-ऐश्वर्य प्राप्त कर सके हैं। शम्बर ने कहा—'मैं सदा ज्ञानवान, तपस्वी तथा सदाचारी ब्राह्मणों की सेवा सावधानी के साथ करता हूँ और उन्हीं के उपदेशों के अनुसार चलता हूँ। मेरे पिता ने चन्द्रदेव से इस रहस्य को प्राप्त किया था और मैं अपने पिता के आदर्श पर चलकर इतनी सफलता प्राप्तकर सका हूँ।' इसी आदर्श का पालनकर इन्द्र ने भी तीनों लोकों का राज्य प्राप्त किया।

शास्त्रों का उल्लंघन करनेवाला, कुतर्की, बकवादी, परनिन्दक, ईर्ष्यालु, परद्रोही, अव्यवस्थित चित्त, कटुभाषी,

दुर्गुणी, सदाचार-हीन, मूर्ख, लोभी, तप-त्यागरहित तथा अज्ञानी ब्राह्मण कुत्ते के समान माना गया है। ऐसे ब्राह्मण को दान देने से अथवा उसका सम्मान करने से पाप का भागी होना पड़ता है। सदाचारी, त्यागी, सत्यवादी, तपस्वी, वेदपाठी, विद्वान, क्रोध-लोभ-हीन, परोपकार-रत, दयालु, क्षमाशील ब्राह्मण ही सम्मान और दान के योग्य माना गया है। ऐसे ही ब्राह्मण के सत्कार से उन्नति हो सकती है।

अध्याय ३८-४३

स्त्रियों के स्वभाव, नारद-पञ्चचूड़ा, देवशर्मा-विपुल, इन्द्र-रुचि

भीष्म बोले—'एक बार नारदजी के बहुत हठ करने पर ब्रह्मलोक की अप्सरा पञ्चचूड़ा ने कहा कि स्त्रियाँ दोषों की खान हैं। उन्हें पुरुष-संग सबसे अधिक प्रिय होता है। जो उनके पास आता-जाता हो और उनको प्रसन्न करने की चेष्टा करता हो उस पर वे टूट पड़ती हैं। रूपवान, गुणी, धनवान तथा आज्ञाकारी पति को त्यागकर भी वे कुरूप, गुणशून्य, अयोग्य पुरुषों पर आसक्त हो जाती हैं। धर्म या कुल का भय, दया, ममता, प्रेम तथा उपकार आदि कुछ भी उन्हें व्यभिचार से नहीं रोक सकता। पर-पुरुष के न मिलने पर कृत्रिम उपायों द्वारा वे अपने काम-वेग

को शान्त करके दम लेती हैं। यम, वायु, अग्नि, काल, मृत्यु, तलवार की धार, विष, सर्प से भी अधिक भयंकर यदि कुछ है तो वह स्त्री ही है।'

युधिष्ठिर बोले—'यह सब सुनकर तो मुझे आशंका होने लगी है कि शायद ही कोई स्त्री सती हो। जैसे गायें नवीन तृणों की खोज में रहती हैं, वैसे ही स्त्रियाँ भी सदा नवीन-नवीन पुरुषों को चाहती हैं। संसार के बड़े-से बड़े मायावी जिन मायाओं की सृष्टि कर गये हैं, वे सभी मायाएँ स्त्रियाँ जानती हैं और सफलता-पूर्वक उन्हीं के अनुसार चलती हैं। बृहस्पति और शुक्र ने शायद स्त्रियों से ही नीति-शास्त्र सीखा है। स्त्रियों की बुद्धि सब से अधिक तीक्ष्ण है। ऐसी दशा में पर-पुरुष-संसर्ग से वे कैसी बचाई जा सकती हैं?'

भीष्म बोले—'प्राचीन काल में मनुष्य धर्म-निष्ठ होने के कारण सहज में ही देवत्व प्राप्त कर लेते थे। इस बात से देवगण को बड़ा क्षोभ हुआ। तब मनुष्यों को मोहित करने के लिए ब्रह्माजी ने स्त्री की सृष्टि की। व्यभिचार से मनुष्य मोहित हो गये। स्त्री के मोह-जाल से कोई नहीं बच सकता। पूर्व समय में देवशर्मा नामक एक बड़े तपस्वी ऋषि थे। उनकी पत्नी रुचि अद्वितीय सुन्दरी थी। इंद्र उसे भ्रष्ट करने के प्रयत्न में रहने लगे। एक बार

देवशर्मा कहीं यज्ञ कराने जाने लगे। उन्होंने अपने विश्वासी शिष्य विपुल को गुरु-पत्नी की रक्षा के लिए नियुक्त किया। गुरु से यह जानकर कि इंद्र सभी प्रकार के रूप रख सकते हैं, विपुल बहुत चिन्तित हुए। वे गुरूपत्नी के पास गये और योगबल से उसके शरीर में प्रविष्ट हो उसे निश्चेष्ट कर उसकी रक्षा करने लगे। इधर यह जानकर कि देवशर्मा आश्रम में नहीं हैं, इंद्र दिव्य रूप बनाकर रुचि के पास आये और अनेक प्रकार की मनोहर बातें कहकर रुचि को फुसलाने की चेष्टा करने लगे। किन्तु रुचि इच्छा रहने पर भी विपुल के प्रभाव से इन्द्र के मन का कार्य न कर सकी। इन्द्र बहुत विस्मित हुए। तब विपुल ने अपने शरीर में लौटकर इन्द्र को बहुत धिक्कारा। शाप के भय से इन्द्र वहाँ से भाग गये। आश्रम में लौट-कर देवशर्मा ने सब हाल सुनकर अपने प्रिय शिष्य को वरदान दिया कि तुम्हें सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँ। विपुल सिद्धियाँ प्राप्तकर विचरण करने लगे। कुछ समय बाद अंगराज चित्ररथ की पत्नी प्रभावती ने अपनी बहन रुचि से दिव्यलोक के फूल माँगे। देवशर्मा ने विपुल को उन फूलों को लेने के लिए भेजा। रास्ते में मनुष्य रूपधारी रात-दिन तथा छः ऋतुओं से विपुल को मालूम हुआ कि गुरु-पत्नी के शरीर में प्रविष्ट होने के कारण उन्हें अधो-

गति प्राप्त होगी। विपुल ने डरकर अपने गुरु से सब बातें बतलाईं। गुरु ने कहा कि तुमने किसी बुरे विचार से गुरुपत्नी के शरीर को दूषित नहीं किया, इस कारण मेरे आशीर्वाद से तुम्हें दिव्यलोक और सद्गति प्राप्त होगी। तब पुण्य के प्रताप से देवशर्मा तथा विपुल ने सद्गति प्राप्त की।

अध्याय ४४-४६

कन्यादान, विवाह, दायभाग, पुत्रों के प्रकार, स्त्री-प्रशंसा, वर्ण-संकर

विभिन्न प्रकार के विवाहों का वर्णनकर भीष्म बोले—'वर के स्वभाव की, उसकी विद्या की, उसके कार्यों की तथा कुल की परीक्षा करने के अनन्तर ही उचित निर्णय होने पर उसे कन्या दे। इसी को ब्राह्म विवाह कहते हैं। रजस्वला हो जाने पर कन्या तीन वर्ष तक अपने कुटुम्बियों द्वारा विवाह होने की प्रतीक्षा करे, इसके बाद वह स्वयं अपनी रुचि के अनुसार पति का वरण कर ले। जो पुरुष कन्या को पसन्द नहीं होता, उसके साथ सहवास करने से धर्म और यश का क्षय होता है। किसी के साथ कन्या के विवाह की बात पक्की हो जाने पर भी दूसरे के साथ उसका विवाह किया जाना धर्म-विरुद्ध नहीं है। क्योंकि कन्यादान और अग्नि को साक्षी कर सप्त-पदी

होने पर ही विवाह धर्मानुकूल माना जा सकता है, केवल बात पक्की होने से नहीं। कन्या का शुल्क वर से या वर पक्ष से ले लेने पर भी कन्यापक्ष वाले धर्मतः उसका विवाह दूसरे से कर सकते हैं, शुल्क देने पर भी विवाह नहीं माना जा सकता। पाणिग्रहण होने पर ही पत्नीत्व सिद्ध होता है, कन्या को शुल्क द्वारा खरीदने-बेंचने से नहीं।

'स्त्रियों को सदा प्रसन्न रखना चाहिए। जहाँ स्त्रियों का आदर होता है वहाँ देवताओं का वास रहता है और जहाँ स्त्रियों का आदर नहीं होता वहाँ कोई काम सफल नहीं होता। स्त्रियों को दुःख देने से कुल का नाश हो जाता है। स्त्री-जाति ही पुत्र, धर्म और सुख की प्राप्ति का कारण है, अतएव उनका सम्मान और रक्षण करना चाहिए। स्त्री-जाति लक्ष्मी-स्वरूप है, अतएव स्त्री का सम्मान करने से लक्ष्मी प्रसन्न होती हैं और भुक्ति, मुक्ति, तथा ऐश्वर्य प्रदान करती हैं।

'यदि ब्राह्मण चारों वर्ण की स्त्रियों से विवाह करे और उन चारों स्त्रियों से पुत्र उत्पन्न हों, तो ब्राह्मणी स्त्री के पुत्र पहले उत्तम-उत्तम वस्तुएँ ले लें। फिर जो संपत्ति बचे उसके दस हिस्से किये जायँ और उन में से चार हिस्से ब्राह्मणी के पुत्र को, तीन हिस्से क्षत्राणी के पुत्र को, दो हिस्से वैश्या के पुत्र को और एक हिस्सा शूद्रा के पुत्र

को मिलना चाहिए। किन्तु जहाँ केवल सवर्णा स्त्री में पुत्र उत्पन्न हो वहाँ सब पुत्रों को बराबर-बराबर हिस्से मिलने चाहिए। क्षत्रिय की संपत्ति आठ भागों में बाँटकर चार भाग क्षत्राणी के पुत्र को, तीन भाग वैश्या के पुत्र को और एक भाग शूद्रा के पुत्र को दिया जाना चाहिए। वैश्य के धन को पाँच भाग में बाँटकर तीन भाग वैश्या के पुत्र को और दो भाग शूद्रा के पुत्र को मिलना चाहिए। पति के मरने पर स्त्री पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती है, किन्तु उसे उस संपत्ति को बेचने का अधिकार नहीं रहता। पिता से मिला हुआ स्त्री का धन उसकी कन्या को मिलना चाहिए। कन्या पुत्र के ही समान है, इस कारण पुत्रहीन का धन कन्या या नाती को मिलना चाहिए। दत्तक पुत्र के गोद लिये जाने पर पिता के धन के पांच भाग किये जाने चाहिए जिनमें से तीन हिस्से कन्या को और दो हिस्से दत्तक पुत्र को दिये जाने चाहिए।

'ब्राह्मण द्वारा ब्राह्मणी, क्षत्राणी और वैश्या में उत्पन्न पुत्र ब्राह्मण ही होते हैं। कभी-कभी ब्राह्मण द्वारा वैश्या में उत्पन्न पुत्र अम्बष्ठ और शूद्रा में उत्पन्न पुत्र पारशव (निषाद) कहा जाता है। क्षत्रिय द्वारा वैश्या में उत्पन्न पुत्र माहिष्य और शूद्रा में उत्पन्न पुत्र उग्र, ब्राह्मणी

में उत्पन्न पुत्र सूत कहा जाता है। वैश्य द्वारा शूद्रा में उत्पन्न पुत्र करण, ब्राह्मणी में उत्पन्न पुत्र वैदेहक, मागध, वामक अथवा मौद्गल्य और क्षत्राणी में उत्पन्न पुत्र वाक्यजीवी बन्दी कहा जाता है। शूद्र से ब्राह्मणी में उत्पन्न पुत्र चाण्डाल, क्षत्राणी में उत्पन्न पुत्र निषाद या व्रात्य वैश्या में उत्पन्न पुत्र वैध आयोगव या तक्षा कहा जाता है। वर्णसंकर अपने से भिन्न जाति की स्त्री में पुत्र उत्पन्न करके पुल्कस, मैरेय, क्षुद्र, अन्ध्र, कारावर, पाण्डु सौपाक, अन्तेवसायी आदि जातियों की सृष्टि करते हैं। हीन वर्ण के पुरुष द्वारा अपने से उच्च वर्ण की स्त्री में जो पुत्र उत्पन्न होता है उसे अपसद कहते हैं और उच्च वर्ण के पुरुष द्वारा अपने से हीन वर्ण को स्त्री में जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे अपध्वंसज कहते हैं। जिस पुत्र के माता-पिता का पता न लगे और वह किसी दूसरे के द्वारा पाल लिया जाय उसे कृतक पुत्र कहते हैं। ऊँची जाति के मनुष्य नीच स्वभाववाले और नीच जाति के मनुष्य अच्छे स्वभाव के पाये जाते हैं। उच्च जाति का मनुष्य यदि दुराचारी हो तो उसका सम्मान न करना चाहिए और यदि नीच जाति का मनुष्य या शूद्र धर्मात्मा और सदाचारी हो तो उसका आदर करना उचित है। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि को अपने पुत्रों के नामकरण,

विवाह आदि संस्कार अपने कुल और गोत्र के अनुरूप ही करने चाहिए।

अध्याय ५०-५६

च्यवन, मछलियाँ और जाल, ऋषि का मूल्य, एक गाय-कुशिक वंश और च्यवन, कुशिक को स्वर्ग-दर्शन, विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना

भीष्म बोले—'प्राचीन समय में महर्षि च्यवन ने प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम पर जल में रहकर घोर तप किया। बारह बरस तक उस स्थान पर रहने के कारण वहाँ के जल-जीवों से उनका स्नेह हो गया। एक बार मछुओं ने मछलियों को पकड़ने के लिए वहाँ जाल डाला। मछलियों के साथ च्यवनजी भी जाल में फँस गये। उन्हें देखकर मछुए बहुत डरे। वे ऋषि को छोड़ने लगे। ऋषि ने कहा कि मैं तो मछलियों के साथ ही अपने प्राण दे दूँगा। तब और भी अधिक डरकर मछुओं ने आकर राजा नहुष से सारा हाल बतलाया। नहुष ने मंत्रियों सहित आकर ऋषि को प्रणाम किया और सेवा के लिए आज्ञा चाही। ऋषि ने कहा कि मछुओं को मछलियों की और मेरी क़ीमत दे दो और हमें छुड़ा लो। नहुष ऋषि को प्रसन्न करने के लिए उनके मूल्य के रूप में पहले एक

करोड़ सोने की मुद्राएँ, फिर आधा राज्य और अन्त में पूरा राज्य मछुओं को देने लगे। किन्तु ऋषि यही कहते रहे कि क्या यही मेरा उचित मूल्य है? अन्त में एक दूसरे महर्षि ने आकर कहा कि गाय को छोड़कर दूसरी ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो ब्राह्मण का उपयुक्त मूल्य हो सके। इस कारण आप च्यवनजी के बदले में एक गाय दे दीजिये। गाय देकर राजा ने च्यवनजी को छुड़ा लिया। च्यवनजी के प्रताप से मछुए, मछलियों सहित स्वर्ग को चले गये। गाय से बढ़कर संसार में दूसरा और कुछ नहीं है।

'एक बार च्यवनजी महाराज कुशिक के पास जाकर रहने लगे। राजा-रानी अपने राज्य-ऐश्वर्य को उनके अधीनकर उनकी सेवा करने लगे। एक दिन भोजनकर च्यवनजी राजा-रानी को यह आज्ञा देकर सो गये कि जब तक मैं अपने से न उठूँ तब तक तुम मेरे पैर दबाते रहो। च्यवनजी बराबर इक्कीस दिन तक सोते रहे और रानी-राजा बिना भोजन-पानी-विश्राम के बराबर ऋषि के पैर दबाते रहे। बाइसवें दिन च्यवनजी उठे और बिना कुछ सुने एक ओर चल दिये। रानी-राजा उनके पीछे-पीछे जाने लगे। कुछ समय बाद ऋषि अन्तर्धान हो गये। रानी-राजा ने उन्हें बहुत खोजा, पर उनका कहीं पता न चला। तब वे उनके शयनागार में लौट आये। वहाँ ऋषि सोते

देख पड़े। रानी-राजा फिर उनके पैर दबाने लगे। च्यवन जी फिर बराबर इक्कीस दिन सोते रहे। बाइसवें दिन च्यवनजी उठे और रानी से मालिश कराकर उन्होंने स्नान किया। फिर उन्होंने भोजन, शैया, मूल्यवान पदार्थ आदि में आग लगा दी। फिर रानी-राजा को रथ में जोतकर च्यवनजी नगर में घूमने लगे। रास्ते में जो ब्राह्मण आदि मिलते, उन्हें च्यवनजी बहुत-सा सोना, रत्न, उत्तम पदार्थ आदि देते। राजा के कहने से मंत्री और राज-कर्मचारी असंख्य द्रव्य, धन, रत्न लेकर रथ के पीछे-पीछे चल रहे थे। बीच-बीच में च्यवनजी ने कोड़े मार-मारकर रानी-राजा के शरीरों को लोहू-लुहान कर दिया। रानी-राजा के शरीरों में घाव-ही-घाव हो गये। इनमें से किसी भी बात से रानी-राजा के मन में तनिक भी विकार न हुआ। अन्त में च्यवनजी ने हार स्वीकारकर राजा से कहा—'मैं तुम्हारे पास शाप देने के लिए आया था। मेरे वंश में तुम्हारे वंश के कारण उग्रता आयेगी, यह जान कर मुझे क्षोभ हुआ था। किन्तु तुमसे कोई भी त्रुटि न होने पाई। अब मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम जो वर चाहो माँग लो।' राजा ने ब्रह्मतेज को सबसे श्रेष्ठ समझकर कहा कि आप मुझे 'ब्राह्मणत्व' दीजिये। ऋषि ने कहा कि ब्राह्मणत्व स्वर्ग से भी कठिन है। आप तो ब्राह्मण नहीं

हो सकते, किन्तु आपके पौत्र को अवश्य ब्राह्मणत्व प्राप्त होगा। यह कह च्यवनजी ने रानी-राजा को स्वर्ग के दर्शन कराये। इन्हीं ऋषि के आशीर्वाद से राजा कुशिक के पौत्र विश्वामित्रजी क्षत्रिय से ब्राह्मण हो सके थे।

अध्याय ५७-८३

शुभ कर्म, जलाशय, वृक्ष लगाने, गोदान, भूमिदान, अन्नदान, विद्यादान आदि के फल; प्रजा राजा को कब मार डाले; ब्राह्मण की महिमा; नृग और नाचिकेत के उपाख्यान; ब्रह्मा-इन्द्र संवाद; गोलोक-वर्णन; कपिला की उत्पत्ति; वशिष्ठ-सौदास संवाद; गौ में लक्ष्मी।

भीष्म बोले—'तपस्या के द्वारा धन, ऐश्वर्य, यश, सुख तथा स्वर्ग की प्राप्ति होती है। दान से भोग, मौन से अधिकार, ब्रह्मचर्य से दीर्घायु, व्रत और यज्ञ से स्वर्ग, जलाशय बनवाने से तीनों लोकों में प्रतिष्ठा, वृक्ष लगाने से अक्षय कीर्ति, भूमि दान करने से राज्य, अक्षय पुण्य, स्वर्ग तथा यश की प्राप्ति होती है। सब दानों में अन्न-दान श्रेष्ठ है। अन्न-दान से प्राणी के तेज और प्राणों की रक्षा होती है। अतएव अन्न-दान से सभी प्रकार के शुभ कर्मों के फल अनायास ही प्राप्त होते हैं। यज्ञ, तप, व्रत आदि कोई भी सत्कर्म अन्न-दान की बराबरी नहीं कर सकते।

नारद ने देवकी से कहा था कि विभिन्न तिथियों, नक्षत्रों में विभिन्न प्रकार के अन्नों के दान करने से विभिन्न प्रकार के पुण्य-फल की प्राप्ति होती है। जल, तिल, जूते, खड़ाऊँ, घर, छाता आदि दान करने से अक्षय सम्पत्ति, यश तथा स्वर्ग की प्राप्ति होती है। प्राचीन समय में दूसरे मनुष्य के धोखे में यमदूत महात्मा शर्मी को यमलोक ले गया। वहाँ यमराज ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और उन्हें विभिन्न दानों,यज्ञों तथा सत्कर्मों की विधि तथा उनके फल बतलाये। शर्मी वहीं यमलोक में रहना चाहते थे, किन्तु यमराज ने यह कहकर उन्हें मृत्युलोक में लौटाल दिया कि अभी आपकी आयु पूरी नहीं हुई और बिना आयु पूरी हुए कोई भी व्यक्ति अपने शरीर को छोड़कर यमलोक में भी नहीं रह सकता। दीपदान करने से पितर संतुष्ट होते हैं और तेज बढ़ता है। गोदान, भूमिदान और विद्यादान, ये तीनों दान बराबर फल देनेवाले हैं। जन्म देनेवाला, रक्षा करनेवाला वाला और जीविका देनेवाला, ये तीनों पिता माने जाते हैं। रक्षा करने और जीविका देने से अक्षय पुण्य प्राप्त होता है।

'एक बार यदुवंश के कुछ बालकों को वन में, एक कुएँ में, एक बड़ा भारी गिरगिट देख पड़ा। वे बड़े-बड़े रस्से डालकर उसे ऊपर निकालने लगे। किन्तु बहुत

प्रयत्न करने पर भी वे उसे न निकाल सके। तब हार कर वे श्रीकृष्णजी के पास गये। श्री कृष्णजी ने वन में जाकर उस गिरगिट को निकाला और उससे उस योनि में आने का कारण पूछा। गिरगिट ने कहा—'पूर्व-जन्म में मैं नृग नामक राजा था। मैंने लाखों गायों का दान विधिपूर्वक किया था। एक बार धोखे से मेरी दान की हुई एक गाय एक ब्राह्मण के पास से भागकर मेरी गायों में आ मिली। मैंने अनजान में उसे फिर से एक दूसरे ब्राह्मण को दान कर दिया। रास्ते में दोनों ब्राह्मणों में भेंट हो गई और दोनों उस गाय के लिए झगड़ने लगे। जब वे आपस में समझौता न कर सके तब वे मेरे पास आये। मैं उस गाय के बदले में लाखों गायें और असंख्य द्रव्य देने लगा, किन्तु उन दोनों ब्राह्मणों में से कोई भी उसे छोड़ने और अन्य लाखों गायों तथा असंख्य धन-राशि को लेने के लिए तैयार न हुआ। दोनों में से प्रत्येक उसी गाय को लेना चाहता था। अंत में वे उस गाय को मेरे पास छोड़कर चले गये। मरने पर यमराज ने मुझसे कहा कि आपके पुण्य असंख्य हैं, किन्तु साथ में एक बहुत थोड़ा-सा पाप भी है। मैंने पहले पाप का फल भोगना चाहा। इसी कारण मुझे इस योनि में आना पड़ा।' यह कह, उस शरीर को छोड़कर राजा

नृग स्वर्ग को चले गये।

'प्राचीन समय में महर्षि उद्दालक ने अनजान में झुँझलाकर अपने पुत्र नाचिकेता को यमलोक जाने का शाप दिया। नाचिकेत तुरन्त मरकर यमलोक जा पहुँचे। यमराज ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और उन्हें फिर मृत्युलोक में लौट जाने का आदेश दिया। नाचिकेत ने उन्हें प्रसन्नकर विभिन्न सत्कर्मों, यज्ञ, दान, तप आदि से प्राप्त होनेवाले लोकों को देखने की लालसा प्रकट की। यमराज ने उन्हें विभिन्न लोकों को दिखलाकर सत्कर्म करने का उपदेश दे फिर मृत्युलोक को भेज दिया। नाचिकेत ने फिर जीवित होकर अपने पिता से दिव्य-लोकों का सब हाल बतलाया। ब्रह्माजी ने इंद्र से कहा था कि गोदान करनेवाले को गोलोक प्राप्त होता है। गोलोक अन्य सभी लोकों से श्रेष्ठ है और ब्रह्मलोक से भी ऊपर है। गोलोक भी अनेक प्रकार के हैं। जो जैसी और जिस विधि-विधान से गोदान करता है उसे उसीके अनु-रूप गोलोक की प्राप्ति होती है। सत्पात्र को उत्तम दूध देने वाली गाय के देने से जो फल प्राप्त होता है वह अश्वमेध यज्ञ से भी श्रेष्ठ होता है। क्रोध, निरादर, अश्रद्धा को त्याग कर जो दान सत्पात्र को दिया जाता है वही उत्तम फल देनेवाला होता है। एक बार एक बछड़े के मुँह से दूध का

फेन शिवजी के ऊपर गिर पड़ा। शिवजी के कोप से गोवंश भस्म होने लगा। तब प्रजापति ने बछड़े को वाहन के रूप में शिवजी को देकर तथा उन्हें पशुपति बनाकर शान्त किया। जो गायें शिव के कोप के समय चंद्रदेव की शरण में जाकर अपने को बचा सकीं वे ही अपने असली श्वेत रूप में रह सकीं। उन्हीं के वंश से कपिला की उत्पत्ति हुई। कपिला गाय के दान से बढ़कर और दूसरा कोई भी दान श्रेष्ठ नहीं है। वशिष्ठजी ने राजा सौदास को गोदान की विधि और माहात्म्य बतलाया था। उसी के अनुसार चलकर सौदास अक्षय पुण्य के भागी बने थे। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर गायों को वर दिया था कि तुम्हारे अंगों में एवं गोबर में लक्ष्मी का वास होगा और जो तुम्हारी सेवा करेगा उसे अक्षय पुण्य प्राप्त होगा। व्यासजी ने शुकदेव से गोदान का माहात्म्य बतलाकर कहा था कि लक्ष्मीजी हठकर के गायों में निवास करने लगी हैं।

ब्रह्माजी ने दक्ष प्रजापति की कन्या सुरभी को वर दिया था कि तुम अपने वंश के साथ सभी लोकों से ऊपर गोलोक में निवास करो। इसीसे गोलोक अन्य सभी लोकों से ऊपर है। जब दैत्यों के नाश के लिए विष्णु भगवान ने पृथ्वी पर अवतार लिया था तब सुरभी ने भी गोलोक

से इस लोक में आकर गोवंश की वृद्धि की थी। जो गोदान और गायों की सेवा करता है उसके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं होता।

अध्याय ८४-६४

सोने की उत्पत्ति, वशिष्ठ-परशुराम-संवाद, दान लेने से सुकृत नष्ट, महर्षियों की शपथ और इन्द्र का मृणाल चुराना

युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म बोले—'मैं एक बार अपने पिता का श्राद्ध कर्म कर रहा था। पिण्डदान करते समय वेदी से पिता का एक हाथ निकला। किन्तु शास्त्रों के विधान के अनुसार मैंने कुशों पर ही पिण्ड अर्पित किया। हाथ अन्तर्धान हो गया। रात को सोते समय मुझे पिता ने दर्शन देकर कहा—'तुमने शास्त्रोक्त विधि से पिण्ड दानकर मुझे, पितृगण तथा देवगण को बहुत प्रसन्न किया है। अब तुम स्वर्ण का दान कर अक्षय पुण्य प्राप्त करो।' मैंने स्वर्णदान का आयोजन किया। पूर्व समय में जब परशुरामजी ने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया था तब वशिष्ठ, अगस्त्य आदि महर्षियों ने उन्हें बतलाया था कि तुम स्वर्णदान से ही इस घोर पाप से छुटकारा पा सकते हो। उसी अवसर पर स्वर्ण की उत्पत्ति बतलाते हुए वशिष्ठजी ने कहा—'प्राचीन समय में

शिव-पार्वती के विहार के समय इन्द्र, वरुण आदि देवगण कैलास पर गये और शिवजी से प्रार्थना करने लगे कि आप पुत्र उत्पन्न न करें; क्योंकि उसका तेज कोई न सह सकेगा। शिवजी ने उनकी बात मान ली। किन्तु पार्वती ने कुपित होकर शाप दिया कि देव-गण ने मेरे आनन्द में विघ्न डाला है, इस कारण वे पुत्र उत्पन्न न कर सकें। अग्निदेव उस समय वहाँ नहीं थे, इस कारण वे शाप से मुक्त रहे। उसी अवसर पर शिव जी का कुछ अंश अग्नि में गिर गया था, उसी से स्वर्ण की उत्पत्ति हुई। शिव और अग्नि के संयोग से स्वर्ण की उत्पत्ति हुई, इस कारण स्वर्ण सब धातुओं में श्रेष्ठ है। कुछ समय बाद तारकासुर के उत्पीड़न से दुखी हो कर देवगण ने ब्रह्माजी के कहने से अग्निदेव द्वारा गंगा में गर्भाधान कराया। उस तेज को न सह सकने के कारण गंगाजी ने उसे सुमेरू पर्वत पर त्याग दिया। उसीसे कुमार स्वामिकार्तिक और स्वर्ण की उत्पत्ति हुई। कुमार ने तारकासुर को मारकर देवगण का संकट दूर किया। स्वर्णदान से सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। एक बार लोक-कल्याण के लिए ब्रह्माजी ने यज्ञ आरंभ किया। उस अवसर पर देव-कन्याओं को देखकर उनका मन डोल गया और उनका कुछ अंश अग्नि में गिर गया.

जिससे महर्षि भृगु, अंगिरा और शुक्राचार्य की उत्पत्ति हुई। अन्यान्य ऋषियों तथा प्रजापतियों की उत्पत्ति के अनन्तर ब्रह्माजी ने विधान बनाया कि विभिन्न तिथियों, पर्वों तथा नक्षत्रों में विभिन्न वस्तुओं का दान करने से अक्षय पुण्य प्राप्त होगा। श्राद्ध में तिल आदि के दान तथा सत्पात्र ब्राह्मण के भोजन की भी व्यवस्था की गई।'

'दान लेने से पाप अवश्य लगता है। सज्जन का दान लेने से कम पाप लगता है और दुर्जन का दान लेने से अत्यधिक पाप का भार उठाना पड़ता है। इसी कारण सात्विक महर्षि सदा दान से बचते थे। एक बार अकाल पड़ने पर महर्षि कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि व्याकुल होकर खाने के लिए एक मुर्दे का मांस पकाने लगे। उसी समय महाराज शैव्य वहाँ पहुँच गये और ऋषियों को मुर्दे का मांस पकाते देख बोले—'आप लोग इस अभक्ष्य को न खायँ। मैं आप लोगों को असंख्य धन, रत्न, अन्न-दस हज़ार दूध देने वाली गायें, दस हज़ार बैल तथा अन्य बहुमूल्य पदार्थ देता हूँ। आप दान में ये सब वस्तुएँ लें और इस अभक्ष्य को छोड़ दें।' ऋषि बोले—'हम दान न लेंगे। दान लेने से सब शुभकर्म नष्ट हो जाते हैं।' राजा ने कौशल से मंत्री द्वारा कुछ फल ऋषियों के पास भेजे। फलों में

सोना भरा था। किन्तु ऋषियों ने विचार करने के अनन्तर यह कहकर फिर भी दान लेना स्वीकार न किया कि संसार भर के ऐश्वर्य, धन, रत्नों के मिल जाने पर भी मनुष्य की तृष्णा पूरी नहीं हो सकती। एक इच्छा पूरी होते ही दूसरी इच्छा उत्पन्न हो जाती है। दान लेने से तप, यज्ञ आदि का सारा फल नष्ट हो जाता है। यह कहकर ऋषिगण उस वन को छोड़कर अन्यत्र चले गये। शैव्य को उनके इस व्यवहार से बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने अपने तप के प्रभाव से एक विकराल यातुधानी उत्पन्नकर उसे ऋषियों को मारने के लिए भेजा। इधर वन में ऋषियों को एक मोटा-ताज़ा संन्यासी मिला। ऋषियों ने आपस में कहा कि जैसे कष्ट, अभाव, चिन्ता, नियम के बंधन हम लोगों को सता रहे हैं वैसे इस संन्यासी को नहीं हैं, इसी कारण यह इतना मोटा-ताज़ा है। संन्यासी उन लोगों से मिलकर उनके साथ रहने लगा। एक बार वे सब एक तालाब पर गये। शैव्य की भेजी हुई यातुधानी ने उन्हें तालाब में धँसने से रोका। ऋषियों के बहुत समझाने पर भी जब यातुधानी ने रास्ता न छोड़ा, तब संयासी ने उसे अपने दण्ड से मार डाला। ऋषियों ने तालाब में से कुछ मृणाल एकत्र कर किनारे पर रख दिये और वे फिर तालाब में गये। जब

वे लौटकर बाहर आये तो उन्हें किनारे पर रक्खे हुए मृणाल न मिले। ऋषि एक दूसरे से उनके विषय में पूछने और शपथ करने लगे कि जिसने मृणाल चुराये हों वह उच्छृङ्खल संन्यासी हो, कन्योपजीवी हो, झूठी गवाही दे, वृथा मांस खाये, दान ले, धरोहर न लौटावे, फूस की आग में होम करे, सब से द्वेष करे, मित्रहीन हो, वेदों को वेचे, राजा का पुरोहित हो, सदा दरिद्री रहे, भाइयों से विरोध करे, चिकित्सा का व्यवसाय करे, तिरस्कृत और ताड़ित हो, ससुराल का अन्न खाय, शुभकर्म में विघ्न डाले, संन्यासी होकर धन-संग्रह करे और घर में रहे, अधर्मी राजा हो, पाखण्ड पूर्वक तप करे। तब संन्यासी ने कहा कि धर्म की वार्ता को सुनने के लिए ही मैंने मृणाल उठाकर एक ओर छिपा दिये थे। मैं इंद्र हूँ, तुम लोगों की रक्षा यातुधानी से करने के लिए यहाँ आया था। यह कह, इन्द्र स्वर्ग को चले गये। इसी प्रकार एक बार नारद, भृगु आदि महर्षियों के साथ कपट वेश में इन्द्र ने उनके मृणाल चुराकर रख दिये। जब वे आपस में उपर्युक्त रीति से शपथ खाने लगे तब इन्द्र ने प्रकट होकर सब को मृणाल लौटा दिये और कहा कि शपथ-द्वारा धर्म का तत्त्व सुनने के लिए ही मैंने यह माया रची थी।

अध्याय ६५-११०

छाता-खड़ाऊँ की उत्पत्ति, विभिन्न दान, व्रत, इन्द्र-गोतम, अनशन व्रत, विना धन के कर्मों के फल, द्वादशी और विष्णु-पूजा, चान्द्र व्रत

भीष्म बोले—प्राचीन समय में एक बार महर्षि जमदग्नि धनुष से बाण चलाने में ऐसे तल्लीन हो गये कि उन्हें और किसी बात का ध्यान ही न रह गया। उनकी स्त्री रेणुका उन्हें दौड़-दौड़कर बाण पहुँचा रही थी। दोपहर होने पर रेणुका सूर्य के ताप के कारण व्याकुल हो गई। यह देख, ऋषि ने क्रोधकर सूर्यको नष्टकर डालना चाहा। तब सूर्यदेव ने भयके कारण ब्राह्मणका वेश बनाकर छाता और खड़ाऊँ लाकर ऋषि को दिये और उनसे क्षमा चाही। ऋषि ने रेणुका को छाता-खड़ाऊँ देकर घाम और तपी हुई भूमि से उसकी रक्षा की। छाता और खड़ाऊँ दान करने से परम पुण्य प्राप्त होता है। पूर्व समय में पृथ्वी ने वासुदेव से गृहस्थाश्रम धर्म का मर्म बतलाकर कहा था कि गृहस्थ को सभी को संतुष्ट करना चाहिये। शुक्राचार्य ने राजा बलि से पुष्प, धूप, दीप के दान की महिमा बतलाकर कहा था कि इनके दान से अक्षय लोक प्राप्त होते हैं। महर्षि भृगु के शाप के कारण स्वर्ग से भ्रष्ट होकर नहुष ने दीप-दान द्वारा ही फिर स्वर्ग प्राप्त किया था। एक बार एक चाण्डाल ने बतलाया था कि एक राजा ने

मदोन्मत्त होकर एक ब्राह्मण की गाय का हरण किया था। उसी के दूध के छींटे पड़ने के कारण मुझे इस जन्म में चाण्डाल होना पड़ा। एक बार महर्षि गौतम ने एक हाथी के बच्चे को पाल लिया। इंद्र कपट वेश बनाकर उसे चुराकर ले जाने लगे। गौतम ने उनसे बड़ा विवाद किया और यह स्पष्ट करवाया कि किस कर्म से किस लोक की प्राप्ति होती है। फिर इंद्र दोनों को स्वर्ग ले गये। एक बार ब्रह्माजी के पूछने पर भगीरथ ने कहा था कि मैं विधि-पूर्वक किये गये अनशन-व्रत के प्रभाव से ही इस दिव्य लोक में आ सका हूँ, अनशन-व्रत को छोड़कर और किसी भी पुण्य के द्वारा यह लोक प्राप्त नहीं किया जा सकता। मनुष्य अपने शुभ कर्मों के द्वारा अपनी आयु बढ़ा लेता है और अशुभ कर्मों के द्वारा आयु का क्षय कर डालता है। भाइयों से धूर्तता करने और उन्हें कष्ट पहुँचाने से मनुष्य को घोर नरक भोगने पड़ते हैं। विभिन्न मासों, तिथियों, नक्षत्रों, तथा योगों में विधिपूर्वक सात्विक भाव से व्रत करने से अक्षय पुण्य प्राप्त होता है। जिनके पास धन नहीं है और इस कारण जो यज्ञ, दान आदि नहीं कर सकते, वे श्रद्धा-भक्ति पूर्वक तप, व्रत, सेवा, परोपकार, योग, ईश्वरोपासना द्वारा यज्ञ तथा दान से भी अधिक फल प्राप्त कर सकते हैं। विभिन्न तीर्थ-स्थानों में भिन्न-भिन्न

प्रकार के अनुष्ठान और शुभ कर्म करने से विभिन्न प्रकार के फलों की प्राप्ति होती है। प्रत्येक मास की द्वादशी को विष्णु की पूजा करने से अक्षय पुण्य प्राप्त होता है। विधि-पूर्वक चान्द्रव्रत करने से मनुष्य चंद्र के समान सुन्दर हो सकता है।

अध्याय १११-१२५

बृहस्पति का उपदेश, जन्म-कर्म, प्रायश्चित, अन्नदान, हिंसा और मांस-भक्षण से हानि, व्यास और कीड़ा, व्यास और मैत्रेय, शाण्डिली-सुमना, राक्षस-ब्राह्मण, पितृ-तृप्ति

वैशम्पायनजी बोले—'युधिष्ठिर मृत्यु, जन्म, कर्म आदि के संबंध में प्रश्न कर रहे थे। इसी समय बृहस्पति जी वहाँ आये। सबने उनका उचित आदर-सत्कार किया। फिर युधिष्ठिर के पूछने पर उन्होंने कहा—अपने शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार ही प्राणी स्वर्ग या नरक में जाता है और दूसरे जन्म में सुख-दुःख भोगता है। अच्छे-बुरे कर्म बिना मांगे पूरे नहीं होते। प्रत्येक कर्म के लिए अच्छा या बुरा फल भोगना पड़ता है। तप, दान, आदि के द्वारा अशुभ कर्मों का प्रायश्चित हो जाता है। जिस काम को मनुष्य अपने प्रतिकूल समझे उसे किसी भी दूसरे प्राणी के लिए न करे। सब को सुखी रखने का प्रयत्न करनेवाले से अनिष्ट कर्म नहीं होते'। यह उपदेश देकर देवगुरु बृहस्पति चले गये।

उनके जाने पर भीष्म बोले—'मांस न खाना बहुत हितकर होता है। मांस न खाने से मनुष्य रोग, शोक, संताप, द्रोह आदि से बचा रहता है। जो अन्य प्राणियों को अभय देते हैं उनसे बढ़कर दूसरा महात्मा नहीं हो सकता। उसे कहीं भय नहीं होता। पूर्व समय में वेदव्यास जी को एक कीड़ा मिला था, जिसने बतलाया था कि मैंने पूर्वजन्म में जीवों को ख़ूब सताया था—हिंसा और द्रोह में ही सारा जीवन बिताया था। इस कारण मुझे कीड़ा होना पड़ा। मैंने अपनी माता की सेवा निष्छल भाव से की थी, उसीके प्रभाव से मुझे पूर्व जन्म की सारी बातें याद हैं। व्यासदेव की कृपा से उस कीड़े ने उस योनि को छोड़कर क्रम से शूद्र, वैश्य, राजा (क्षत्रिय) और ब्राह्मण के यहाँ जन्म लिया और अन्त में तप द्वारा सारे दोषों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को गया। इसी प्रकार एक वार वेश बदलकर व्यासजी मैत्रेय ऋषि के पास गये। ऋषि ने उन्हें उत्तम भोजन कराया। व्यास देव ने उनसे कहाकि श्रद्धापूर्वक किये हुए इस अन्नदान से तुम्हें सौ अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होगा। अन्नदान से बढ़कर दूसरा दान नहीं है। अन्न को खाकर मनुष्य जीवित रहता और सन्तान उत्पन्न करता है, इस कारण अन्नदान से सभी का कल्याण होता है। किन्तु केवल

सत्पात्र को दान देने से उसका फल मिलता है। अपढ़, चरित्र-हीन को दान देने से कोई भी फल नहीं मिलता। तप और सत्कर्मों के द्वारा मनुष्य अपने पूर्व पापों से छूट जाता है।

'एक बार शाण्डिली नामक स्त्री स्वर्ग को गई। स्वर्ग में रहनेवाली सुमना ने उससे वहाँ पहुँचने का कारण पूछा। शाण्डिली ने बतलाया कि एकान्त भाव से पति की सेवा करने के कारण ही उसे उस लोक की प्राप्ति हो सकी थी। एक बार एक कर्मनिष्ठ, सच्चरित्र बुद्धिमान, शास्त्रज्ञ ब्राह्मण को वन में एक विकराल राक्षस ने घेरा। ब्राह्मण डरा नहीं। राक्षस ने उसे शान्त देख आश्चर्य से कहा कि यदि तुम यह बतला दो कि मैं पीला और दुबला क्यों हो रहा हूँ तो मैं तुम्हें छोड़ दूँ। ब्राह्मण ने कहा कि तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध सब काम होते हैं इसी कारण तुम्हारी यह दशा है। ब्राह्मण की चातुरी और निर्भीकता देख राक्षस ने उसे छोड़ दिया। राजा दस वेश्याओं के बराबर माना जाता है इस कारण राजा के दान को लेने से सारे पुण्य नष्ट हो जाते हैं। एक बार महर्षियों, देवर्षियों, पितृगण तथा देवगण की सभा में बृहस्पति, पितृगण आदि ने निर्णय किया था कि श्राद्ध में तीन पिण्ड देना चाहिए। इनमें से एक पिण्ड

जल में फेंकना चाहिए जिससे चन्द्रदेव तथा पितृगण तृप्त हों। एक को अपनी स्त्री को खिलाना चाहिए जिससे सन्तानोत्पत्ति हो। एक अग्नि में डालना चाहिए जिससे श्राद्ध-कर्त्ता की सब इच्छाएँ पूरी हों। पितृगण के लिए नीला सांड़ भी छोड़ना चाहिए और सत्पात्र ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए।

अध्याय १२६-१३८

विष्णु के प्रिय कार्य, वायु, यम, ब्रह्मा, शिव आदि का धर्म के रहस्य बतलाना, रेणुक, प्रमथगण, अभक्ष्य, दान

भीष्म बोले—एक बार इन्द्र के पूछने पर विष्णु-भगवान ने बतलाया था कि जो मनुष्य प्रातः-संध्या सूर्य के सामने खड़े होकर जप करता है; गो, ब्राह्मण और दीनों की सेवा करता है; सबको सुखी रखने की चेष्टा करता है उसी का सदा कल्याण होता है। बलदेवजी ने कहा कि जो मनुष्य सवेरे उठकर सबसे पहले दही, घी, गाय, सरसों आदि के दर्शन करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। ताम्र-पात्र से देवगण बहुत संतुष्ट होते हैं। धर्मदेव ने कहा कि जो ब्राह्मण राज-कर्मचारी, सेवक, वणिक, शिल्पी, नट, मित्रद्रोही, शास्त्रों का न जाननेवाला हो उसे दान आदि देने से कोई फल नहीं मिलता। ब्रह्माजी ने

बतलाया था कि जो मनुष्य पूस मास के शुक्ल पक्ष में रोहिणी नक्षत्र में स्नान के बाद चन्द्रमा की किरणों का पान करता है उसे महायज्ञों का फल प्राप्त होता है। श्री (लक्ष्मी) ने कहा कि जिस घर में स्त्रियों को दुःख दिया जाता है और वस्तुएँ बिखरी पड़ी रहती हैं उस घर पर देव-पितृगण कृपा नहीं करते। जमदग्नि ने कहा कि जिस मनुष्य का हृदय पवित्र नहीं होता उसके तप, दान, यज्ञ आदि कुछ भी फल नहीं देते, उसे तो नरक में जाना पड़ता है। चित्त की शुद्धि ही सब पुण्यों का मुख्य कारण है। वायु ने कहा कि शुद्ध चित्त से देव-पितृ कर्म करने से ही मनुष्य उत्तम गति प्राप्त कर सकता है। लोमशजी ने कहा कि शास्त्रोक्त विधि से शुभ कर्म करने से ही मनुष्य दिव्य लोक प्राप्त कर सकता है। अरुन्धती ने कहा कि श्रद्धावान और पवित्र-हृदय वाले को धर्म के तत्व अवश्य बतलाने चाहिए। यम एवं चित्रगुप्त ने कहा कि देश, काल और पात्र का विचार करके जो दान किया जाता है वह अवश्य ही पापों का क्षय और पुण्य की वृद्धि करनेवाला होता है। प्रमथगण ने कहा कि हम लोग केवल उन्हीं को सताते और मारते हैं जो मन एवं शरीर से अपवित्र रहते और दूसरों से द्रोह करते हैं।

'एक बार ब्रह्माजी के कहने से देवगण और रेणुक

नाग ने दिग्गजों के पास जाकर यह रहस्य प्राप्त किया था कि जो शुभ नक्षत्र में पृथ्वी के धारण करनेवाले शेष भगवान तथा दिग्गजों की पूजा करता है वह अनन्त पुण्य का भागी होता है। महेश्वर ने कहा कि गो-सेवा से मनुष्य अनन्त कल्याण प्राप्त कर सकता है। विष्णु-भगवान ने कहा कि जो ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर परोपकार में रत रहता है उसका कभी अनिष्ट नहीं होता।

'ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र एक दूसरे का अन्न ग्रहण-कर सकते हैं। जो ब्राह्मण अस्त्रजीवी, चिकित्सक, राज-कर्मचारी, सेवावृत्तिवाला, गाँव का मुखिया, ज्योतिषी, पुरोहित, वेतन-भोगी अध्यापक हो, वह शूद्र के समान होता है। उसका अन्न अभक्ष्य माना जाता है। अभक्ष्य भोजन खाने से महापातक लगता है। अतएव उसकी मुक्ति के लिए उचित प्रायश्चित करना चाहिए। दान और तप दोनों एक समान फल देनेवाले होते हैं। उशीनर, शिवि, रन्तिदेव, मरुत्त आदि ने दान के द्वारा ही सद्गति प्राप्त की थी। धर्म, अर्थ, भय, काम और कारुण्य, ये पाँच प्रकार के दान होते हैं। ईर्ष्याहीन होकर, बिना बदले की आशा के, जो सत्पात्र को श्रद्धापूर्वक दान दिया जाता है वह धार्मिक दान कह-लाता है। जो दान इस विचार से किया जाता है कि यह बदले में मुझे दान का अच्छा फल देगा, वह दान आर्थिक

दान कहलाता है। किसी के क्रोध या अहित के निवारण के विचार से जो दान दिया जाता है वह भय-निमित्तिक दान कहलाता है। जो दान अपने किसी प्रियपात्र अथवा अपने ऊपर कृपा करनेवाले को दिया जाता है उसे काम-निमित्तिक दान कहते हैं। किसी के दुःख को देखकर दयावश जो दान किया जाता है उसे कारुण्य-निमित्तिक दान कहते हैं। दान करने से यश और पुण्य होता है और पाप से छुटकारा मिलता है।

अध्याय १३६-१५०

वासुदेव का तप और माहात्म्य, शिव का तप और माहात्म्य, विष्णु-सहस्रनाम से अनिष्ट-नाश, शिव-पार्वती-संवाद

भीष्म बोले—'प्राचीन समय में वासुदेव कठोर तप कर रहे थे। इसी बीच में नारद, पर्वत, व्यास, धौम्य आदि उनके दर्शन के लिए पर्वत पर गये। उसी समय वासुदेव के मुख से उनके ब्रह्मतेज ने निकलकर वन, पर्वत, पशु-पक्षियों को भस्म करना प्रारम्भ किया। सबको दुखी देख वासुदेव ने अपने तेज को शान्तकर जले हुए जीवों को फिर पूर्ववत कर दिया। इस घटना से ऋषियों को बहुत आश्चर्य हुआ। तब वासुदेव ने कहा कि महादेवजी का आधा तेज मेरे पुत्र के रूप में परिणत हुआ है। आप

लोग अपने तपोबल के कारण सर्वत्र विचरण करते रहते हैं। आप कुछ सुनाइए।

'ऋषियों के कहने पर नारदजी बोले—'एक बार हम लोग हिमालय पर्वत पर शिवजी के दर्शन करने गये थे। वहाँ पार्वतीजी ने एकाएक आकर पीछे से शिवजी के दोनों नेत्र अपने हाथों से ढक लिये। शिवजी के नेत्रों के मूंदते ही तीनों लोकों में अंधकार छा गया। लोक-कल्याण के लिए शिवजी के मस्तक में एक तीसरा नेत्र निकल आया। इस नेत्र से एक बड़ी ही प्रखर ज्योतिने निकल कर अंधकार को दूर कर दिया। ज्योति इतनी प्रखर थी कि हिमालय भस्म होने लगा। अपने पिता को संतप्त देख पार्वतीजी हाथ जोड़कर शिवजी के सामने खड़ी हो गईं। शिवजी ने अपने तेज को शान्त कर हिमालय को पूर्ववत् कर दिया। फिर पार्वती के पूछने पर कहा—'मेरे नेत्रों से ही संसार प्रकाशित होता है, इसी कारण, संसार की रक्षा अंधकार से करने के लिए, मुझे तीसरा नेत्र उत्पन्न करना पड़ा। प्राचीन समय में ब्रह्माजी ने तिलोत्तमा को उत्पन्न कर मेरे पास भेजा। वह मेरी परिक्रमा करने लगी। उसको देखने के लिए मैंने चारों दिशाओं में अपने चार मुख प्रकट किये और कहा—सब लोकों का हित करने के लिए मैं ब्रह्मचारी हूँ और देव-

ताओं की कार्य-सिद्धि के लिए पिनाकपाणि। मेरी श्री को प्राप्त करने के विचार से इन्द्र ने मेरे ऊपर वज्र का प्रहार किया था। उसीके तेज से मैं नीलकण्ठ हो गया हूँ। एक बार एक गाय के बछड़े के मुख से मेरे ऊपर दूध का फेन गिर पड़ा। मुझे कुपित देख ब्रह्माजी ने वाहन-स्वरूप यह बैल देकर मुझे शान्त किया। तभी से मैं वृषवाहन हुआ। मैं पवित्र स्थान में रहना चाहता हूँ; श्मशान से अधिक पवित्र मुझे कोई भी दूसरा स्थान न देख पड़ा। इसी कारण मैं श्मशान में निवास करता हूँ।'

इसके अनन्तर शिवजी ने विभिन्न आश्रमों, वर्णों आदि के धर्मों का विशद वर्णनकर कहा—'ब्रह्माजी का वचन है कि शूद्र भी पवित्र कार्यों द्वारा विशुद्ध आत्मा और जितेन्द्रिय होने से ब्राह्मण के समान ही सम्मान करने योग्य होता है। अच्छे स्वभाव और अच्छे कर्मों वाला शूद्र दुष्कर्मी ब्राह्मणों से श्रेष्ठ है। केवल जन्म, संस्कार, शास्त्र-ज्ञान, कुल आदि ब्राह्मणत्व के कारण नहीं हैं, ब्राह्मणत्व का प्रधान कारण तो सदाचार है। सदाचारी शूद्र भी ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मज्ञान सभी के लिए एक समान है। जिनके हृदय में निर्मल निर्गुण ब्रह्म का उदय हो, वही यथार्थ ब्राह्मण है। वर्ण-भेद तो विभाग-मात्र है। जो मनुष्य अपना और दूसरों

का हित करता हुआ अपना निर्वाह करता है और किसी कारण से भी हँसी तक में झूठ नहीं बोलता, वही सद्गति प्राप्त करता है। वेद में सभी प्रकार के मनुष्यों के धर्मों की मर्यादा निश्चित कर दी गई है। जो वेदोक्त धर्म का पालन करता है उसे सद्गति मिलती है और जो उसके विरुद्ध आचरण करता है उसे अधोगति प्राप्ति होती है। हे आदिशक्ति पार्वती! तुम तप, ज्ञान, बल तथा परोपकार में मेरे ही समान हो। तुम सती पतिव्रता हो। धर्मनिष्ठा स्त्रियाँ तुम्हारे ही चरित्र का अनुसरण करती हैं। तुम लोक-कल्याण के लिए स्त्रियों के सनातन धर्म का वर्णन करो।'

तब तर्क-वितर्क-पारदर्शी और ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न व्यक्तियों से सलाह लेना उचित समझकर गंगा, सरस्वती आदि से परामर्श करने के अनन्तर पार्वतीजी बोलीं—'सदाचारिणी, प्रियवादिनी, सुशीला तथा पतिव्रता स्त्री ही पति की सहधर्मणी कही जाती है। जो सब प्रकार से अपने स्वामी के वशीभूत होकर उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा करती और सावधानी से घर-गृहस्थी का काम चलाती है वही धर्मचारिणी मानी जाती है। पति की सेवा ही स्त्रियों का प्रधान धर्म, तप और सद्गति का कारण है। पति ही स्त्रियों का परम देवता और उसकी परम गति है। पति दरिद्री, रोगी, दुखी आदि चाहे कैसा ही हो, स्त्री को

भक्ति और प्रेम से उसकी आराधना करनी चाहिए।'

इसके अनन्तर ऋषियों द्वारा वासुदेव का माहात्म्य पूछे जाने पर शिव जी बोले—'तेजस्वी दशबाहु, दैत्य निषूदन, श्रीवत्सांक, सर्वदेव पूजित वासुदेव ब्रह्माजी से भी श्रेष्ठ हैं। उनके मस्तक से मैं, उदर से ब्रह्मा, केशों से ग्रह-नक्षत्र, रोमों से देव-दैत्य, शरीर से महर्षि, दिव्य-लोक उत्पन्न हुए हैं। यह सारा विश्व उन्हीं से उत्पन्न होता और उन्हीं में लीन हो जाता है। वे सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, परमात्मा और सब के नियन्ता हैं। जगत् के कल्याण के लिए वे मनु के शुद्ध वंश में उत्पन्न वसुदेव के पुत्र होकर प्रकट होंगे और अधर्म का नाशकर धर्म की स्थापना करेंगे।'

नारद जी बोले—हे वासुदेव, शिवजी के द्वारा इस प्रकार आप का माहात्म्य सुनकर हम लोग यहाँ आपके दर्शन करने के लिए आये हैं।' हे युधिष्ठिर! महर्षिगण ने वासुदेव की अनेक प्रकार से स्तुति की। फिर उन्हें प्रसन्न देख उनसे कहा कि परमप्रतापी कामदेव आपके यहाँ पुत्र के रूप से जन्म लेंगे। तदनन्तर वासुदेव से विदा होकर महर्षिगण अपने-अपने स्थान को चले गये। वासुदेव भी द्वारका को लौट आये। शिवजी के प्रताप से रुक्मिणी के प्रद्युम्न नामक परमप्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ।

इन्हीं कृष्णजी की बात न मानने के कारण दुष्ट दुर्योधन वीरों-सहित नष्ट हो गया।'

वैशम्पायनजी बोले—'वासुदेव की महिमा सुनकर पाण्डव, धृतराष्ट्र आदि अत्यन्त अनुग्रहीत हुए। इसके अनन्तर भीष्मजी ने विष्णु-सहस्रनाम का पाठ सुनाकर बतलाया कि भक्ति के साथ पुण्डरीकाक्ष की स्तुति करना सबसे श्रेष्ठ धर्म है। विष्णु-सहस्रनाम के पाठ से अमंगल दूर हो जाते हैं। श्रेष्ठ देवगण, पितृगण तपस्वी, महर्षि गण, पुण्यात्मा राजा एवं दाताओं के नामों के स्मरण से भी पुण्य की प्राप्ति होती है।'

अध्याय १५१-१५८

ब्राह्मणों का माहात्म्य, वायु-कार्तवीर्य-संवाद

भीष्म बोले—'तपस्वी तथा सदाचारी ब्राह्मण ही मन्त्रों और धर्म के रहस्यों को जानते हैं, इस कारण ब्राह्मण सदा आदरणीय और पूज्य हैं। इस सम्बन्ध में कार्तिवीर्य सहस्रार्जुन और वायु का संवाद प्रसिद्ध है। हैहय-वंशीय राजा कार्तवीर्य ने सेवा, दान तथा सम्मान के द्वारा महर्षि दत्तात्रेय को प्रसन्नकर पृथ्वी-भर का राज्य प्राप्त कर लिया। सबको अपने वश में कर लेने पर उन्हें घमंड होगया कि धैर्य, वीर्य, यश तथा पराक्रम में मेरे समान

कोई नहीं है। उनके इस गर्व को दूर करने के लिए आकाशवाणी हुई कि ब्राह्मण तुमसे श्रेष्ठ हैं, ब्राह्मणों की सहायता के बिना शासन का कार्य चल ही नहीं सकता। कार्तवीर्य ने कुपित होकर कहा—'ब्राह्मण अध्ययन, अध्यापन के एवं यज्ञ कराने के बहाने क्षत्रिय का सहारा लेकर अपना जीवन-निर्वाह करता है। भीख मांगकर खाने वाले नट-रूपी चीरधारी ब्राह्मण कैसे क्षत्रिय से श्रेष्ठ हो सकता है! मैं ब्राह्मणों का पराभवकर जगत को क्षत्रिय-प्रधान बनाऊँगा।'

राजा का ऐसा अभिमान देख वायुदेव ने प्रकट हो, अपना परिचय देकर कहा—'हे कार्तवीर्य! त्यागी, तपस्वी, वेदज्ञ, ब्रह्मनिष्ठ, सदाचारी ब्राह्मणों से द्वेष करना उचित नहीं है। उनसे वैर होने पर या तो तुम्हारे राज्य में विप्लव हो जायगा या तुम ही राज्य से निकाल दिये जाओगे। अग्नि, सूर्य, जल, पृथ्वी से भी श्रेष्ठ सदाचारी, ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण होते हैं। शुक्राचार्य ने दण्डक राज्य को और और्व ने ताल-जंघ को नष्ट किया था। गौतम ने इंद्र की जो दशा की थी वह स्पष्ट ही है। तुमने भी ब्राह्मण दत्तात्रेय की कृपा से ही इतनी शक्ति और सिद्धि प्राप्त की है। प्राचीन समय में जब अंग-राज ने पृथ्वी को दान कर देना चाहा था और वह कुपित होकर ब्रह्मलोकको चली गयी थी, तब कश्यपजी ने अपने

तेज को पृथ्वी में प्रविष्टकर जगत को धारण किया था। अन्त में पृथ्वी कश्यपजी की शरण में गई और उनकी कन्या बनकर प्रकट हुई थी। पूर्व समय में चन्द्रदेव की परम सुन्दरी कन्या थी। वरुणदेव उस कन्या पर मुग्ध थे। पर चन्द्रदेव ने कन्या की इच्छा के अनुसार उसका विवाह उतथ्य ऋषि से ही कर दिया। कुछ समय बाद वरुण चुपके से उतथ्य-पत्नी को हर ले गये और अपने लोक में लेजाकर उससे विहार करने लगे। उतथ्य के माँगने पर जब वरुण ने उनकी पत्नी को न लौटाया, तब ऋषि ने कुपित होकर सब जल सोख लिया। तब वरुणदेव भय से काँपते हुए ऋषि की शरण में गये और उनकी पत्नी को लौटाकर उन्होंने उनसे क्षमा माँगी। उतथ्य ने वरुणालय को फिर से जलपूर्ण कर दिया। एक बार दानवों ने स्वर्ग को जीतकर देवगण को वहाँ से निकाल दिया। देवगण अगस्त्यजी की शरण में गये। अगस्त्यजी ने अपने योगबल से दानवों को नष्टकर देवगण को फिर स्वर्ग का राज्य दिला दिया। इसी प्रकार खली नामक दैत्यों का नाशकर वशिष्टजी ने देवगण को अभय किया था। प्राचीन समय में राहु ने युद्ध में सूर्य और चन्द्रमा को बाणों से वेधकर संसार को अंधकारपूर्ण कर दिया था। तब देवगण के प्रार्थना करने पर महर्षि अत्रि ने चन्द्रमा का

रूप धारण किया एवं सूर्य को अपने तपोबल से प्रकाशित किया और साथ ही दानवों को नष्टकर देवगण तथा तीनों लोकों का संकट दूर किया। च्यवनजी ने इन्द्र के विरोध करने पर भी उनके वज्र वाले हाथ को स्तम्भित कर अश्विनीकुमारों को यज्ञ में भाग दिलाया और सब देवगण के साथ उन्हें सोम रस पिलाया था। उसी समय च्यवनजी के तपोबल से मद नामक भीषण पुरुष ने उत्पन्न होकर इन्द्र तथा देवगण को अपने मुख में रख लिया था। तब देवगण के साथ इन्द्र ने च्यवनजी की शरण में जाकर उनसे क्षमा माँगी। च्यवनजी ने शान्त होकर मद को जुआ, शिकार, शराब और स्त्री-व्यसन में बाँटकर देवगण को अभय कर दिया। जिस समय इन्द्र और देवगण मद के मुख में चले गये थे उसी समय कप नामक दानवों ने स्वर्ग पर अधिकार कर लिया था। देवताओं के कहने से ब्राह्मणों ने कपों के विनाश के लिए यज्ञ आरम्भ किया। इस बात को सुनकर दानवों ने ब्राह्मणों से कहा—'आप हमारे नाश के लिए यज्ञ न करें। हम सब विद्वान, यज्ञ करनेवाले, सत्यव्रती और गुरुजनों की आज्ञा माननेवाले हैं। हम किसी का हिस्सा अधर्मपूर्वक नहीं लेते। हम रजस्वला स्त्री का संसर्ग, असमय में स्त्री-संग, 'वृथा मांस-भक्षण', दिन में शयन और सबेरे अक्ष-क्रीड़ा

नहीं करते। हम लोग सदा शुभ कर्म में लगे रहते हैं।' ब्राह्मणों ने दानवों की बात न मानी। उन्होंने दानवों का नाशकर देवगण को अभय कर दिया। हे कार्यवीर्य! तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ, सदाचारी, ब्राह्मणों का प्रभाव देवगण से भी बढ़कर है।' पवनदेव के उपदेश को सुनकर कार्तवीर्य ने ब्राह्मणों से द्वेष करना छोड़ दिया। वे श्रद्धापूर्वक उनकी भक्ति और सेवा करने लगे।

अध्याय १५८-१६१

श्रीकृष्ण-महिमा, ब्राह्मण-महिमा, दुर्वासा का रुक्मिणी को रथ में जोतना, शिव-महिमा

भीष्म बोले—आज मेरी इन्द्रियाँ शिथिल हो रही हैं, मुझमें बोलने की सामर्थ्य विशेष नहीं है। अब सबके आदि कारण और धर्म-रक्षक वासुदेव तुम्हें उपदेश देंगे।' यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले—'धर्मराज! ब्राह्मणों में अनन्त शक्ति है। एक बार प्रद्युम्न ब्राह्मणों के विरुद्ध बातें करने लगे। तब मैंने ब्राह्मणों का माहात्म्य बतलाकर उन्हें शान्त किया था। एक बार दुर्वासा यह कहते हुए घूमने लगे कि मैं किसी गृहस्थ के यहाँ रहना चाहता हूँ, किन्तु मेरी सेवा में कोई भी त्रुटि न होने पावे; नहीं तो मैं क्रोधित हो जाऊँगा। उनके शाप के भय से कोई भी उन्हें

अपने यहाँ रखने का साहस न कर सका। अन्त में मैं साहसकर उन्हें अपने यहाँ लाया और सावधानी से उनकी सेवा करने लगा। वे कभी अनेक मनुष्यों का भोजन अकेले ही खा जाते, कभी भोजन बनवाते किन्तु भोजन के तैय्यार होते ही बिना भोजन किये ही बाहर निकल जाते और दिन भर न लौटते। कभी आधी रात के समय ऐसी वस्तु माँगते कि जिसका मिलना कठिन होता। एक दिन उन्होंने पलँग, बिस्तर, दिव्य पदार्थ, रत्न-जटित अलंकारों से सुसज्जित सुन्दरी दासियों आदि को आग लगाकर जला डाला। इसके बाद वे बाहर निकले और मुझसे बोले कि मुझे तुरन्त खीर खिलाओ। मैंने पहले ही से अनेक प्रकार के व्यंजन बनवा रखे थे। बड़ी नम्रता से मैंने खीर लाकर परोस दी। वे प्रसन्न होकर खाने लगे। फिर कुछ सोचकर उन्होंने जूठी खीर उठाकर मुझको दी और कहा कि तुम इसे अपने सारे शरीरमें लगा लो। मैंने शान्तिपूर्वक उस जूठी खीर को अपने सारे शरीर में मल लिया। एक ओर रुक्मिणी खड़ी हुई यह सब देख-देखकर मुस्करा रही थीं। दुर्वासाजी ने दौड़कर उनके सारे शरीरमें जूठी खीर पोत दी। फिर उन्होंने रुक्मिणी को पकड़कर रथ में जोता और स्वयं रथ पर बैठकर कोड़े से उन्हें बुरी तरह पीटते हुए वे नगर की सड़कों पर घुमाने

लगे। कोड़े की मार और रथ खींचने के परिश्रम के कारण रुक्मिणी बारबार हाँफती-हाँफती गिर पड़तीं और मूर्छित हो जातीं। इतने पर भी दुर्वासाजी ने उन्हें न तो रथ से ही छोड़ा और न कोड़े लगाना ही बन्द किया। द्वारका भर में खलबली मच गई, किन्तु मेरे भय से कोई कुछ न कह सका। अन्त में जब रुक्मिणी इतनी अशक्त हो गईं कि वे एक पग भी रथ को खींचकर न ले जा सकीं तब दुर्वासाजी उन्हें रथ से खोलकर दक्षिण की ओर घसीटते हुए ले जाने लगे। मैं भी जूठी खीर लपेटे, नंगे पैर बराबर उनके पीछे-पीछे दौड़ रहा था। अन्त में रुक्मिणी को छोड़कर ऋषि मुझसे बोले—'हे वासुदेव! इस समय क्रोध को जीतकर तुमने मुझे और सारे संसार को जीत लिया है। तुम सभी बातों में सबसे श्रेष्ठ होओगे। जूठी खीर लगाने के कारण तुम्हारे शरीर में वृद्धावस्था, व्याधि, पीड़ा, अस्त्र, शस्त्र आदि किसी का भी प्रभाव न पड़ सकेगा। तुमने अपने पैरों के तलवे में खीर नहीं लगाई, यह अच्छा नहीं हुआ। तो भी मेरे आशीर्वाद के कारण मृत्यु तुम्हारे वश में होगी। रुक्मिणीजी भी यश, कीर्ति आदि सभी गुणों में सबसे बढ़कर होंगी और तुम्हारी सोलह हज़ार रानियों में सबसे श्रेष्ठ होंगी।' यह कहकर दुर्वासाजी अन्तर्धान हो गये। उनकी कृपा से जली हुई दासियाँ, सामग्री आदि

सभी पूर्ववत हो गई। महर्षि दुर्वासा ने प्रसन्न होकर मुझे देवदेव महादेव का माहात्म्य और आराधना की विधि बतलाई थी। उसी के कारण मैं इस पद को प्राप्तकर सका हूँ। शिवजी ही संसार के उत्पन्न, पालन और नाश करने वाले हैं। उन्होंने त्रिपुर आदि को नष्टकर देवगणकी रक्षा और धर्म की स्थापना की थी। उन्हीं सर्वव्यापी, सर्व-नियंता शिवजी ने दुर्वासा के रूप में मेरी परीक्षा लेकर मेरे ऊपर दया की थी। शिवजी की दो मूर्तियां हैं। एक तो अत्यन्त भयानक और दूसरी मंगलमय। अग्नि, बिजली तथा सूर्य उनकी भयानक मूर्त्तियाँ है और धर्म, जल तथा चन्द्रमा उनके सौम्य एवं मंगलमय रूप हैं। वे ही रूद्ररूप से संहार करने वाले हैं। इन्द्र, कुबेर आदि का ऐश्वर्य उन्हीं की कृपा का फल है। वे ही सबके कल्याणकर्त्ता महेश्वर हैं।'

अध्याय १६२-१६५

धर्म के प्रमाण, शुभगति प्राप्त करनेके उपाय

भीष्म बोले—'धर्म के विषय में संदेह होने पर प्रत्यक्ष, आगम (वेदादि) और शिष्टाचार, ये तीन प्रमाण माने गये हैं। हेतुवादी (तार्किक) योगाभ्यास के द्वारा ब्रह्म का प्रत्यक्ष प्रमाण पा सकते हैं। उद्योग करने पर धर्म

की रक्षा होती है, किन्तु धर्मविप्लव अवश्य होता है। ऐसे समय में वेद और धार्मिक विद्वानों द्वारा ही यथार्थ धर्म की रक्षा होती है। धर्म के तीन प्रकार के प्रमाण होने पर भी धर्म के तीन भिन्न रूप नहीं हैं। धर्म तो सनातन और एक है। अहिंसा, सत्य, अक्रोध और दान, ये ही चार धर्म के प्रमुख अंग हैं। इन्हीं से संसार की रक्षा होती है। सदा परोपकार और आत्मोन्नति में लगा रहनेवाला सज्जन है और अकारण परद्रोह और दुर्व्यसनों में फँसा रहने वाला दुर्जन है। गुरुजनों की अपेक्षा और दूसरे पवित्र-तीर्थ नहीं हैं। हृदय से बढ़कर पवित्र वस्तु, ज्ञानसे बढ़कर दूसरा श्रेष्ठ अन्वेषण का विषय और संतोष की अपेक्षा और दूसरे श्रेष्ठ सुख नहीं हैं। मनुष्य दान करनेसे सुख-भोगी, वृद्धों की सेवा करने से मेधावी, हिंसा न करने से दीर्घायु होता है। सभी अपने-अपने कर्मों के अनुसार उत्तम-अधम गति पाते और स्वर्ग-नरक को भोगते हैं तथा नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेते हैं। कर्त्तव्य समझकर ही समय के अनुसार धर्म का पालन करना चाहिए। सकाम धर्म अनित्य है और सकाम धर्म से मिला हुआ फल अनित्य है। निष्काम धर्म नित्य है, अतएव उसके कारण मिला हुआ फल भी नित्य है। इसी कारण स्वर्ग सुख आदि अनित्य होते हैं। पूर्व पुण्यों के उदय होने

पर ही शुभ कामों में मन रमता है। पुण्यात्मा पुरुषों के नामों के स्मरण से धर्म में रुचि होती है और मनुष्य का कल्याण होता है। मनुष्य को अपने कल्याण के निमित्त सावधान होकर प्रयत्न करना चाहिए।

अध्याय १६६-१६८

भीष्म का अद्भुत शरीर-त्याग, अन्त्येष्टि क्रिया, गंगाजी का विलाप

वैशम्पायनजी बोले—'धर्मोपदेश के अनन्तर भीष्मजी ने मौन धारण किया। व्यासदेव की अनुमति से पाण्डव, श्रीकृष्णजी आदि विदा होकर हस्तिनापुर गये। राज्य की समुचित व्यवस्थाकर वे चन्दन, अगर आदि लेकर फिर भीष्म के पास गये। भीष्म ने आँखें खोलकर सबको देखा। फिर वे बोले—'तीक्ष्ण बाणों पर पड़े हुए मेरे ये अट्ठावन दिन सौ वर्षों के समान बीते हैं। अब मैं इस माघ मास के शुक्ल पक्ष में शरीर छोड़ूँगा। हे युधिष्ठिर! तुम धर्म के तत्वों को जानते हो। अपने-अपने कर्मों के कारण काल की प्रेरणा से सभी योद्धा मरे हैं। उनके लिए तुम्हारा शोक करना व्यर्थ है। भवितव्यता को कोई भी टाल नहीं सकता। अब तुम धर्म का पालन करते हुए सब की रक्षा और न्याययुक्त शासन करो। हे धृतराष्ट्र! तुम अपने

दुरात्मा पुत्रों का शोक छोड़कर, इन धर्मात्मा पाण्डवों को ही अपना पुत्र मानकर संतोष करो। सत्य के समान और कुछ नहीं है, इस कारण सदा सबको सत्य का पालन करना चाहिए।' यह कह तथा सबसे शरीर-त्याग के निमित्त अनुमति लेकर एवं पाण्डवों को सर्वनियंता श्री कृष्णजी के हाथों में सौंपकर भीष्म ने मौन धारण कर अपने प्राणों को क्रमशः ब्रह्मरंध्र की ओर खींचना प्रारंभ किया। उनका प्राणवायु रुककर जिस अंग को छोड़कर ऊपर चढ़ जाता था उस स्थान से बाण आप-से-आप बाहर निकल जाते थे और घाव भर जाते थे। यह देख, सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। अन्त में उनके प्राण ब्रह्मरंध्र फोड़कर दिव्यलोक को चले गये। उनका विधिवत् अग्नि-संस्कार कर पाण्डव सब के साथ गंगा के तीर पर गये। वहाँ भगवती भागीरथी अपने अलौकिक, महापराक्रमी, अद्वितीय विद्वान, दृढ़ प्रतिज्ञ, धर्मपरायण पुत्र की मृत्यु से दुखी हो उनके गुणों का बखानकर विलाप करने लगीं। तब व्यासदेव, श्रीकृष्णजी आदि ने अनेक प्रकार से समझाकर उन्हें शांत किया। फिर भीष्म को जलांजलि दे सब अपने-अपने स्थानों को गये।

(अनुशासन पर्व समाप्त)

महाभारत

अश्वमेध पर्व

(आश्वमेधिक पर्व)

अध्याय १-४

युधिष्ठिर का शोक, व्यास आदि का समझाना, मरुत्त की कथा

वैशम्पायनजी बोले—'भीष्म को तिलांजलि देने के बाद युधिष्ठिर बार-बार मूर्छित होने और विलाप करने लगे। धृतराष्ट्र, श्रीकृष्णजी तथा व्यासदेव ने उन्हें समझाया कि युद्ध करना ही क्षत्रिय की जीविका है, युद्ध में मरकर दिव्य-लोकों में गये हुए वीर फिर लौट नहीं सकते, उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। और फिर उन्हें यज्ञ कर पुण्य के भागी बनने का उपदेश देकर शान्त किया। युधिष्ठिर ने उदास होकर कहा कि इस समय ख़ज़ाना ख़ाली है; यज्ञ में अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है; मैं बिना धन के यज्ञ, दान आदि कैसे करूँगा? उन्हें धीरज देते हुए व्यासदेव ने कहा—'पूर्व समय में राजा मरुत्त ने हिमालय पर यज्ञ कर इतना सोना ब्राह्मणों को दान दिया था कि वे उसे उठा-

कर अपने घरों को नहीं ले जा सके थे। वह धन अभी तक वहीं पड़ा हुआ है। तुम उसी को लाकर अपना यज्ञ करो। सत्ययुग में वैवस्वत मनु ने पृथ्वी का शासन किया था। उनके बाद उनके पुत्र प्रसन्धि, उनके क्षुप, उनके इक्ष्वाकु, उनके विंश, उनके विविंश हुए और उन्होंने क्रम से राज्य किया। राजा विविंश के खनीनेत्र आदि पंद्रह पराक्रमी पुत्र हुए। खनीनेत्र ने अपने सब भाइयों को परास्त कर एकछत्र राज्य किया। किन्तु प्रजा उससे संतुष्ट नहीं थी। अतएव प्रजा ने खनीनेत्र को गद्दी से उतार दिया और उसके पुत्र सुवर्चा को राजा बनाया। राजा होकर सुवर्चा ने प्रजा को खूब संतुष्ट किया। किन्तु संयोगवश उसके रथ, वाहन, कोष आदि सभी नष्ट हो गये। ऐसे संकट के समय में उन राजाओं ने, जिन्हें सुवर्चा ने जीतकर अपने अधीन कर लिया था, उस पर चारों ओर से आक्रमण किया। किन्तु संतुष्ट प्रजा की सहायता पाकर सुवर्चा ने सबको परास्तकर शत्रुओं को अपने वश में कर लिया। तभी से उसका नाम करन्धम पड़ा। करन्धम के पुत्र अविक्षित हुए। उन्हें अंगिरा ऋषि ने सौ अश्वमेध यज्ञ कराये थे। उनके पुत्र मरुत्त ने पृथ्वी को जीतकर अपूर्व यज्ञ किया जिसमें कुण्ड, आसन, पात्र आदि सभी सोने के थे।'

अध्याय ५-१०

मरुत्त का स्वर्णमय यज्ञ, बृहस्पति और संवर्त की शत्रुता

युधिष्ठिर ने यज्ञ एवं सोने के विषय में पूछा। व्यासजी बोले—'बृहस्पति और संवर्त दोनों ही महर्षि अंगिरा के पुत्र थे। बृहस्पति अपने भाई से ईर्ष्या करते और उन्हें सताते थे। तंग आकर संवर्त सब कुछ छोड़ नंगे बदन वन को चले गये। अंगिराजी राजा करंधम के पुरोहित थे। करन्धम के पुत्र के पुत्र महाप्रतापी मरुत्त से इन्द्र डाह करते थे। किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी वे मरुत्त से श्रेष्ठ न हो सके। तब इन्द्र ने बृहस्पति को अपना पुरोहित बनाकर उनसे कहा कि मैं देवताओं का राजा और तीनों लोकों का स्वामी हूँ, आप मेरे पुरोहित होकर मरुत्त ऐसे मनुष्य की पुरोहिती न कीजिये। देवराज इन्द्र की बात मानकर बृहस्पति ने प्रतिज्ञा की कि मैं न तो मरुत्त का पुरोहित बनूँगा और न मनुष्यों को यज्ञ ही कराऊँगा।

'इधर राजा मरुत्त ने यज्ञ के लिए सब तरह का प्रबंध कर बृहस्पति से कहा कि आपके कहने से मैंने यज्ञ की सारी सामग्री एकत्र कर ली है, अब आप अपने वचनों के अनुसार मुझे यज्ञ कराइये। बृहस्पति ने अपनी प्रतिज्ञा की बात बतलाकर कहा कि तुम किसी दूसरे को पुरोहित बनाकर यज्ञ कर लो, मैं तो अब तुम्हें यज्ञ नहीं करा सकता।

बहुत समझाने से भी जब बृहस्पति न माने तो मरुत्त निराश हो वहाँ से चले गये। रास्ते में उन्हें देवर्षि नारद मिले। उन्होंने सब हाल सुनकर मरुत्त से बतलाया कि महातपस्वी संवर्त काशी में विश्वेश्वर के दर्शन करने जाते हैं। सबेरे मंदिर के द्वार पर एक मुर्दा रख देना। जो उस मुर्दे को देखकर भाग जाय, और बस्ती से बाहर दम ले, उसी के पीछे-पीछे जाकर उससे पुरोहित होकर यज्ञ कराने की तुम प्रार्थना करना। वे ही संवर्त होंगे। यदि वे पूछें कि यह किसने बतलाया है, तो कह देना कि नारदजी ने सब बातें बतलाईं हैं और अब वे अग्नि में प्रवेश कर गये हैं। राजा ने ठीक वैसा ही किया। पहले तो संवर्त ने राजा के ऊपर थूककर और कीचड़-मिट्टी डालकर उन्हें भगाना चाहा। किन्तु राजा ने न तो बुरा माना और न उनका पीछा ही छोड़ा। तब हारकर संवर्त ने उनसे आने का कारण पूछा। राजा ने कहा कि आप मुझे यज्ञ करा दें। संवर्त ने कहा कि मैं अपने बड़े भाई बृहस्पति की आज्ञा के बिना यज्ञ न कराऊँगा। या तो तुम बृहस्पतिजी को प्रसन्नकर उनसे यज्ञ कराने की प्रार्थना करो, अथवा मेरे लिए उनकी आज्ञा प्राप्त कर लो। राजा ने सारी बातें बतलाकर कहा कि अब मैं किसी तरह भी बृहस्पतिजी के पास न जाऊँगा। संवर्त ने कहा कि बृहस्पति और इंद्र की अनुमति लिये बिना

यदि मैं आपको यज्ञ कराऊँगा तो दोनों ही बहुत रुष्ट होंगे। आप प्रतिज्ञा करें कि उन दोनों के कुपित होने पर आप हर तरह से सदा मेरी रक्षा करेंगे। राजा ने प्रतिज्ञा की। तब संवर्त ने कहा कि मैं किसी लोभ से नहीं बल्कि अपने भाई और देवराज इंद्र को नीचा दिखलाने के लिए अवश्य ही श्रेष्ठ यज्ञ कराऊँगा। जैसा मैं कहूँ वैसा ही तुम्हें करना होगा। राजा राज़ी हो गये।

'संवर्त के कहने से राजा मरुत्त ने हिमालय के मुंजवन में जाकर अपनी तपस्या और स्तुति के द्वारा शंकरजी को प्रसन्नकर उनसे सोने का पहाड़ प्राप्त किया। फिर संवर्त के पास जाकर उन्हीं के आदेश के अनुसार मरुत्त ने पात्र, वेदी, आसन आदि सोने के ही बनवाये। यह सुनकर कि मरुत्त को यज्ञ कराकर संवर्त विपुल धन-ऐश्वर्य के अधिपति बनेंगे, बृहस्पति चिन्ता के मारे पीले पड़ने और दुबले होने लगे। इंद्र ने चिन्तित हो कहा—'आप देवगण के पुरोहित हैं। आप की सभी इच्छाएँ पूरी हो चुकी हैं। आप ने मृत्यु और बुढ़ापे को भी जीत लिया है। फिर आप दुखी क्यों हैं?' बृहस्पतिजी बोले—'आपने सभी शत्रुओं को जीत कर त्रैलोक्य का आधिपत्य प्राप्त किया है। किन्तु दानवों की बढ़ती देख आप चिन्तित हो उठते हैं। शत्रु की वृद्धि देख जो दुःख होता है वह आपसे छिपा नहीं है। संवर्त मेरे

शत्रु हैं। उनकी बढ़ती देख मैं कैसे शान्त रह सकता हूँ।'

'इन्द्र ने अग्निदेव को भेजकर मरुत्त से कहलाया कि यदि आप बृहस्पतिजी से यज्ञ करायें तो देवगण आपको अमर कर देंगे और स्वर्ग का कोई भी पदार्थ आपके लिए दुर्लभ न होगा। तब राजा ने उत्तर दिया कि मैं किसी बात पर भी संवर्त को छोड़कर दूसरे से यज्ञ न कराऊँगा। फलतः हारकर अग्निदेव चले आये। इन्द्र ने उन्हें फिर भेजना चाहा, पर वे संवर्त के शाप के कारण फिर मरुत्त के पास न गये। तब इन्द्र के कहने से गंधर्वराज ने जाकर मरुत्त से कहा कि यदि तुम बृहस्पति से यज्ञ न कराओगे तो देवराज तुम्हें वज्र मारकर नष्ट कर देंगे। तो भी मरुत्त ने संवर्त को न छोड़ा। इसके बाद इन्द्र ने मरुत्त को डराने का उपक्रम किया, किन्तु संवर्त के प्रभाव से मरुत्त की कुछ हानि न हो सकी। अन्त में संवर्त के तपोबल के कारण, इन्द्र को, देवगण के साथ यज्ञ में जाकर, अपने-अपने यज्ञ-भाग को लेना पड़ा। राजा मरुत्त ने प्रसन्न होकर ब्राह्मणों को इतना अधिक सोना दिया कि वे उसका बहुत थोड़ा हिस्सा ही अपने घर ले जा सके। बचा हुआ सोना वहीं पड़ा रह गया।'

युधिष्ठिर उस सोने को लाने की सलाह करने लगे।

अध्याय ११-१५

बंधन से मुक्त कैसे हो? अहंकार-विजय, काम-गीता

श्रीकृष्णजी ने कहा—हे धर्मराज ! अज्ञानियों की तरह शोक करना आपको शोभा नहीं देता। कुटिलता मृत्यु का और सरलता ब्रह्म-प्राप्ति का कारण है। यही यथार्थ ज्ञान है। आप अपने अन्दर के प्रबल शत्रु अहंकार को जीतने का प्रयत्न कीजिये। प्राचीन समय में अहंकार ने जीवात्मा को घ्राणेन्द्रिय के वशीभूतकर सुगंध लेने में लगाया। आत्मा ने विवेक के द्वारा उसे परास्त किया। तब अहंकार ने क्रमशः जीभ के द्वारा रसास्वादन में, नेत्र के द्वारा वस्तु-दर्शन में, त्वचा के द्वारा स्पर्श-सुख में, कर्ण के द्वारा मधुर तान सुनने में फँसाना चाहा, किन्तु हर बार जीवात्मा ने विवेक के द्वारा उसे परास्त कर अपने को बचाया। अन्त में अहंकार जीवात्मा में प्रविष्ट हो गया। तत्वज्ञान के द्वारा ही विवेक प्राप्त कर जीवात्मा अहंकार और मोह से छुटकारा पा सकता है। हे धर्म-राज ! तुम भी तत्वज्ञान का सहारा लेकर विवेक द्वारा अहं-कार और मोह को दूर कर दो। इस संसार में दो तरह की व्याधियाँ होती हैं; शारीरिक और मानसिक। कफ, वात, पित्त से शरीर बना है। इसी तरह सत्व, रज और

तम ये तीन गुण आत्मा के हैं। जब शरीर के अथवा आत्मा के तीनों गुण सम भाव में रहते हैं, तब मनुष्य के शरीर और आत्मा दोनों ही स्वस्थ रहते हैं। किन्तु इनमें से एक भी गुण के घटने से दूसरा गुण बढ़ जाता है और तब कोई-न-कोई व्याधि उत्पन्न हो जाती है। अहंकार के कारण ही गुणों में न्यूनाधिकता होती है। इस कारण अहंकार को जीते विना मनुष्य शारीरिक-मानसिक व्याधियों से छुटकारा नहीं पा सकता। अहंकार से युद्ध करने में सेना, भाई आदि किसी दूसरे से सहायता नहीं मिल सकती। यदि इस युद्ध में परास्त हो गये तो फिर दुःखों का अन्त नहीं है। इस कारण अपने मन को दृढ़ कर अहंकार पर विजय प्राप्त करो और शोक से मुक्त होकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करो। यही मुख्य कर्तव्य है।'

'हे धर्मराज! जो मनुष्य वन में जाकर फल-मूल खाकर तप में लगा रहता है, किन्तु विषय-वासना का त्याग नहीं कर सकता, वह निश्चय ही संसार के बंधन में जकड़ा रहता है। केवल राज्य को त्यागकर वन में जाने से ही सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। केवल ममता तथा विषयासक्ति त्याग देने से ही सिद्धि की, ब्रह्म की, प्राप्ति हो सकती है। जो मनुष्य सम्पूर्ण संसार का अधीश्वर होकर और हत्याएँ करके भी ममता का त्याग कर देता है वह संसार के बंधन

में नहीं पड़ता। इच्छाओं को तथा ममता को जीत लेना ही यथार्थ धर्म और मोक्ष का बीज है। प्राचीन पंडितों ने 'काम गीता' का विवेचन किया है। कामना का कहना है कि यज्ञ, वेदाध्ययन, तपस्या आदि के द्वारा मैं कभी नहीं जीती जा सकती। मैं तप करनेवाले को तपस्या के रूप में और मोक्षार्थी को मोक्ष की आकांक्षा के रूप में परास्त कर देती हूँ। मैं अविनाशी हूँ। मेरे जीतने का उपाय केवल निर्ममता और योगाभ्यास मात्र है। हे धर्मराज! इच्छाओं को निर्मूल कर देना बहुत कठिन है। अतएव आप अपनी इच्छाओं को धार्मिक तथा परोपकार के कामों में लगाकर यज्ञ द्वारा अपने शोक को दूर कीजिये। इसी में आपका कल्याण है।'

सबके उपदेशों से युधिष्ठिर का शोक दूर हो गया। क्रिया-कर्म से निवृत्त होकर वे धृतराष्ट्र के साथ हस्तिनापुर में जाकर धर्मपूर्वक राज्य करने लगे। श्रीकृष्णजी ने कुछ दिन बाद द्वारका जाने की अनुमती चाही।

अनुगीता पर्व

अध्याय १६-१९

गीता का माहात्म्य, मोक्ष कैसे मिले?

वैशम्पायन बोले—'एक बार अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से

सभा में प्रार्थना की कि आप मुझे एक बार फिर से 'गीता' का उपदेश करें, मैं बुद्धि के दोष से आप के ब्रह्मज्ञान-संबंधी—गीता के—उपदेश को भूल गया हूँ। श्रीकृष्णजी ने उत्तर दिया—'यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ कि तुम गीता के उस दिव्य उपदेश को भूल गये हो। मैंने योगबल के द्वारा वह उपदेश दिया था। अब मैं भी वह उपदेश ज्यों-का-त्यों तुम्हें नहीं दे सकता। किन्तु मैं इस समय तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। एक बार एक ब्राह्मण स्वर्ग, ब्रह्मलोक आदि में भ्रमण करने के बाद मेरे पास आये। मैंने उनका उचित आदर सत्कारकर उनसे मोक्ष धर्म जानना चाहा। उन्होंने कहा कि प्राचीन समय में काश्यप नामक ब्राह्मण की सेवा से प्रसन्न होकर तत्त्वार्थ-कुशल, सर्वत्रगामी, शास्त्र-मर्मज्ञ, जीवन्मुक्त, जितेन्द्रिय, अन्तर्धान-शक्ति संपन्न, सुख-दुःख-जन्म-मृत्यु-पाप-पुण्य के ज्ञाता, सिद्ध महापुरुष ने जो उपदेश दिया था उसी को मैं सुनाता हूँ। सिद्ध बोले—'मनुष्य सदा अपने कर्मों के अनुसार गति पाता है। कोई भी सदा न तो सुखी ही रह सकता और न एक स्थान या लोक में ही स्थित रह सकता है। मैंने अनेक बार जन्म-मरण के दुःख भोगे हैं और नाना प्रकार की यातनाएँ सही हैं। अब सब सांसारिक विषयों को छोड़ने के बाद मैं

इस अवस्था को प्राप्त कर सका हूँ। मनुष्य शुभ कर्मों के कारण दिव्य-लोकों को जाता है और अशुभ कर्मों के कारण नरक में गिरता है। अच्छे-बुरे कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। आत्मा मन की सहायता से सब काम करता है। कर्मानुसार स्वर्ग या नरक की अवधि पूरी कर, अथवा एक शरीर को छोड़कर जीव माता के गर्भ में प्रवेश करता है। शरीर में जीव के प्रवेश करते ही सारा शरीर चेतन और जीवमय हो जाता है। जीव ही सब अंगों का संचालन करता है। ब्रह्माजी ने सबसे पेहले स्वयं शरीर धारण कर, फिर अन्य जीवात्माओं के शरीर की कल्पना करके चराचर विश्व की सृष्टि का प्रारंभ किया। उन्होंने शरीर को अनित्य बनाया है और जीव के अनेक शरीर धारण करने के नियम बनाये हैं। जो मनुष्य सुख-दुःख को तथा संसार को अनित्य; शरीर को अपवित्र वस्तुओं का संग्रह; मृत्यु को कर्मों का फल; जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, लाभ-हानि, प्रिय-अप्रिय, शत्रु-मित्र आदि सभी को समान समझता है; जो स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर के अभिमान को त्याग, चिन्ता-शून्य हो, ब्रह्म में लीन रहता है; जो सब का मित्र, सहिष्णु, शान्तिप्रिय, वीतराग, जितेन्द्रिय, भय-क्रोध हीन है, जो किसी का अपमान नहीं करता, जो किसी के द्रव्य को लेने की इच्छा नहीं करता; जो

स्त्री-पुत्र-धन-यश के मोह को त्याग देता है; जो सदा अपने दोषों को देखते रहता है; जिसके हृदय में सदा वैराग्य रहता है; जो बुद्धि के बल से सभी प्रकार की इच्छाओं को त्याग देता है; जो निर्द्वन्द्व और अपरिग्रह होकर तप से इंद्रियों तथा मन को वश में कर लेता है तथा एकाग्रचित्त होकर आत्मा में मन का योगकर देता है, वही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, परिग्रह आदि से रहित; अज्ञेय, अहंहारहीन, स्वयंभू, निर्गुण, गुणभोक्ता, शाश्वत, अव्यय, परमपुरुष परमात्मा को प्राप्तकर संसार के बंधनों से छूट सकता है। जब योगी योगबल से आत्मा को शरीर से भिन्न देख और समझ लेता है, तब उसपर मृत्यु, जरा, हर्ष, शोक, अभाव आदि किसी का भी आक्रमण नहीं हो सकता। संसार में योगी से बढ़कर सुखी दूसरा कोई भी प्राणी नहीं होता। आत्मा में मन को लगाकर, संसार के तथा वृद्धावस्था के क्लेशों से मुक्त होकर योगी निर्विघ्न निर्वाण सुख का अनुभव करता है। योग का अभ्यास करके योग के ऐश्वर्य का उपयोग करते हुए योगाभ्यास को शिथिल करना योगी को उचित नहीं है। इन्द्रियों को वश में करके शरीर भर में व्याप्त ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए। योगी सबसे पहले शरीर से भिन्न आत्मा का दर्शन करता है। फिर आत्मा को ब्रह्म में लीन करके, एकाग्रचित हो निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार

करता है। निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर मोक्षपद प्राप्त होता है। यही सबसे गूढ़ रहस्य है।'

श्रीकृष्णजी बोले—'हे अर्जुन! इस रहस्य को प्राप्त कर वह ब्राह्मण मेरे पास आया था। जिसकी बुद्धि अपरिपक्व है और जिसका मन चंचल है वह इस विषय को नहीं समझ सकता। यह रहस्य देवताओं को भी नहीं बतलाया जाता। तुम इसके अनुसार चलकर योगसिद्धि प्राप्त करो।'

अध्याय २०-३४

ब्राह्मण-ब्राह्मणी संवाद; इन्द्रियों, मन, प्राण-वायु आदि को वश में करना; ओम् से भिन्न २ भाव; हिंसा धार्मिक. यथार्थ विजय और राज्य, श्रीकृष्णजी के मन-बुद्धि

श्रीकृष्णजी बोले—'प्राचीन काल में एक ब्राह्मणी ने अपने तपस्वी पति से वन में कहा कि पति के कर्मों के अनुसार ही स्त्री फल पाती है। आप सब कर्मों को छोड़कर यहाँ बैठे हैं, इस कारण मुझे भय है कि कहीं मुझे नरक न जाना पड़े। इसपर हँसकर तपस्वी ने उत्तर दिया—'मनुष्य कर्मों के फेर में पड़कर अनेक दुष्कर्म कर डालता है और पाप का भागी बनता है। मन-वचन-शरीर से किये गये कर्मों के बंधन में फँसकर मनुष्य को जन्म-मरण के कष्ट

सहने पड़ते हैं। इसी से मैं यहाँ एकान्त में आत्म-ज्ञान के लिए प्रयत्न कर रहा हूँ। आत्म-ज्ञान हो जाने पर सब बंधन छूट जाते हैं तथा परमात्मा का साक्षात्कार होनें से मोक्ष प्राप्त हो जाता है। उसी परमात्मा से प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान नामक पाँच वायु उत्पन्न होकर शरीर को जीवित रखते हैं। प्राणायाम के द्वारा योगी द्वन्द्वों से मुक्त होकर आत्मदर्शन कर सकता है। इस शरीर में दस इन्द्रियों के तथा मन और बुद्धि के द्वारा मनुष्य रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि का हवन करता हुआ यज्ञ करता रहता है। जीवात्मा ही गार्हपत्य अग्नि-स्वरूप है। इस अग्नि में अन्न आदि का हवन करने से ही वाणी का प्रादुर्भाव होता है। प्राणवायु की सहायता से मन उस वाणी पर विचार करता है। मन वाणी से श्रेष्ठ है। सांसारिक विषय मन के अधीन हैं। पारलौकिक विषयों पर वाणी का आधिपत्य है; किन्तु उन्हें भी वाणी के द्वारा मन अपने अधीन कर लेता है। प्राण और अपान मन की विशेष वृत्तियाँ हैं। और प्राण तथा अपान के द्वारा ही वाणी उत्पन्न होती है। इसी कारण कुम्भक के समय वाणी नहीं निकलती। प्राण वायु की सहायता से ही वाणी उत्पन्न हो सकती है। वायु का, प्राण के द्वारा पुष्ट होकर अपान-रूप, अपान से पुष्ट होकर समान-रूप होता है। ये सभी वायु अपने-अपने स्थान

पर श्रेष्ठ हैं; किन्तु कोई भी एक वायु अन्य सभी से श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि किसी भी एक के लय होने से बाक़ी चारों का न तो लय हो जाता और न किसी एक के संचारित होने से अन्य सभी का संचार हो सकता है। प्राणवायु के अधीन केवल अपान है, अपान के अधीन केवल प्राणवायु है, व्यान के अधीन केवल समानवायु है, उदान के अधीन केवल व्यानवायु है। उदान किसी के अधीन नहीं है। उदान वायु प्राणवायु को घेरे रहता है। इसी कारण निद्रितावस्था में भी प्राण और अपान मनुष्य को नहीं छोड़ सकते। उदानवायु को संयत कर योगी प्राणायाम द्वारा आत्म-दर्शन करता है। महर्षि देवमत के पूछने पर नारद ने बतलाया था कि प्राणी जड़-रूप उत्पन्न होता है, बाद में प्राण और अपान का संचार होता है। प्राणी के शरीर में नाक सूँघने का, कान सुनने का, आँख देखने का, जीभ स्वाद लेने का, त्वचा स्पर्श का, मन संकल्प-विकल्प (संदेह) का, और बुद्धि निश्चय करने का काम करती है। वे कोई भी एक दूसरे का काम नहीं कर सकते, क्योंकि वे सर्वज्ञ नहीं हैं। नाक देख नहीं सकती, न आँख सूँघ सकती है। इंद्रियों की सहायता के बिना मन विषयों का सेवन नहीं कर सकता, अतएव सब से श्रेष्ठ होने पर भी मन विषय-ज्ञान के लिए इन्द्रियों के अधीन रहता है।

किन्तु इन्द्रियों को भी विषयों के आनन्द के लिए मन की सहायता की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि यदि किसी भी इन्द्रिय को मन की सहायता न मिले, तो उसे अपने विषयोपभोग में आनन्द नहीं आ सकता। मन को प्राण में लीन करते ही विषयों से छुटकारा मिल जाता है। विषयों में फँसे रहकर कर्म करने से ही प्राणी जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा रहता है। इस कारण मन तथा इंद्रियों का नियंत्रण कर ब्रह्म में लीन हो जाना ही विषयों की आहुति आत्मा रूपी अग्नि में देना है और यही सर्व श्रेष्ठ कर्म है। यही यथार्थ ब्रह्मयज्ञ है, योगयज्ञ है। यही सर्व-व्यापी, सर्व-शक्तिमान नारायण की उपासना है। नारायण के कारण ही इस जगत का उत्पादन, पालन और नाश होता है। आदिकाल में देव, दानव, ऋषि, सर्प आदि ने ब्रह्माजी के पास जाकर अपने-अपने कल्याण के लिए उनसे उपाय पूछा। ब्रह्माजी ने 'ओम्' का उच्चारण किया। सबने ओम् को मन में धारण किया। ओम् का अर्थ सोचते-सोचते, ऋषियों के हृदय में दम, दानवों के हृदय में अहंकार-दम्भ, देवगण के हृदय में दान, सर्पों के हृदय में काटने का भाव उत्पन्न हुआ। इस प्रकार एक 'ओम्' से विभिन्न प्राणियों में भिन्न-भिन्न भाव उत्पन्न हुए। नारायण ही सब प्राणियों के अन्तस्तल में निवास करते हैं

और उन्हीं की प्रेरणा से सब काम होते हैं। यह संसार एक घोर वन है। इसमें संकल्प रूपी डाँस-मच्छर, शोक-हर्ष रूपी गर्मी-सरदी, मोह रूपी अंधकार, लोभ-व्याधि रूपी सर्पों की भरमार है और काम-क्रोध रूपी डाकू राह में सदा तंग करते हैं। संसार-वन को पार कर जो ब्रह्म रूपी उपवन में पहुँच जाता है वही सुखी हो सकता है।'

ब्राह्मण फिर बोला—'हे प्रिये! मैं योगाभ्यास द्वारा आत्मदर्शन कर द्वन्द्व से मुक्त हो चुका हूँ इसी कारण काम, क्रोध, मोह, वृद्धावस्था, मृत्यु, हर्ष, शोक आदि मेरा स्पर्श नहीं कर सकते। मेरी इंद्रियाँ अपना-अपना स्वाभाविक कार्य करती रहती हैं, किन्तु मैं उनके कार्यों तथा विषयों एवं उनके फलों में लिप्त नहीं होता। इस सम्बन्ध में एक प्राचीन उपाख्यान है:—

'एक संन्यासी ने एक ब्राह्मण को यज्ञ में पशु-बलि देते देख उससे कहा कि हिंसा करना उचित नहीं है। ब्राह्मण ने कहा—'यदि शास्त्र सच्चे हैं तो इस पशु का मैं उपकार ही कर रहा हूँ। बलि देने पर इसका पार्थिव भाग पृथ्वी में, जल भाग जल में, आँखें सूर्य में, कान दिशाओं में और प्राण आकाश में प्रविष्ट हो जायँगे। इस कारण मुझे इसके वध का अपराध न लगेगा। इस संसार में सभी पदार्थों में प्राण हैं। अतएव आँख, कान, नाक

हाथ-पैर आदि से कोई भी कार्य किया जायगा उसी में प्राणियों की हिंसा होगी। कोई बिना हिंसा के जीवित ही नहीं रह सकता। आप किसे हिंसा मानते हैं?' संन्यासी ने उत्तर दिया कि जिसका आत्मा माया के द्वारा मोहित रहता है उसी को हिंसा का भय रहता है, जिसका आत्मा निर्द्वन्द्व और समदर्शी रहता है उससे हिंसा नहीं हो सकती। ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि मेरी आत्मा निर्लिप्त है, इस कारण इस शास्त्रोक्त यज्ञ में मुझे हिंसा नहीं लग सकती। यह उत्तर सुनकर संन्यासी निरुत्तर हो गया।'

'पूर्व समय में सहस्रबाहु राजा कार्तवीर्य ने सारी पृथ्वी को जीत लिया। फिर अहंकार के कारण उसने समुद्र को बहुत सताया। समुद्र ने उससे कहा कि आप अपने समान वीर परशुरामजी से युद्ध कीजिये। कार्तवीर्य ने परशुराम जी से युद्ध किया। उन्होंने उसको और उसकी सारी सेना को नष्ट कर डाला। फिर उसके पुत्रों के अपकारों के कारण कुपित होकर उन्होंने इक्कीस बार सारी पृथ्वी के क्षत्रियों का संहार किया। उनके भयके मारे बचे हुए क्षत्रिय शूद्रों का-सा आचरण करने लगे। पृथ्वी भर में अनाचार फैल गया। विधवा क्षत्राणियों ने ब्राह्मणों से पुत्र उत्पन्न किये। किन्तु परशुरामजी ने उन्हें भी नष्टकर डाला। अन्त में ऋचीक आदि महर्षियों ने उन्हें उपदेश देकर इस घोर कर्म

से विरत किया। ऋषियों ने कहा कि पूर्वकाल में महापराक्रमी अलर्क ने अपने पराक्रम से सारी पृथ्वी को जीत लिया था। किन्तु उन्हें संतोष न हुआ। सूक्ष्म रूप से मनन करने पर उन्हें पता चला कि मन और इन्द्रियाँ शत्रु बनकर उनका अहित कर रही हैं। बहुत विचारने पर उन्होंने योगाभ्यास द्वारा अपने मन और इन्द्रियों को वश में कर सिद्धि प्राप्त की। बाहरी शत्रुओं के बजाय अपने भीतरी शत्रुओं को वश में करने से ही प्राणी का कल्याण होता है। ऋषियों का उपदेश सुनकर परशुरामजी ने योग के द्वारा परम सिद्धि प्राप्त की। महात्मा अम्बरीष ने भी मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के अनन्तर ही शान्ति प्राप्त की थी। उन्हें विदित हो गया था कि सब दुष्कर्मों और अनर्थों का मुख्य कारण लोभ है। लोभ से विषय-तृष्णा उत्पन्न होती है और विषय-तृष्णा के कारण चिन्ता। लोभी मनुष्य रजोगुण और तमोगुण के अधीन होकर बार-बार जन्म-मरण का दुःख भोगता है। लोभ को जीतकर शरीर रूपी राज्य पर अधिकार करना ही सच्ची विजय है; इसी राज्य का राजा स्वयंम् आत्मा है। इस सम्बन्ध में जनक का इतिहास प्रसिद्ध है। राजा जनक ने एक बार एक ब्राह्मण को अपने राज्य के निकल जाने की आज्ञा दी। ब्राह्मण ने जनक से पूछा कि आपका अधिकार कहाँ तक है?

जनक ने गम्भीरतापूर्वक सोचकर उत्तर दिया कि सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर मुझे किसी भी वस्तु पर अपना पूर्ण अधिकार नहीं देख पड़ता। एक दृष्टि से तो आत्मा भी मेरा नहीं है, किन्तु दूसरी दृष्टि से सारा संसार मेरा है। सब पदार्थ नश्वर हैं। उन पर किसी का अधिकार नहीं है। किन्तु दूसरी दृष्टि से देखने पर विश्वभर पर मेरा अधिकार है, क्योंकि मुझे आत्म-ज्ञान प्राप्त हो गया, मैं लिप्त होकर अपने संतोष के लिए कोई काम नहीं करता।

ब्राह्मण ने अपनी स्त्री को समझाते हुए कहा—'मैंने भी योगाभ्यास द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लिया है। मेरे लिए सब एक समान हैं। ब्रह्मज्ञानी पुरुष चाहे जिस वेष और आश्रम में रहे वह ब्रह्मज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। मेरे इस उपदेश को समझ लेने पर तुम्हें परलोक का भय न होगा। जीव निर्गुण और देहहीन है। अविवेकी प्राणी भ्रमवश उसे सगुण और देहयुक्त समझता है। योगाभ्यास द्वारा भ्रम के दूर हो जाने पर आत्म-दर्शन और परम-तत्व की प्राप्ति हो जाती है।'

श्रीकृष्णजी ने अर्जुन से कहा—'ब्राह्मण के इस उपदेश से ब्राह्मणी का भ्रम दूर हो गया। यथार्थ में मेरा मन ब्राह्मण और मेरी बुद्धि ब्राह्मणी है।'

अध्याय ३५-५२

गुरु-शिष्य-संवाद, ब्रह्माजी का सत्, रज, तम, महत्, अहंकार, पंचभूत, ज्ञान, नश्वर शरीर, उत्पत्ति-नाश, आश्रम, जाति, योग, श्रेष्ठ धर्म आदि का तत्व बतलाना, आत्मा-मन ही गुरु-शिष्य

अर्जुन के परब्रह्म-तत्व को पूछने पर श्रीकृष्णजी बोले—'इस सम्बन्ध में एक शिष्य के पूछने पर उसके गुरु ने जो उपदेश दिया था उसका वर्णन मैं करता हूँ। गुरु ने कहा कि जो मनुष्य शरीर, आत्मा, परमात्मा के रहस्यों को समझ जाता है उसके सब दुःख छूट जाते हैं। देह वृक्ष है, ब्रह्म बीज, प्रकृति उत्पत्ति का कारण है। शरीर रूपी वृक्ष का बुद्धि स्कन्द है, अहंकार पल्लव, इन्द्रियाँ कोटर, महाभूत शाखा, कर्म-टहनियाँ, आशा पत्ते, संकल्प फूल और शुभ अशुभ ही फल हैं। जो मनुष्य इस शरीर रूपी वृक्ष को समझकर ज्ञान रूपी कुल्हाड़ी से उसे काट डालता है उसका जन्म-मरण के दुःख से छुटकारा हो जाता है। एक बार दक्ष, गौतम, वशिष्ठ, कश्यप आदि ने ब्रह्माजी के पास जाकर उनसे जन्म-मरण के दुःखों से छुटकारा पाने का उपाय पूछा। ब्रह्माजी बोले—'सभी प्राणी अपने कर्मों के कारण जन्म-मरण के चक्र में फँसे रहते हैं। जो आसक्ति को छोड़कर योग द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लेता है, उसे कर्मों के बन्धन से मुक्ति मिल जाती है। महत्तत्व, अहंकार, प्रकृति, मन, दस इन्द्रियाँ, पंचभूत, पाँच विषय और जीव-आत्मा ये पच्चीस तत्व कहलाते हैं। जो इन पच्चीस

तत्वों की उत्पत्ति और विनाश को समझ लेता है उसे जन्म-मरण के बन्धन से छुट्टी मिल जाती है। सब से पहले प्रकृति द्वारा महत्तत्व की उत्पत्ति होती है। यही आदि सृष्टि है। महत्तत्व से अहंकार उत्पन्न होता है, उसके सात्विक राजस और तामस ये तीन भेद होते हैं। अहंकार से ही आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, इन पाँच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। तामस अहंकार द्वारा कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नाक, इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों की सृष्टि होती है। हाथ, पैर, मुख, गुदा, लिंग इन पाँच कर्मेन्द्रियों की तथा प्राण, अपान आदि प्राणों की सृष्टि राजस अहंकार के द्वारा होती है। जल, स्थल और आकाश यही प्राणियों के निवास-स्थान हैं। उद्भिज (भूमि फोड़कर निकलनेवाले), स्वेदज (पसीने से उत्पन्न होनेवाले), अंडज (अंडे से उत्पन्न होने वाले) और जरायुज (पेट से झिल्ली सहित उत्पन्न होने वाले) इन चार प्रकार के जीवों से ही सृष्टि का क्रम चलता है। जो प्राणी इन सबका ज्ञान प्राप्तकर, कामनाओं को छोड़, विषय-वासना का त्यागकर आत्म ज्ञान प्राप्त कर लेता है उसे सब बन्धनों से छुटकारा मिल जाता है। सत्व, रज और तम ये तीन गुण अविनाशी, सर्वव्यापी और स्थिर हैं। जब किसी प्राणी में तमोगुण की अधिकता होती है तब वह अज्ञान और मोह में पड़कर निकृष्ट कर्म करता और

पशु-पक्षी के योनि में जन्म पाता है। रजोगुण के प्रबल होने पर ईर्ष्या, द्वेष, युद्ध, व्यापार आदि में प्रवृत्त होकर प्राणी मनुष्य आदि योनियों में जन्म पाता है। सतोगुण के प्रबल होने पर ज्ञान और सत्कर्मों द्वारा प्राणी उत्तम लोकों को प्राप्त करता है। ये तीन गुण संसार के सभी पदार्थों में व्याप्त होकर सृष्टि का कार्य चलाते हैं। योगी पुरुष ही इन तीनों गुणों से निवृत्त होकर परम पद प्राप्त करता है। ज्ञान के द्वारा ही इन गुणों के तत्व को समझकर निर्गुण और अनुभव स्वरूप आत्मा का साक्षात्कार किया जा सकता है। ज्ञान के द्वारा ही वासनाओं, पापों और बन्धनों से मुक्ति प्राप्ति की जा सकती है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास इन चारों आश्रमों का यथाविधि पालन कर वासना-रहित हो योगाभ्यास द्वारा ज्ञान और मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। बुद्धिमान मनुष्य शास्त्रों के मनन और आश्रमों के धर्मों के विधिवत् पालन द्वारा चित्त को विषयों से हटाकर शुद्ध कर लेता है। चित्त के शुद्ध होते ही योगाभ्यास द्वारा यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य हंस, परम हंस आदि पदों को प्राप्त करता हुआ मुक्त हो जाता है। आकाश सब भूतों में श्रेष्ठ है। आकाश से अहंकार, अहंकार से बुद्धि, बुद्धि से महत्तत्व, महत्तत्व से प्रकृति,

प्रकृति से सनातन पुरुष श्रेष्ठ है। जो मनुष्य कर्मों की विधि का ज्ञाता, अध्यात्म-दक्ष और समदर्शी होता है वही सनातन पुरुष को प्राप्त कर सकता है। प्राणियों की उत्पत्ति और मृत्यु का कारण आत्मा ही है। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि ये सब आत्मा के सहायक हैं। जब आत्मा इन्द्रिय-रूपी घोड़ों को, मन-रूपी सारथी द्वारा, बुद्धि रूपी कोड़े से वश में कर लेती है, तब देह रूपी रथ जीव के ब्रह्म स्वरूप होने के कारण ब्रह्ममय प्रतीत होने लगता है। जो मनुष्य इस ब्रह्ममय रथ को ठीक-ठीक जान लेता है उसको कभी भ्रम नहीं होता। परमब्रह्म ही सबकी एक मात्र गति है। उसी परब्रह्म को प्राप्त करके जीवात्मा सुखी होता है। जो अहंकार के वश होकर सकाम-कर्म करता है, उसे स्वर्ग-सुख भोगने के बाद फिर जन्म-मरण के बन्धन में पड़ना पड़ता है। किन्तु जो अहंकार और ममता को त्यागकर योग-द्वारा आत्म ज्ञान प्राप्त कर ता है उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है। ममता ही मृत्यु और निर्ममता ही ब्रह्म है। समदर्शी और ममता-रहित मनुष्य ही यथार्थ ज्ञान और परमतत्व को प्राप्त कर सकता है।'

श्रीकृष्णजी ने कहा—'हे अर्जुन! ब्रह्माजी से इस तत्व को सुनकर वशिष्ठ आदि महर्षियों ने, एवं गुरु से सुनकर शिष्य ने सिद्धि प्राप्त की। यथार्थ में मैं ही गुरु हूँ

और मेरा मन ही शिष्य है। इस उपदेश के अनुसार चलने से सहज ही में मोक्ष प्राप्त हो जाता है।'

इस उपदेश के अनन्तर अर्जुन ने श्रीकृष्णजी की भक्तिभाव से स्तुति की। फिर धर्मराज युधिष्ठिर से अनुमति ले, श्रीकृष्णजी ने सबसे विदा हो द्वारका के लिए प्रस्थान किया।

अध्याय ५३-५८

उत्तंक-श्रीकृष्ण संवाद, विश्वरूप-दर्शन, उत्तंक की कथा

वैशम्पायनजी बोले—'रास्ते में मरुधन्व देश में महर्षि उत्तंक ने श्रीकृष्णजी को रोककर पूछा कि क्या आपने कौरवों-पाण्डवों का मेल करा दिया है? श्रीकृष्णजी ने संधि के प्रयत्न की तथा महाभारत की सब बातें सुना दीं। महर्षि ने कुपित होकर कहा—'हे वासुदेव! इस सब वंश-नाश के कारण तुम हो। तुम चाहते तो बलपूर्वक कौरवों को रोककर संधि करा सकते थे। दुर्योधन तथा कौरवों के नाश के लिए मैं तुम्हें शाप दूँगा।' श्रीकृष्णजी ने कहा—'साधारण तपस्या के द्वारा मुझे कोई शाप नहीं दे सकता। आपने लड़कपन से अब तक जो उग्र तपस्या की है, उसे आप मुझे शाप देकर नष्ट न करें। दुर्योधन ने मेरी तथा व्यास आदि किसी की बात नहीं मानी थी। आप उसके

लिए अपनी तपस्या को नष्ट न करें।' यह कह श्रीकृष्णजी ने तत्वज्ञान का मर्म समझाया और उन्हें अपने विश्वरूप के दर्शन दिये। फिर ऋषि से वर माँगने को कहा। बहुत समझाने पर उन्होंने वर मांगा कि इस मरुभूमि में जभी मैं इच्छा करूँ तभी मुझे जल मिल जाया करे। श्रीकृष्णजी वर देकर चले गये। कुछ समय बाद ऋषि ने पीने के लिए पानी चाहा। उसी समय कुत्तों से घिरा हुआ एक चांडाल वहाँ आया और उनसे कहने लगा कि तुम मेरा मूत्र पी लो। किन्तु उसके बहुत हठ करने पर भी ऋषि राज़ी न हुए। चाण्डाल देखते-देखते अन्तर्धान हो गया। उसी के स्थान पर वासुदेव श्रीकृष्णजी ने प्रकट होकर उत्तंक से कहा कि मेरे कहने से इंद्र तुम्हें अमृत पिलाने आये थे, तुमने उसे त्याग कर अच्छा नहीं किया। अमृत किसी मनुष्य को प्रत्यक्ष रूप से नहीं पिलाया जा सकता, इसी कारण इंद्र ने वह स्वांग रचा था। अब तुम जब इच्छा करोगे तब यहाँ इस मरुभूमि में मेघ जल बरसा दिया करेंगे।'

उत्तंक के तपस्या के सम्बन्ध में जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायनजी बोले—'पूर्व समय में उत्तंक ने गौतम ऋषि के पास जाकर उनकी बड़ी सेवा की। उनकी सेवा से गुरु इतने प्रसन्न हुए कि वे उन्हें अपने पास ही रक्खे रहे, उन्हें घर जाने की आज्ञा नहीं दी। प्रेम और भक्ति के कारण उत्तंक

सौ वर्ष की अवस्था तक गुरु की सेवा में रह गये। अन्त में एक दिन अपनी सफ़ेद जटाओं को देखकर उन्हें अपनी वृद्धावस्था का ध्यान आया। वे दुखी हो रोने लगे। गुरु ने कारण पूछा। उत्तंक ने कहा कि मैं आपकी सेवा में ही इस अवस्था को पहुँच गया, मैं गृहस्थाश्रम का सुख कैसे भोगूँगा? गौतमजी ने हँसकर उन्हें जवान कर दिया और अपनी सुन्दरी, तरुणी कन्या के साथ उनका विवाह कर दिया। विदा होते समय उत्तंक ने गुरुदक्षिणा देने के लिए हठ किया। गौतम ने उन्हें अपनी पत्नी अहल्या के पास भेजा। उसने उनसे कहा कि तुम सौदास के पास से उसकी रानी के दिव्य कुण्डलों को माँग कर ला दो। उत्तंक सौदास के पास गये। राजा शाप के कारण उस समय राक्षस-भाव में था। उसने ऋषि से कहा कि मैं दिन के छठवें भाग में भोजन करता हूँ, तुम ऐसे ही समय मेरे पास आये हो। अतएव मैं तुमको खाकर अपनी भूख मिटाऊँगा। ऋषि ने सब बातें बतलाकर राजा से कहा कि मैं कुण्डल गुरुपत्नी को देकर तब तुम्हारे पास लौट आऊँगा। राजा ने उन्हें रानी के पास भेजा। रानी ने राजा की आज्ञा को पाकर उन दिव्य कुण्डलों को उतारकर दे दिया और यह भी बतला दिया गया कि देव, नाग आदि उन कुण्डलों को लेने के प्रयत्न में रहते हैं। उन कुण्डलों से

सदा सोना बरसता है, उनके पहनने वाले पर रोग, शोक, व्याधि, विष, शाप आदि का प्रभाव नहीं पड़ता। उत्तंक कुण्डलों को लेकर सौदास के पास गये और उनसे मित्रता स्थापित करने के बाद उन्होंने कहा—'आप इस समय राक्षस-भाव में हैं। मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार लौटकर आपके पास आना अपना कर्तव्य समझता हूँ। किन्तु आने से मेरी मृत्यु निश्चित है। फिर आप को भी पाप लगेगा। ऐसी दशा में मुझे आप सलाह दें कि मैं क्या करूँ? सौदास ने कहा कि प्रतिज्ञा से बढ़कर आत्म रक्षा है। यहाँ आने से तुम्हारी मृत्यु निश्चित है, इस कारण तुम लौटकर मत आओ। कुण्डल लेकर उत्तंक आगे चले। रास्ते में तनिक असावधान होते ही एक नाग कुण्डलों को चुरा कर ले गया। इन्द्र के प्रताप से उत्तंक भी नाग-लोक में जा पहुँचे। जब बहुत प्रयत्न करने पर भी नागों ने कुण्डल न लौटाये, तब अग्नि देव को प्रसन्न कर उत्तंक नाग-लोक को जलाने, तपाने और धुएँ से भरकर नाग-गण को संकट में डालने लगे। हार कर नागों ने कुण्डल लाकर उत्तंक को दे दिये और उनसे क्षमा माँगी। नाग-लोक से गौतम जी के आश्रम में आकर उत्तंक ने कुण्डल गुरु-पत्नी अहल्या को दे दिये।'

अध्याय ५६-७०

श्रीकृष्णजी का द्वारका जाकर फिर लौटना और परीक्षित को जिलाना

वैशम्पायनजी बोले—'उत्तंक को वर देकर श्रीकृष्ण जी सात्यकि के साथ वन, पर्वत पार करते हुए अपने देश में पहुँचे। रास्ते में रैवतक पर्वत पर यदुवंशी उत्सव मना रहे थे। वहाँ जा सबको सुखीकर श्रीकृष्णजी द्वारका गये। वहाँ माता-पिता आदि से मिल-भेंटकर उन्होंने महाभारत, दुर्योधन आदि के संहार तथा अभिमन्यु की वीरगति का हाल विस्तार से बतलाया और व्याकुल वसुदेव, देवकी आदि को समझा-बुझाकर शान्त किया।

'इधर व्यासदेव ने आकर उत्तरा, कुन्ती, अर्जुन आदि को समझाया कि उत्तरा के गर्भ से अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित होगा जो पाण्डवों-कौरवों का वंश चलायेगा और धर्म-पूर्वक प्रजा का पालन करेगा। फिर उनके कहने से युधिष्ठिर, सेना तथा अपने भाइयों को लेकर, हिमालय पर, राजा मरुत्त के छोड़े हुए सोने को यज्ञ के लिए, लाने के विचार से गये। वहाँ पहुँच सब ऋषियों के कहने से उन्होंने विधिपूर्वक शिवजी तथा अन्यान्य देव गण को यथोचित पूजा-स्तुति द्वारा प्रसन्न एवं संतुष्टकर

सोने के पात्रों आदि को प्राप्त किया। फिर वे सब सोने को लाखों हाथियों, ऊँटों, घोड़ों, छकड़ों, खच्चरों पर लदा कर हस्तिनापुर लौट आये।

'इसी बीच में श्रीकृष्णजी हस्तिनापुर में आये। उत्तरा के गर्भ से अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित ने जन्म लिया। किन्तु अश्वत्थामा के अस्त्र के प्रभाव के कारण उत्पन्न होने के बाद ही बालक ने प्राण त्याग दिये। यह देख कुन्ती, सुभद्रा, उत्तरा आदि वंशधर के शोक में विलाप करने लगीं। सबके प्रार्थना करने पर श्रीकृष्णजी ने कहा—'यदि मैंने केशी, कंस आदि का वध धर्म-रक्षा के लिए किया हो, यदि मैं युद्ध से कभी विमुख न हुआ होऊँ, यदि मैं सदा सत्य और धर्म का पालन करता रहा होऊँ, तो उत्तरा का यह बालक जीवित हो जाय।' उनके यह कहते ही उत्तरा का पुत्र योगबल से जीवित होगया। सब हर्ष से गद्गद् हो गये। श्रीकृष्णजी के प्रभाव से अश्वत्थामा का अस्त्र ब्रह्माजी के पास चला गया। वंश के परिक्षीण होते समय इस बालक का जन्म हुआ था। इस कारण श्रीकृष्णजी ने उसका नाम परीक्षित रक्खा। इसी बीच पाण्डवों के सोना लेकर हिमालय से लौटने का समाचार मिला।

अध्याय ७१-८४

यज्ञ-प्रारंभ, अश्व का छोड़ा जाना, दिग्विजय

वैशम्पायनजी बोले—'श्रीकृष्णजी यदुवंशियों और हस्तिनापुरवालों के साथ युधिष्ठिर को आदर पूर्वक हस्तिनापुर में लाये। परीक्षित के जन्म की कथा सुनकर युधिष्ठिर, अर्जुन आदि को बड़ी प्रसन्नता हुई। कुछ समय बाद व्यासजी ने युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ करने की आज्ञा दी। युधिष्ठिर ने यज्ञ का निश्चयकर श्रीकृष्णजी ने कहा—'आप ही के पराक्रम और बुद्धि-कौशल से विजय प्राप्त हुई है। आप ही का यह राज्य-ऐश्वर्य है। आप ही यज्ञ हैं, परब्रह्म हैं, प्रजापति हैं, सब जीवों की एक मात्र गति हैं। आप ही यज्ञ की दीक्षा लें। आप हमारे परम गुरु हैं। आपके यज्ञ करने से हम सब पाप-रहित हो जाँयगे।' श्रीकृष्ण ने उनसे कहा कि आप ही के गुणों के कारण हम गुणवान हुए हैं। आप यज्ञ करें। आप जो आज्ञा देंगे उसका पालन मैं करूँगा।'

'यथासमय व्यासदेव, याज्ञवल्क्य तथा पैल महर्षियों ने महाराज युधिष्ठिर को यज्ञ की दीक्षा दी। यज्ञ के लिए उपयुक्त घोड़ा छाँटा गया। फिर वह यज्ञ का घोड़ा विधिपूर्वक छोड़ा गया। सेना-सहित अर्जुन उसकी रक्षा के लिए उसके पीछे-पीछे गये। चलते समय युधि-

ष्ठिर ने अर्जुन से कह दिया कि कुरुक्षेत्र के युद्ध में मारे गए राजाओं के पुत्र-पौत्रों को मारना मत, किसी तरह से उन्हें समझाकर, मिलाकर यज्ञ में लाना। अर्जुन के चले जाने पर युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र, व्यास आदि की सलाह से भीम और नकुल को राज्य का भार सौंपा तथा सहदेव को कुटुम्ब की देखरेख के लिए नियुक्त किया।

'यज्ञ का घोड़ा पहले उत्तर की ओर गया, वहाँ से अनेक राज्यों को पार करता हुआ वह पूर्व दिशा की ओर आगे बढ़ा। रास्ते में अर्जुन ने किरात, यवन, म्लेच्छ आदि को सहज ही में परास्त कर दिया। चलते-चलते घोड़ा त्रिगर्त देश में जा पहुँचा। वहाँ के राजा सूर्यवर्मा, केतुवर्मा और उनके पुत्र धृतवर्मा ने बड़ा भीषण युद्ध किया। किन्तु अन्त में सब ने हारकर पाण्डवों की अधीनता स्वीकार कर ली। वहाँ से बढ़कर घोड़ा प्राग्ज्योतिषपुर जा पहुँचा। वहाँ के राजा वज्रदत्त ने अर्जुन से बड़ा युद्ध किया, किन्तु अन्त में हारकर उसने भी पाण्डवों की अधीनता स्वीकार कर ली। वहाँ से घोड़ा सिंधुदेश में जा पहुँचा। जयद्रथ के वध का स्मरण कर सिंधु देश के वीरों ने अर्जुन को घेरकर मारना चाहा, किन्तु अर्जुन ने सबको परास्त कर दिया। यह सुनकर कि अर्जुन सिंधु देश में आये हैं जयद्रथ के पुत्र सुरथ के प्राण भय के मारे निकल गये। तब दुर्योधन की

बहन, सुरथ की माता दुःशला अपने पोते को लेकर अर्जुन के पास गई और उसने उसके प्राणों की भिक्षा मांगी। अर्जुन ने सुरथ के उस बालक को सिंधु देश की गद्दी पर बैठाल दिया। फिर दुःशला को समझाकर वे आगे बढ़े।

यहाँ से चलकर घोड़ा मणिपुर पहुँचा। उस समय मणिपुर में अर्जुन का पुत्र बभ्रुवाहन राज्य करता था। अपने पिता को आया देख ब्राह्मणों को आगे कर वह विनीत भाव से उनके पास गया और उसने उन्हें प्रणाम किया।

अर्जुन ने कुपित होकर कहा—'तुझे धिक्कार है। तुझमें तनिक भी पुरुषत्व नहीं है। तू क्षत्रिय-धर्म से हीन है। मैं युद्ध के लिए यहाँ आया था। यह जानकर भी इस प्रकार विनीत भाव से मेरे पास आने के पहले ही तुझे मर जाना चाहिए था।' इस प्रकार अपमानित होने से बभ्रु-वाहन को बहुत दुःख हुआ। इसी समय उनकी विमाता नाग-कन्या उलूपी ने नाग-लोक से आकर बभ्रुवाहन को उपदेश दिया कि जब तुम्हारे पिता युद्ध करना चाहते हैं तब युद्ध करना ही तुम्हारा धर्म है। बभ्रुवाहन ने उत्सा-हित होकर अर्जुन से घोर युद्ध किया। अन्त में बभ्रुवाहन के बाणसे अर्जुन घायल होकर मूर्छित हो गए। इधर बभ्रुवाहन भी मूर्छित होकर गिर पड़े। पति और पुत्र को इस प्रकार रण में पड़े हुए देख अर्जुन की रानी चित्रांगदा

अधीर होकर विलाप करने लगी। उसने विलाप करते हुए उलूपी से कहा कि तुम्हीं ने बभ्रु को घोर उपदेश देकर युद्ध कराया और पिता-पुत्र का संहार करा डाला, पति और पुत्र को खोकर मैं भी अब अपने प्राण दे दूँगी। इसी समय बभ्रु की भी मूर्छा दूर हुई। वे भी अपनी माता के साथ मरने के लिए तैयार हो गए। इसी समय उलूपी ने नाग-लोक की संजीवन-मणि के द्वारा अर्जुन को सचेत कर दिया। मणि के प्रभाव से अर्जुन उठकर खड़े हो गए। सब ने प्रसन्न हो उनका यथोचित आदर-सत्कार किया।

अर्जुन ने चित्रांगदा, उलूपी आदि के आने का कारण पूछा। उलूपी ने अर्जुन से कहा—'आपको तो देवराज इन्द्र भी नहीं जीत सकते। मैंने आपको शाप से मुक्त करने के लिए ही यह माया रची थी। जब कुरुक्षेत्र में रण से विमुख हो जाने पर भीष्म को आपने शिखण्डी के पीछे छिपकर मारा था, उसी समय कुपित होकर वसुओं ने भागीरथी की अनुमति लेकर आपको शाप देना चाहा था। उसी समय मैं वहाँ पहुंच गई। मेरे कहने से मेरे पिता ने अनुनय-विनय कर वसुओं को शान्त किया। वसुओं ने कहा कि जब बभ्रुवाहन अर्जुन को मारकर युद्ध में गिरा देगा तब वे इस शाप से मुक्त हो जायेंगे। इसी शाप से मुक्त कराने के लिए मैंने बभ्रु को उत्साहित किया था

और अपनी माया के द्वारा आप को परास्त कराया था। पुत्र आत्म-स्वरूप होता है, इस कारण बभ्रु के द्वारा परास्त होने पर आपको कुण्ठित न होना चाहिए।'

अर्जुन ने उलूकी से कहा कि तुमने बड़ा उपकार किया। फिर उन्होंने बभ्रु को छाती से लगाकर कहा कि तुम चैत्र की पूर्णमासी को अश्वमेध यज्ञ में अपनी इन दोनों माताओं को लेकर अवश्य आना। बभ्रु ने उन्हें एक रात अपने महल में रोकना चाहा, किन्तु नियम में बंधे रहने के कारण वे न रुक सके।

'वहाँ से चलकर घोड़ा मगध देश में पहुँचा। वहाँ के राजा जरासंध के पोते मेघसंधि ने उस घोड़े को पकड़ लिया और भीषण युद्ध किया। अर्जुन ने उसे परास्त किया, किन्तु मारा नहीं। वहाँ से घोड़ा समुद्र किनारे होता हुआ वंग, पुण्ड्र, कोशल आदि देशों में घूमता हुआ चेदि देश पहुंचा। चेदि देश में शिशुपाल के पुत्र शरभ ने युद्ध के अनन्तर अर्जुन से संधि कर ली। वहाँ से घोड़ा काशी अंग, किरात, तंगण, दशार्ण देशों को पार करता हुआ निषाद राज एकलव्य के राज्य में पहुँचा। एकलव्य के पुत्र तथा उसकी निषाद सेना को परास्तकर अर्जुन घोड़े के साथ-साथ द्रविड़, आंध्र, महिषक और कोल्लगिरि, सुराष्ट्र, गोकर्ण आदि देशों के वीरों को परास्त करते

हुए प्रभास क्षेत्र को पारकर द्वारका में जा पहुँचे। वहाँ यदुवंश के बालकों ने घोड़े को पकड़ लिया और अर्जुन से युद्ध करना चाहा, किन्तु महाराज उग्रसेन तथा वसुदेव जी ने बीच में पड़कर संधि करा दी।

'अर्जुन वहाँ से घोड़े के साथ आगे बढ़कर पञ्चनद प्रदेश में होते हुए गांधार देश में जा पहुँचे। वहाँ शकुनि के पुत्र ने उनसे भीषण युद्ध किया, किन्तु अर्जुन ने सबको हरा दिया। तब शकुनि की रानी ने आकर संधि करा दी। अन्त में सब देश के राजाओं को यज्ञ में आने का निमंत्रण देकर घोड़े के साथ अर्जुन सकुशल हस्तिनापुर की ओर लौटे।

अध्याय ८५-८६

अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति: पृथ्वी-दान

वैशम्पायनजी बोले—'घोड़े के साथ अर्जुन के आने के समाचार पाकर युधिष्ठिर ने माघ की पूर्णिमा को उचित स्थान पर यज्ञ-भूमि और सबके ठहरने के लिए यथायोग्य स्थान बनवाये। देश-देश के राजा, महाराज, पंडित, विद्वान, ऋषि, मुनि, गुणी, कवि, कलाकार, गायक, विदूषक, विनोद-कलाविद, नर्तक आदि हस्तिनापुर में आये। नाना प्रकार के विचित्र-विचित्र पदार्थों से हस्तिनापुर

भर गया। इसी बीच में युधिष्ठिर के पूछने पर श्रीकृष्णजी ने बतलाया कि अर्जुन की पिंडलियाँ मोटी हैं, इसी कारण उन्हें सदा यात्रा करनी पड़ती और अन्य अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं। यह सुन द्रौपदी ने ईर्ष्या से श्रीकृष्ण की ओर देखा। यथासमय यज्ञ के घोड़े सहित अर्जुन और दूसरी ओर से उलूपी चित्रांगदा सहित बभ्रुवाहन आये। सबने उनका यथोचित सत्कार किया। कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा, रुक्मिणी आदि ने उलूपी और चित्रांगदा का बड़ा आदर किया।

'शुभ मुहूर्त में यज्ञ प्रारंभ हुआ। अनेक पक्षियों, बैलों, जलचर जीवों, यज्ञ के खम्भों से बँधे हुए तीन सौ पशुओं के साथ वह अश्व भी यज्ञमण्डप में बाँधा गया। यज्ञ की क्रियाएँ यथाविधि समाप्त की गईं। फिर विधिपूर्वक पशुओं का वधकर उनके मांस को पकाकर आहुतियाँ दी गईं। यज्ञ के अश्व का भी वध किया गया। रानी द्रौपदी उसके पास बैठाली गईं। घोड़े की चर्बी विधि-पूर्वक निकालकर पकाई गई। फिर सोलह ऋत्विकों ने विधि पूर्वक अश्व के अंगों की आहुतियाँ दीं। सफलता पूर्वक सब विधियों के पूरे होने पर युधिष्ठिर ने हजार-करोड़ सोने की मुद्राएँ ब्राह्मणों को दीं और सारी पृथ्वी व्यास-देव को दान में दे दी। पृथ्वी-दानकर वे वन जाने को तैयार हो गये। किन्तु अन्त में व्यासजी तथा श्रीकृष्णजी के

बहुत समझाने पर उन्होंने धन-रत्न देकर पृथ्वी को वापस ले लिया। अन्त में उन्होंने यज्ञ में ब्राह्मणों को तिगुनी दक्षिणा देकर संतुष्ट कर दिया। यज्ञ के सभी सामान सोने के थे। ईंटें तक सोने की थीं। युधिष्ठिर के कहने से ब्राह्मणों ने उन सबको आपस में बाँट लिया। यज्ञ में इतना धन मिला कि उस सबको ब्राह्मण उठाकर अपने घर न ले जा सके। जो वस्तुएँ ब्राह्मणों के ले जाने से छूट गईं उन्हें क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि उठा ले गये। व्यासजी ने अपने हिस्से का धन अपनी पुत्र-वधू कुन्ती को दे दिया। कुन्ती ने उस सब को ब्राह्मणों में बाँट दिया। यज्ञ के अनन्तर अवभृथ स्नानकर युधिष्ठिर ने सब का धन, रत्न, बहुमूल्य पदार्थों द्वारा सम्मान किया। यथोचित सत्कार तथा भेंट-उपहार पाकर सब विदा होकर अपने-अपने स्थानों को चले गये। धर्मराज युधिष्ठिर प्रसन्नता-पूर्वक राज्य करने लगे।

अध्याय ९०

सोने के शरीरवाला नेवला, सत्तूदान यज्ञ से बढ़कर

वैशम्पायनजी बोले—'युधिष्ठिर के यज्ञ में एक विचित्र घटना घटी थी। यज्ञ के समाप्त हो जाने पर एक नेवला

वहाँ आया। उसका आधा शरीर सोने का था। उसने चिल्लाकर मनुष्यों की भाषा में कहा कि यह अश्वमेध यज्ञ तो कुरुक्षेत्र निवासी एक उञ्छवृत्तिधारी दानी ब्राह्मण के सेर भर सत्तू के दान के बराबर भी नहीं हो सका है। यह सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। यज्ञ में आये हुए ब्राह्मणों ने कहा कि जैसा यह यज्ञ हुआ है वैसा तो आज तक कभी नहीं हुआ है, इसमें सभी कार्य विधिपूर्वक हुए हैं और सभी का यथोचित सत्कार किया गया है। नेवले ने कहा—मैं झूठ नहीं कहता। पूर्व समय में कुरुक्षेत्र में एक संतोषी, तपस्वी ब्राह्मण रहता था। खेत कट जाने पर जो अन्न के दाने भूमि में गिरकर रह जाते थे वह उन्हीं को बीनकर दिन के छठे भाग में देव, पितर, अतिथि आदि को संतुष्ट करने के बाद एक बार भोजन करता था। एक बार घोर अकाल पड़ने पर उसे अन्न का बड़ा कष्ट हुआ। उसे अनेक दिन भूखे ही रह जाना पड़ता था। एक बार अनेक दिनों के उपवास के बाद उसे एक सेर जौ मिले। ब्राह्मणी ने उनका सत्तू तैयार किया। देव, पितर आदि का भाग निकालने के बाद ब्राह्मण ने उस सत्तू के चार भाग किये और अपनी स्त्री, पुत्र तथा पुत्रवधू के साथ वह अपने भाग को खाने के लिए तैयार हुआ। ठीक उसी समय एक अतिथि ने आकर भोजन माँगा।

अनेक दिनों के बाद सत्तू मिलने पर भी ब्राह्मण ने लोभ-क्षोभ छोड़ कर प्रसन्नता पूर्वक आदर के साथ अतिथि को अपने हिस्से का सत्तू दे दिया। उसे खा लेने पर भी अतिथि की तृप्ति न हुई। अपने पति को दुखी देख ब्राह्मणी ने अपना भाग अतिथि को देना चाहा। ब्राह्मण ने कहा कि धर्म, अर्थ, काम, सुश्रूषा, संतान और पितृ-कार्य, ये सभी पत्नी के अधीन हैं। जो पुरुष अपनी पत्नी की रक्षा नहीं कर सकता उसे कहीं सुख और यश नहीं मिलते।

पत्नी ने कहा—'पति और पत्नी के धर्म और अर्थ एक ही हैं। स्त्री के धर्म, अर्थ, स्वर्ग, सत्य, प्रेम, अभीष्टसिद्धि, सुख, संतोष सभी पति के अधीन हैं। वह रक्षा करने के कारण पति, भरण-पोषण करने के कारण भर्त्ता, पुत्र देने के कारण वरद है। पत्नी पति से भिन्न नहीं होती।' ब्राह्मणी का आग्रह देख ब्राह्मण ने उसके हिस्से का सत्तू भी अतिथि को दे दिया। उसे खा लेने पर भी अतिथि की तृप्ति न हो सकी। तब बहुत अनुरोधकर ब्राह्मण के पुत्र तथा पुत्रवधू ने पारी-पारी से अपने-अपने भाग का सत्तू भी अतिथि को दिला दिया। सबके भागों के सत्तू को खा लेने पर अतिथि को तृप्ति हो गई। अनेक दिनों से भूखे रहने पर भी ब्राह्मण के मन में तनिक भी क्षोभ न हुआ।

अतिथि ने प्रसन्न होकर कहा—'न्याय से उपार्जित

तुम्हारे पवित्र दान से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। देवगण, सिद्ध आदि सभी तुम्हारे इस सात्विक दान की प्रशंसा कर रहे हैं। भूख के कारण मनुष्य का ज्ञान, धैर्य और धर्म भ्रष्ट हो जाते हैं। जो भूख को जीत लेता है वही सर्वजयी है, उसे स्वर्ग अनायास ही मिल जाता है। तुमने इस घोर संकट के समय भी धैर्य और धर्म को नहीं छोड़ा। इस दान से तुमको अक्षय पुण्य की प्राप्ति हुई है। लोभ ही स्वर्ग के द्वार को बन्द करने वाला है। लोभ को जीतकर श्रद्धापूर्वक सत्पात्र को दिया गया थोड़ा भी दान अक्षय फल देता है। जिसके पास एक हजार मुद्राएँ होती हैं यदि वह सौ मुद्राओं का दान करे तो उसे वही पुण्य होगा जो सौ मुद्रावाले को दस मुद्राओं के दान करने से प्राप्त हो सकता है। जिसके पास कुछ धन नहीं होगा वह एक अंजली जल, या मीठे वचन से ही पुण्य प्राप्त कर सकता है। रन्तिदेव शुद्ध चित्त से सत्पात्र को एक अंजलि जल देकर ही स्वर्ग प्राप्त कर सके थे। केवल दान से ही कोई मनुष्य पुण्य प्राप्त नहीं कर सकता। अन्याय पूर्वक प्राप्त किया हुआ असंख्य धन दान करने से भी पुण्य नहीं होता। जो क्रोध, लोभ, अन्याय को छोड़कर श्रद्धापूर्वक सत्पात्र को थोड़ा भी दान देता है उसे अक्षय पुण्य प्राप्त होता है। यदि कोई

राजा प्रजा को पीड़ित करता हो तो उसका बड़े-से-बड़ा यज्ञ, दान भी उसे पापों से नहीं छुड़ा सकता। मैं धर्म हूँ। तुम्हारी परीक्षा लेने आया था।' यह कह धर्मदेव अन्तर्धान हो गये। ब्राह्मण अपने कुटुम्ब सहित स्वर्ग को गया। उसी ब्राह्मण की कुटी में मैं रहता था। सब के स्वर्ग चले जाने पर मैं उस स्थान पर लोटने लगा जहाँ अतिथि ने भोजन किया था। उसके जूठे पानी के लगने से मेरा आधा शरीर सोने का हो गया। तभी से मैं जहाँ भी यज्ञ, दान, शुभ कर्म होते हैं वहाँ इस आशा से जाता हूँ कि मेरा बाकी आधा शरीर भी सोने का हो जाय। पर कहीं भी वैसा प्रभावशाली यज्ञ या शुभ कर्म न देख पड़ा, और न मेरा आधा अंग सोने का हो सका। इस यज्ञ में भी मैं इसी आशा से आया था। परन्तु यहाँ से भी मुझे निराश लौटना पड़ा। इसी कारण मैं कहता हूँ कि यह इतना बड़ा यज्ञ ब्राह्मण के एक सेर सत्तू के दान के बराबर भी न हो सका।' यह कह नेवला चला गया।

'हे जनमेजय! तुम केवल बड़ी-बड़ी दक्षिणा वाले यज्ञों को ही सर्वश्रेष्ठ न समझो। प्राणिमात्र पर दया, सन्तोष, सरलता, सुशीलता, जप, सत्य, इन्द्रियनिग्रह, दान, इनमें से कोई भी यज्ञ से कम नहीं है।'

अध्याय ९१-९२

बलि में विवाद, बीज से यज्ञ, सत्कर्मों के लिए धन आवश्यक नहीं, सोने की पीठवाला नेवला कौन था ?

वैशम्पायनजी बोले—'प्राचीन समय में इन्द्र ने एक बड़ा यज्ञ आरंभ किया। सब विधियों के अनन्तर जब पशुओं के वध का समय आया तो उन्हें त्रस्त तथा दुखी देख महर्षियों ने इन्द्र से कहा कि पशु-बलि के स्थान पर तीन वर्ष के बीजों की बलि अधिक उत्तम होगी, क्योंकि ऐसा करने से जीवों की हिंसा न होगी। बड़ा विवाद उठा। तब सब चेदिराज वसु के पास निर्णय के लिए गये। वसु ने बिना विचारे ही कह दिया कि जो वस्तु समय पर मिल सके उसी से यज्ञ करना चाहिए। बिना विचारे दी गई इस व्यवस्था के कारण वसु को रसातल में जाना पड़ा। अश्रद्धा पूर्वक दान करने, अथवा अन्याय से उपार्जित धन से यज्ञ करने से कुछ भी फल नहीं मिलता। केवल न्याय पूर्वक प्राप्त किए हुए धन के दान से ही पुण्य होता है।

'यह आवश्यक नहीं कि बिना बहुत धन के यज्ञ या सत्कर्म हो ही न सकें। प्राचीन समय में महर्षि अगस्त्य ने सब प्राणियों के कल्याण के लिए बारह वर्ष का यज्ञ आरंभ किया था। उस समय इन्द्र ने जल बरसाना बन्द कर दिया। सब ऋषि-मुनि व्याकुल हो गये। यह देख

अगस्त्य जी ने तपोबल से संसार भर की विभूतियों को तथा स्वर्ग के देव, गंधर्व, अप्सरा, सिद्ध आदि को आह्वान कर अपने यज्ञ में बुला लिया। बिना अधिक धन-संग्रह के ही वह यज्ञ बड़े समारोह से सफल हुआ। इन्द्र भी विवश होकर समय-समय पर जल बरसाते रहे।'

'एक बार महर्षि जमदग्नि ने श्राद्ध करने के विचार से काम धेनु को दुहकर एक पात्र में दूध रख दिया। उनकी परीक्षा लेने के लिए धर्म ने क्रोध का रूप रख, उस पात्र में प्रविष्ट हो दूध को पी लिया। विघ्न पड़ने पर भी जमदग्नि ने क्रोध नहीं किया। तब धर्म ने प्रकट होकर उनसे क्षमा मांगी। ऋषि ने कहा कि आप ने पितृगण का अनिष्ट किया है, इस कारण आप उनके पास जाकर क्षमा मांगिये। धर्म पितृगण के पास गये। पितृगण ने व्यवस्था की कि छल करने के कारण धर्म को नेवले के रूप में पृथ्वी पर घूमना पड़े और धर्म, यज्ञ आदि की निन्दा करनी पड़े। इसी शाप के कारण वह नेवला यज्ञ, दान आदि के अवसरों पर जाकर निन्दा करता था। अन्त में धर्मराज युधिष्ठिर के यज्ञ की निन्दा करने के बाद उसका शाप से छुटकारा हो गया।'

(अश्वमेधपर्व समाप्त)

महाभारत

आश्रमवासिक पर्व

अध्याय १-२

पाण्डवों द्वारा धृतराष्ट्र की सेवा, उनके प्रतिश्रद्धा, स्नेह

वैशम्पायनजी बोले—'शत्रुओं का संहारकर युधिष्ठिर ने कुल मिलाकर छत्तीस वर्ष तक राज्य किया। पहले पन्द्रह वर्ष तक वे सभी काम धृतराष्ट्र की आज्ञा लेकर करते रहे। विदुर, सञ्जय, युयुत्सु, धृतराष्ट्र के पास रहते थे। पाण्डव, कुन्ती, द्रौपदी आदि सभी भक्तिभाव से उनकी सेवा-सुश्रूषा करते थे। कृपाचार्य और व्यासदेव प्रतिदिन उन्हें कथाएँ सुनाते थे। धृतराष्ट्र की आज्ञा लेकर ही विदुर नीति के अनुसार प्रबन्ध करते थे। बहुमूल्य वस्त्राभूषण, शैया, मालाएँ, भोजन तथा अन्य प्रकार के उत्तमोत्तम पदार्थ, सुगंधित मदिराएँ, स्वादिष्ट मिठाइयाँ तथा मांस-मछलियाँ एवं तरह-तरह की विचित्र वस्तुएँ धृतराष्ट्र को देकर युधिष्ठिर उन्हें संतुष्ट रखते थे। धृतराष्ट्र प्राणदण्ड पाये हुए अपराधी को क्षमा कर सकते थे। युधिष्ठिर ने घोषणा कर दी थी कि जो महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा

का पालन करेगा वह मेरा मित्र है और जो उनकी आज्ञा का उल्लंघन करेगा वह मेरा शत्रु है, उसे दण्ड दिया जायगा। कोई ऐसी बात न होने पाती थी जिससे धृतराष्ट्र एवं गांधारी को कष्ट हो या उन्हें बुरा लगे। युधिष्ठिर ने इसका प्रबंध कर रक्खा था कि दुर्योधन की बुराइयों की या महाभारत के युद्ध की चर्चा तक न हो। धृतराष्ट्र और गांधारी ने बहुतसा धन व्ययकर अपने पुत्र-पौत्रों का श्राद्ध आदि किया। पाण्डवों को सदा अत्यन्त विनीत, आज्ञाकारी और भक्त देखकर धृतराष्ट्र और गांधारी उन पर पुत्रों से बढ़ कर स्नेह करने लगे। वे प्रतिदिन पाण्डवों की हित-कामना, दीर्घायु, सफलता तथा उन्नति के लिए ब्राह्मणों से स्वस्त्ययन, होम, जप आदि कराते और स्वयं जप आदि करते थे। पाण्डवों के स्नेह के कारण वे अपने पुत्रों को भूल गये थे।

अध्याय ३-१८

धृतराष्ट्र, कुन्ती आदि का प्रजा से सम्मति ले वन-गमन

वैशम्पायनजी बोले—'पर दुर्योधन, दुःशासन आदि के द्वारा किये गये अपमान तथा अपकारों को भीम भूल न सके थे। वे युधिष्ठिर के कारण ऊपर से तो सम्मान दिखलाते किन्तु धृतराष्ट्र को देखते ही उन्हें क्रोध चढ़ आता था। इधर अपने पुत्रों की याद आते ही धृतराष्ट्र को भी उनके मारने

वाले भीम की याद आ जाती थी। इस कारण दोनों के हृदयों में दाह होता रहता। पन्द्रह वर्ष बीत जाने पर एक दिन भीम ने दुर्योधन तथा दुःशासन को मारने की बात चलाई। धृतराष्ट्र ने भी उसे सुन लिया। वे दुखी हो कहने लगे—'मेरे ही अविचार के कारण पाण्डवों को कष्ट सहने पड़े, उन्हें न्यायानुकूल हिस्सा न मिला और महाभारत में कौरव-कुल का संहार हो गया। मेरा हृदय इन बातों को सोच-कर दहल उठता है। मैं अब तपस्या कर उसका प्रायश्चित करना चाहता हूँ। मैं और गांधारी तीसरे-चौथे पहर थोड़ा-सा भोजन करने लगे हैं, कभी व्रत भी कर डालते हैं, भूमि पर सोते हैं और संयम-नियम का पालन करते हैं। हे युधिष्ठिर! मैं वन में जाकर तप करूँगा। तुमने इतनी सेवा की है जितनी एक पुत्र भी नहीं कर सकता। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। किन्तु वृद्धावस्था में पुत्र को राज्य देकर वन में तप के लिए जाना हमारे कुल की रीति है।'

युधिष्ठिर ने व्याकुल होकर कहा—'यदि आपही हमें छोड़कर वन को चले जायँगे तो मेरे जीवन को धिक्कार है। मैं तो कुल-नाश से वैसे ही शोक के मारे मरा जाता हूँ। मुझे राज्य की तनिक भी इच्छा नहीं है। आप युयुत्सु को युवराज बनाकर राज्य करें, मैं वन में जाकर तपस्या द्वारा अपने पापों का प्रायश्चित करूँ। आप उप-

वास तथा दिन में एक बार रूखा-सूखा भोजन करते हैं और भूमि पर सोते हैं यह हम लोगों को आज मालूम हुआ है। आपके कष्ट का कारण मैं हूँ। यदि आप समय पर भोजन न करेंगे तो मैं भी निराहार रहकर प्राण दे दूँगा।'

तब धृतराष्ट्र ने भोजन किया। फिर वे वन जाने के लिए युधिष्ठिर से हठ करने लगे। कुछ समय बाद व्यासजी ने आकर युधिष्ठिर को समझा दिया कि धृतराष्ट्र और गांधारी को वन में जाने देना उत्तम ही होगा। युधिष्ठिर के सहमत हो जाने पर धृतराष्ट्र ने उन्हें राजनीति का उपदेश दिया। फिर कुरु-जांगल की प्रजा को बुलाकर धृतराष्ट्र ने उससे अपने तथा दुर्योधन के द्वारा जान-अनजान में किये गये अपराधों के लिए क्षमा माँगी और पाण्डवों से प्रेम तथा सद्भावपूर्वक व्यवहार करने का अनुरोध किया। प्रजाने उन्हें यह कहकर रोते-रोते वन जाने की अनुमति दी कि आपके तथा दुर्योधन के राज्य में हमें कोई कष्ट नहीं हुआ; साथ ही हम तो धर्मात्मा पाण्डवों को अपना सच्चा हितू और संरक्षक समझते हैं। प्रजा से बिदा लेकर धृतराष्ट्र ने विदुर को भेजकर युधिष्ठिर से मृत पुत्रों के श्राद्ध के लिए धन माँगा। पूर्व अपकारों और कष्टों का स्मरण कर भीम ने कटुवचन कहते हुए धन दिये जाने

का तीव्र विरोध किया। किन्तु युधिष्ठिर तथा अर्जुन ने विदुर से कहा कि आप जितना चाहें धन, रत्न, पदार्थ ले जाकर खज़ाने से धृतराष्ट्र को दे दीजिये। पर भीम की बातों को उनसे न कहियेगा। धृतराष्ट्र ने असंख्य धन, रत्न, वस्त्र, अलंकार, अन्न, गाय, घोड़े, हाथी, दास, दासी आदि देकर विधिपूर्वक कौरवों का श्राद्ध किया। इसके अनन्तर विधिपूर्वक अग्निहोत्र कर धृतराष्ट्र अग्नि को साथ में लिवाकर वन को चले। गांधारी, कुन्ती, विदुर और सञ्जय उनके साथ गये। पहले युयुत्सु तथा कृपाचार्य भी वन जाने को तैयार हुए, किन्तु अन्त में सब के समझाने से वे हस्तिनापुर में रुक गये। पाण्डवों ने तथा द्रौपदी, सुभद्रा आदि ने कुन्ती को अनेक प्रकार से समझाकर वन जाने से रोकना चाहा, पर वे न रुकीं। उन्होंने कहा—'द्रौपदी का अपमान देखकर ही मैंने विदुला की कथा सुनाकर युद्ध के लिए तुम लोगों को उत्साहित किया था। तुम लोगों को दीन, अकर्मण्य देख, मुझे क्षत्रिय-धर्म ने उत्साहित करने की प्रेरणा की थी; क्योंकि तुम्हें निस्तेज होकर जीना शोभा नहीं देता था। अब अपने पराक्रम से तुमने राज्य प्राप्त कर क्षत्रियोचित तेज प्रकट किया है। अब तुम वीरता द्वारा प्राप्त किये हुए इस राज्य का धर्मपूर्वक भोग करो। मेरे कारण वंश-नाश हुआ

है। मैं वन में जाकर तप द्वारा प्रायश्चित करूँगी। तुम अब राजधानी को लौट जाओ। मैं आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हारी बुद्धि बढ़े और मन निर्मल हो।' धृतराष्ट्र आदि ने भी कुन्ती को बहुत समझाया, लौटने के लिए बड़ा आग्रह किया, किन्तु वे न लौटीं। अन्त में द्रौपदी, पाण्डव आदि निराश हो, सबको प्रणामकर लौट आये। उस दिन गंगा किनारे जाकर दूर तपोवन में सब ने हवन, संध्योपासन और विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातःकृत्य कर वे निराहार ही उत्तर की ओर गये। वनवास का पहला दिन बड़ा कष्टकर हुआ।

अध्याय १६-२८

धृतराष्ट्र की दीक्षा-तपस्या, पाण्डवों का वन जाना, विदुर का अन्त

वैशम्पायनजी बोले—'उत्तर की ओर चलकर धृतराष्ट्र सबके साथ कुरुक्षेत्र में राजर्षि शतयूप के आश्रम में गये। राजा शतयूप अपने पुत्र को केकय देश का राज्य देकर तप करने लगे थे। वहाँ से धृतराष्ट्र व्यासदेव के पास गये। व्यासदेव ने उन्हें विधिवत् दीक्षा दी। फिर कुरुक्षेत्र लौटकर वे विधिपूर्वक तपस्या करने लगे। गांधारी, विदुर, सञ्जय तथा कुन्ती भी वल्कल वस्त्र धारणकर तप

करने लगीं। कुछ समय बाद महर्षि व्यास, देवल, पर्वत, नारद आदि ने आकर धृतराष्ट्र को बतलाया कि उस स्थान पर शैलालय, पृषघ्र, (नर्मदा के पति) पुरुकुत्स, शशलोमा आदि पराक्रमी राजाओं ने तपस्या द्वारा सिद्धि प्राप्त की थी। फिर यह बतलाकर कि तीन वर्ष बाद धृतराष्ट्र तप के द्वारा दिव्यलोक को प्राप्त करेंगे, नारद आदि उन्हें आशीर्वाद देकर वहाँ से चले गये।

'इधर धृतराष्ट्र, कुन्ती आदि के वियोग में पाण्डवों तथा उनकी रानियों आदि को बड़ी पीड़ा होती थी। कुछ समय बाद द्रौपदी आदि को लेकर पाण्डव धृतराष्ट्र, कुन्ती आदि को देखने के लिए गये। पाण्डवों को देखने के लिए अनेक तपस्वी भी आये। सबके आग्रहपूर्वक पूछने पर सञ्जय ने पाण्डवों का परिचय देकर कहा—'ये कमलनयनी, श्यामवर्णा महारानी द्रौपदी हैं। ये चन्द्रमा के समान रूपवती, तप्तकांचन के समान कान्तिवाली सुभद्रा, उलूपी और चित्रांगदा हैं, ये तीनों अर्जुन की पत्नियाँ हैं। ये नीले कमल की आभावाली (काली) भीमसेन की पत्नी हैं। ये चम्पक वर्ण वाली जरासंघ की कन्या और सहदेव की भार्या हैं। ये अलौकिक सुन्दरी करेणुमती नकुल की प्रिया हैं।' पाण्डवों तथा कुरुकुल की स्त्रियों का परिचय पाकर सबको आशीर्वाद देते हुए तपस्वी अपने-

अपने आश्रमों को चले गये। इसके अनन्तर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से राज्य के संबंध में अनेकानेक प्रश्न पूछे। सबकी कुशल बतलाकर युधिष्ठिर ने विदुर के संबंध में पूछा। धृतराष्ट्र ने बतलाया कि आगे घोर वन में निराहार रहकर वे कठोर तप कर रहे हैं। विदुर से मिलने के लिए युधिष्ठिर वन में गये। वहाँ विदुर एक वृक्ष के सहारे खड़े देख पड़े। उनके शरीर में हड्डी-चमड़ा भर रह गया था। युधिष्ठिर को देख विदुर ने अपने शरीर को छोड़कर उनके शरीर में प्रवेश किया। युधिष्ठिर को अपने शरीर और आत्मा में अधिक बल मालूम पड़ने लगा। उधर विदुर का शरीर प्राणरहित हो गया। युधिष्ठिर ने उनके शव का दाह-कर्म करना चाहा। किन्तु यह आकाशवाणी सुन पड़ी कि महात्मा विदुर संन्यासी हो गये थे, इनकी दाह-क्रिया मत करो। तब युधिष्ठिर ने आश्रम में लौटकर यह बात सबको बतलाई। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस दिन धृतराष्ट्र के दिये फल-जल का आहार लेकर पाण्डव आदि उसी आश्रम में सो गये। दूसरे दिन नित्य-कृत्य कर युधिष्ठिर मुनियों के आश्रमों के दर्शन करने गये। उन्होंने तपस्वियों को कलसे, मृगचर्म, मालाएँ, आसन, कमण्डलु, बर्तन आदि दिये। फिर वे धृतराष्ट्र के पास लौट आये। इसी बीच में व्यासजी वहाँ आये। सबने उनका

आदर-सत्कार किया। व्यासजी ने आसन पर बैठकर कुशल-समाचार पूछा। फिर कहा—'धर्मराज शाप के कारण विदुर के रूप में पृथ्वी पर आये थे। अब वे युधिष्ठिर के शरीर में प्रविष्ट हुए हैं। अब मैं तुम्हारे कल्याण के लिए योगिक चमत्कार दिखलाऊँगा और तुम्हारी इच्छा पूरी कर दूँगा।'

पुत्र-दर्शन पर्व

अध्याय २६-३६

दुर्योधन, कर्ण आदि का तथा परीक्षित का प्रकट होना, धृतराष्ट्र का स्वर्गवास

वैशम्पायनजी बोले—'एक मास तक पाण्डव वहीं आश्रम में रहे। एक महीना बाद नारद, पर्वत, देवल आदि महर्षियों के साथ व्यासजी वहाँ आये। कुन्ती ने रो-रोकर कर्ण के जन्म की सारी सच्ची गुप्त बातें बतलाईं और कर्ण को देखना चाहा। धृतराष्ट्र और गांधारी ने भी अपने पुत्रों आदि को देखना चाहा। व्यासजी ने गंगा के जल में प्रवेश कर महाभारत में मरे हुए व्यक्तियों का स्मरण किया। देखते-देखते युद्ध में मरे हुए पाण्डव-कौरव वीर गंगाजी की धारा से निकल-निकल अपने-अपने पुत्र, स्त्री, भाई आदि से मिलने और बातें करने लगे। इसी प्रकार मिलते-मिलते सारी रात बीत गई।

प्रातःकाल व्यासजी की आज्ञा लेकर सब अपने-अपने लोकों को चले गये। फिर व्यासजी के कहने से जिन विधवा स्त्रियों ने गंगा के जल में कूद-कूदकर अपने प्राण दे दिये थे, वे दिव्य रूप धारणकर अपने पतियों के पास विभिन्न लोकों को चली गई।'

जनमेजय ने पूछा कि दुर्योधन आदि संग्राम में शरीर त्यागकर स्वर्ग को गये थे, वे फिर अपने-अपने शरीर धारण कर व्यासजी के बुलाने से कैसे आ गये? वैशम्पायनजी बोले—'मनुष्य को अपने कर्मों के अनुसार उसी प्रकार के शरीर से उनके फल भोगने पड़ते हैं। आत्मा तथा महाभूतों का कभी नाश नहीं होता। शरीर महाभूतों से बना है। वह अनित्य कैसे हो सकता है। आत्मा और शरीर दोनों अविनाशी हैं। इसी कारण दुर्योधन आदि व्यासदेव के प्रभाव से फिर आ सके थे और धृतराष्ट्र दिव्य दृष्टि प्राप्तकर उन्हें देख सके थे।'

सौति ने शौनकादि ऋषियों से कहा—'वैशम्पायन की बात सुनकर जनमेजय ने व्यासदेव से प्रार्थना की कि आप मुझे मेरे पिता महाराज परीक्षित के दर्शन करा दीजिये। व्यासजी ने मंत्रियों-सहित राजा परीक्षित को तथा ऋषि शमीक एवं उनके पुत्र शृंगी ऋषि को परलोक से बुला दिया। जनमेजय ने अपने पिता को यज्ञ के अंत

का स्नान कराकर अपने प्रयत्न को सफल माना।'

वैशम्पायन जी बोले--'दुर्योधन आदि के अन्तर्धान हो जाने के बाद व्यास जी की आज्ञा से सब गंगा-तट से आश्रम को लौट गये। फिर बहुत समझाने पर युधिष्ठिर सबको लेकर हस्तिनापुर को लौट गये। उनके तपोवन से लौटने के दो वर्ष बाद नारद जी ने आकर समाचार दिया कि यज्ञ-हवन करने के बाद एक दिन धृतराष्ट्र तथा ऋषियों ने अग्नि को वन में छोड़ दिया था। कुछ समय बाद सारा वन जलने लगा। भागने का कोई उपाय न देख धृतराष्ट्र, गांधारी, कुन्ती ने समाधि लगाकर प्राण त्याग दिये। उनके अनुरोध में सञ्जय किसी तरह से प्राण बचाकर हिमालय पर चले गये। उनसे ये समाचार सबको मिले। इस समाचार से पाण्डवों को बड़ा शोक हुआ। अन्त में नारद आदि के समझाने से उन्होंने सबकी विधिवत् और्ध्वदेहिक क्रिया की और बहुत सा दान दिया। यह दुःख युधिष्ठिर को सदा बना रहा—महाभारत के बाद पंद्रह वर्ष हस्तिनापुर में और तीन वर्ष वन में बिता-कर धृतराष्ट्र स्वर्ग को चले गये।

(आश्रमवासिक पर्व समाप्त)

महाभारत

मौसल पर्व

अध्याय १-३

हँसी के कारण ऋषियों का शाप, यदुवंश का नाश

वैशम्पायनजी बोले—'महाभारत के छत्तीस वर्ष बाद युधिष्ठिर को बहुत ही अशुभसूचक उत्पात देख पड़ने लगे। इधर द्वारका के यादवों में बहुत अनाचार फैल गया। इसी बीच एक बार महर्षि विश्वामित्र, कण्व, नारद आदि द्वारका में आये। सारण आदि यदुवंशी महारथी हँसी के लिए साम्ब को स्त्री के वेश में महर्षियों के पास ले गये और उन्होंने उनसे पूछा कि बभ्रु की इस स्त्री के गर्भ से क्या उत्पन्न होगा। ऋषियों ने उनके उपहासपूर्ण छल से कुपित होकर कहा कि यह स्त्री नहीं है, साम्ब है, इसके लोहे का एक मूसल पैदा होगा जिससे श्रीकृष्ण-बलदेव को छोड़कर और सारे यदुवंश का संहार हो जायगा।

'श्रीकृष्णजी ऋषियों के वचनों को अवश्यंभावी समझकर चुप हो रहे। दूसरे दिन साम्ब से एक मूसल उत्पन्न

हुआ। यादवराज ने उसे चूर्ण कराकर समुद्र में फिकवा दिया। फिर नगर में यह घोषणा करा दी गई कि आज से कोई मदिरा न बनावे न बेंचे, जो मदिरा बनाये या बेंचेगा उसे प्राणदण्ड दिया जायगा।

'शाप के बाद से भयंकर अशकुन और घोर उत्पात होने लगे। कुछ समय बाद तेरह दिन का कृष्णपक्ष पड़ा तथा त्रयोदशी और अमावस्या का संयोग हुआ। श्रीकृष्ण जी ने कहा कि अब सती गांधारी, महर्षि आदि के शापों के पूरे होने का समय उपस्थित देख पड़ता है। इसी बीच में श्रीकृष्ण का दिव्य, अमोघ सुदर्शन-चक्र सहसा आकाश में जाकर विलीन हो गया। उनके दिव्य रथ को उनके अलौकिक घोड़े समुद्र के ऊपर लेजाकर अदृश्य हो गये। इसी प्रकार के बहुत से उत्पात हुए। आपदाओं से बचने के विचार से श्रीकृष्णजी की सलाह से यादवों ने प्रभास-क्षेत्र की यात्रा की। वे अलग-अलग घरों में रहकर तीर्थ और स्वेच्छापूर्वक मद्यमांस का सेवन करने लगे। इसी बीच में महात्मा उद्धव प्रभास क्षेत्र में आये और अपने सगे-संबंधियों से मिलकर अन्यत्र चले गये। यादव-संहार निश्चित समझ श्रीकृष्ण ने उनका वहाँ से हट जाना उचित समझा।

'कुछ समय बाद मदिरा के नशे में कृतवर्मा का उपहास करते हुए सात्यकि ने कहा कि सोते हुए बालकों और

सैनिकों को मारकर तुमने बड़ा जघन्य कार्य किया है, तुमसे अधिक नीच दूसरा नहीं हो सकता। कृतवर्मा ने उत्तर दिया कि युद्ध छोड़ प्रायोपवेशन द्वारा प्राणों को त्यागने के लिए तैयार, भुजाओं रहित भूरिश्रवा को धोखे से मारकर सात्यकि ने घोर अन्याय किया है। इसी प्रकार आक्षेप करते-करते दोनों ओर के वीरों में युद्ध की नौबत आगई। सात्यकि ने कृतवर्मा का सर काट डाला। कृतवर्मा के जातिवाले भोजों और अंधकों ने घेरकर सात्यकि को मारना प्रारंभ किया। प्रद्युम्न ने दौड़कर सात्यकि की सहायता की। दोनों ने मिलकर हज़ारों भोजों-अंधकों को काट डाला। किन्तु अन्त में दोनों मारे गये। सात्यकि और प्रद्युम्न को मरते देख श्रीकृष्ण जो समुद्रतट पर खड़े सरकंडों (एरका-घास) को उखाड़कर उन्हीं से भोज और अंधक वंश के वीरों का संहार करने लगे। एरका ने मूसल बनकर यदुवंशियों का संहार कर डाला। अस्त्र-शस्त्र के टूट जाने पर सभी वीर एरका उखाड़-उखाड़कर एक दूसरे को मारने लगे। ऋषियों के शाप के कारण एरका ने मूसल बनकर देखते-देखते सब यादवों का संहार कर डाला। जो तीक्ष्ण-से-तीक्ष्ण और भयंकर-से-भयंकर अस्त्र-शस्त्र की मार से कभी न मरे थे वे काल की प्रेरणा से एरका की चोट से छिन्न-भिन्न होकर मर गये। सब के नष्ट हो जाने के बाद

बभ्रु और दारुक (सारथी) ने श्रीकृष्णजी से कहा कि अब बचे हुए हम तीनों को बलदेवजी के पास चलना चाहिए।

अध्याय ४

श्रीकृष्ण और बलदेव का दिव्यलोक को प्रस्थान

वैशम्पायनजी बोले—'श्रीकृष्णजी बलदेवजी के पास गये। वे वन में विचार-मग्न बैठे थे। श्रीकृष्णजी ने उनकी दशा देखकर दारुक को यदुवंश-नाश का संदेश लेकर अर्जुन के पास हस्तिनापुर भेजा। फिर उन्होंने स्त्रियों-बालकों की रक्षा के लिए बभ्रु को भेजना चाहा। किन्तु एक किरात के मुद्गर ने मूसल का रूप धारणकर श्रीकृष्णजीके सामने ही बभ्रु का संहार कर डाला। यह देख श्रीकृष्णजी बलदेवजी से यह कहकर द्वारका को गये कि जबतक मैं न लौटूँ, आप यहीं मेरी प्रतीक्षा करें। द्वारका में पहुँचकर श्रीकृष्णजी ने अपने पिता वसुदेवजी से कहा—'जबतक अर्जुन न आजायँ, आप यहीं रहकर स्त्रियों की रक्षा कीजिये। पहले मैंने कुरुक्षेत्र में कौरवों तथा अन्यान्य नरेशों का विनाश देखा था, अब प्रभास-क्षेत्र में मुझे यदुवंश का संहार देखना पड़ा। अब मैं वन में जाकर बलदेवजी के साथ तप करूँगा।' यह कह तथा

यदुवंश की स्त्रियों को समझाकर वे वहाँ से चले गये।

'वन में जाकर उन्होंने देखा कि बलदेवजी समाधि लगाकर बैठे हैं और उनके मुख से सफ़ेद रंग का एक नाग निकल रहा है। देखते-देखते वह नाग निकलकर समुद्र की ओर गया। वहाँ वरुणदेव, देवगण आदि ने उसका भक्ति-भाव से स्वागत किया। इधर बलदेवजी का शरीर चेष्टारहित हो गया। बलदेवजी के शरीर-त्याग से श्रीकृष्ण जी व्याकुल होकर वन में घूमने लगे। फिर गांधारी आदि के शापों को यादकर वे योग का अवलम्बन ले भूमि पर लेट गये। इसी अवस्था में दूर से उनके पैर के तलवे को मृग का मुख समझ जरा नामक व्याध ने बाण मारा। उनका तलवा घायल हो गया। पास आने पर श्रीकृष्णजी को देख व्याध बहुत भयभीत और दुखी हुआ। श्रीकृष्णजी ने उसे समझाकर दिव्यलोक की यात्रा की।

अध्याय ५-८

अर्जुन का द्वारका से धन तथा स्त्रियों को इंद्रप्रस्थ लाना, डाका

वैशम्पायनजी बोले—'समाचार पाकर शोकमग्न अर्जुन ने द्वारका जा, वसुदेवजी को तथा यदुवंश की स्त्रियों को समझा-बुझाकर शान्त करना चाहा। शोक के

कारण वसुदेव ने प्राण त्याग दिये। देवकी, भद्रा, रोहिणी और मदिरा नामक उनकी चार रानियाँ उनके साथ सती हो गईं। फिर अर्जुन ने प्रभास-क्षेत्र में जाकर श्रीकृष्ण, बलदेव तथा अन्यान्य यदुवंशियों के शवों का विधिवत् दाह कराया। इन सबसे निपटने के बाद यदुवंश के मंत्रियों से सलाहकर अर्जुन धन, रत्न, स्त्री, बालकों को लेकर हस्तिनापुर के लिए रवाना हो गये। उनके बाहर जाते ही द्वारका समुद्र में डूब गई।

'पञ्चनद प्रदेश में पहुँचने पर आभीर डाकुओं ने धन और स्त्रियों को छीनने के लिए उन पर आक्रमण किया। अर्जुन ने अपने गांडीव धनुष पर डोरी चढ़ानी चाही, पर वे धनुष को झुका तक न सके। बड़ी कठिनाई से किसी तरह वे डोरी चढ़ा सके। किन्तु उन्हें अपने दिव्य अस्त्र बिलकुल भूल गये। तब वे अपने तरकस से निकालकर बाण चलाने लगे। पर उन बाणों से भी डाकुओं को कुछ हानि न पहुँची। इधर उनके अक्षय तरकस के तीर देखते-देखते चुक गये। डाकुओं ने वृद्ध रक्षकों को मारकर धन तथा स्त्रियों का हरण किया। अनेक स्त्रियाँ अपनी खुशी से उनके साथ चली गईं। किसी तरह से बची हुई थोड़ी-सी धन-राशि एवं बालकों, स्त्रियों, आदि को लेकर अर्जुन बड़ी कठिनाई से कुरुक्षेत्र में पहुँचे। वहाँ उन्होंने हार्दिक्य के पुत्र

एवं भोजवंश की स्त्रियों को मार्तिकावत नगर में, और कुछ को सात्यकि के पुत्र के साथ सत्यवती नगरी में रख दिया। फिर श्रीकृष्णजी के पौत्र वज्र को इंद्रप्रस्थ का राज्य दे दिया। श्रीकृष्णजी की रुक्मिणी, गांधारी, शैब्या, हेमवती और जामवंती नामक पटरानियाँ अग्नि में प्रवेश कर गईं, और सत्यभामा आदि वन में तप करने के लिए चली गईं। अक्रूर की स्त्रियाँ संन्यासिनी हो गईं।

'वज्र को हस्तिनापुर का राज्य दे, अर्जुन शोकमग्न हो व्यासदेव के पास गये। उन्हें समझाते हुए व्यासजी ने कहा—'तुम यादवों के लिए शोक न करो। श्रीकृष्ण जी परम पुरुष थे। वे सृष्टि के क्रम को भी बदल सकते थे, किन्तु ऋषियों के शाप को पूरा करने तथा पृथ्वी का भार उतारने के विचार से उन्होंने यदुवंश के विनाश को नहीं रोका। तुम लोग भी देवगण का कार्य कर चुके, इसी कारण तुम्हारे दिव्य अस्त्र तुम्हारे पास से चले गये हैं। काल की गति को कोई नहीं रोक सकता। काल ही के कारण यह सब हो रहा है। तुम शोक छोड़ दो।'

व्यासदेव के वचनों से अर्जुन को शान्ति मिली। हस्तिनापुर जाकर उन्होंने युधिष्ठिर को सब समाचार सुनाये।

(मौसल पर्व समाप्त)

महाभारत

महाप्रस्थानिक पर्व

अध्याय १

परीक्षित तथा वज्र को राज्य दे युधिष्ठिर का प्रस्थान

जनमेजय के पूछने पर वैशम्पायनजी ने कहा—'श्रीकृष्ण जी के स्वर्गारोहण तथा यादवों के विनाश के समाचार सुनकर युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि अब मैं अपना शरीर छोड़ना चाहता हूँ, तुम अपने कर्तव्य का निश्चय कर लो। द्रौपदी सहित चारों भाई भी शरीर छोड़ने के लिए तैयार हो गये। युधिष्ठिर ने अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को हस्तिनापुर का और श्रीकृष्णजी के पोते वज्र को इन्द्रप्रस्थ का राज्य दे दिया और सुभद्रा, कृपाचार्य और युयुत्सु को संरक्षक बना दिया। फिर उन्होंने श्रीकृष्णजी का तथा यादवों का श्राद्ध आदि किया। अन्त में प्रजा से सम्मति ले, राजसी वस्त्राभूषण छोड़, वल्कल वसन पहन, उत्सर्गेष्टि यज्ञकर, अग्नि को जल में स्थापित कर द्रौपदी-सहित पांडवों ने वन के लिए प्रस्थान किया। कुछ दूर उनके साथ जाकर

प्रजा नगर में लौट आई। युधिष्ठिर सब के आगे चले। उनके पीछे थे क्रम से भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी और वन का साथी कुत्ता। पाण्डव अनेक देशों, पर्वतों, नदियों आदि को पारकर उदयाचल के समीप जा पहुँचे। वहाँ अग्निदेव के कहने से अर्जुन ने अपने गांडीव धनुष और दो अक्षय तरकसों को समुद्र में डालकर वरुणदेव को लौटा दिया। अग्नि के अन्तर्धान हो जाने पर पाण्डव समुद्र किनारे-किनारे दक्षिण की ओर, फिर दक्षिण-पश्चिम तथा पश्चिम की ओर गये और तब उन्होंने समुद्र में डूबी हुई द्वारका को देखा। अन्त में वे उत्तर की ओर आगे बढ़े।

अध्याय २-३

द्रौपदी, भीम आदि का हिमालय में गिरना, कुत्ते के रूप में धर्म, युधिष्ठिर का सदेह स्वर्ग जाना

वैशम्पायनजी बोले—'उत्तर की ओर हिमालय पर चढ़ते-चढ़ते पाण्डवों को बालू का महासागर मिला। उसे पार करने पर उन्होंने सुमेरु पर्वत को देखा। चलते-चलते अकस्मात् द्रौपदी गिर पड़ीं। भीम ने कहा कि द्रौपदी ने कोई अधर्म नहीं किया, फिर ये कैसे गिरीं? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि ये अर्जुन को अधिक प्यार

करती थीं, यह इनका पक्षपात था। द्रौपदी की ओर बिना देखे ही वे आगे बढ़ते गये। कुछ समय बाद सहदेव गिर पड़े। उनकी ओर बिना देखे ही आगे बढ़ते-बढ़ते युधिष्ठिर ने भीम के पूछने पर कहा कि सहदेव अपने समान किसी को बुद्धिमान नहीं समझते थे, यही अहंकार इनके नाश का कारण हुआ है। कुछ समय बाद नकुल गिर गये। उनकी ओर बिना देखे ही चलते-चलते युधिष्ठिर ने कहा कि इन्हें अपनी सुन्दरता का अहंकार था। कुछ समय बाद अर्जुन गिर पड़े। उनकी ओर बिना देखे ही आगे बढ़ते हुए युधिष्ठिर ने कहा कि इन्हें अपने पराक्रम का अभिमान था। कुछ समय बाद भीम भी गिर पड़े। उन्हें उसी प्रकार छोड़कर यह कहते हुए युधिष्ठिर आगे बढ़ते गये कि तुम्हें अपनी वीरता का अहंकार था और तुम अपने पेट के आगे और किसी का ख़्याल नहीं कर सकते थे।

'कुछ समय बाद देवराज इंद्र रथ लेकर आये और युधिष्ठिर से कहा कि तुम मेरे साथ इसी शरीर से स्वर्ग में चलो। युधिष्ठिर ने कहा कि मैं द्रौपदी और अपने भाइयों के बिना स्वर्ग में न जाऊँगा। इंद्र ने कहा कि वे सब पहले ही स्वर्ग में पहुँच चुके हैं। तब युधिष्ठिर ने कहा कि मेरा भक्त यह कुत्ता स्वर्ग जाय तो मैं भी स्वर्ग चलूँ; मैं अपने भक्त को छोड़कर अकेला स्वर्ग नहीं जा सकता।

इंद्र ने बहुत समझाया कि कुत्ता स्वर्ग में नहीं जा सकता, इसके जाने से दान-पुण्य-तप का फल छिन जायगा, पर युधिष्ठिर कुत्ते को छोड़कर स्वर्ग जाने के लिए तैयार न हुए। इन्द्र ने पूछा कि आपने भीम आदि को क्यों छोड़ दिया था? उन्होंने कहा कि मैंने मरने पर ही अपने भाइयों का तथा द्रौपदी का साथ छोड़ा था, जीते-जी मैं अपने साथी को नहीं छोड़ सकता।

'युधिष्ठिर की दृढ़ता देख कुत्ते के शरीर से धर्मराज ने प्रकट होकर कहा कि मैंने कुत्ते का रूप रखकर तुम्हारी परीक्षा ली थी, तुम अपने धर्म पर अटल रहे,तुम इसी शरीर से स्वर्ग जाओ, दूसरा कोई सदेह स्वर्ग नहीं गया है। दिग्पालों, देवगण, ब्रह्मर्षियों के साथ युधिष्ठिर स्वर्ग में गये। वहाँ अपने भाइयों आदि को न देख युधिष्ठिर ने कहा कि मैं उसी स्थान पर जाना चाहता हूँ जिस स्थान पर मेरे भाई, द्रौपदी आदि हैं। इंद्र तथा देवगण ने उन्हें बहुत समझाया कि आपने अपने पुण्य तथा तप से जो दिव्य लोक प्राप्त किये हैं, उनमें आप के भाई आदि नहीं आ सकते, आप स्वर्ग में आकर अब मानवी मोह-ममता को छोड़ दीजिये, किन्तु युधिष्ठिर अपनी हठ पर दृढ़ रहे।

महाप्रस्थानिक पर्व समाप्त

महाभारत

स्वर्गारोहण पर्व

अध्याय १-२

युधिष्ठिर का स्वर्ग से भाइयों के पास नरक में जाना

जनमेजय के प्रश्न करने पर वैशम्पायनजी बोले—'स्वर्ग में युधिष्ठिर ने देवगण के साथ दुर्योधन को विहार करते देखकर कहा कि इसी दुष्ट के कारण हमें अपमान और संकट सहना तथा अपने सगे-सम्बंधियों का संहार करना पड़ा, इससे मैं इसके साथ स्वर्ग में भी नहीं रहना चाहता। देवर्षि नारद ने युधिष्ठिर को समझाते हुए कहा—'महा-भय उपस्थित होने पर भी निर्भय रहकर तथा युद्ध में वीर-गति प्राप्तकर दुर्योधन ने स्वर्ग प्राप्त किया है। सभी देवता उनका सम्मान करते हैं। अब तुम उनसे वैर छोड़ दो। स्वर्ग में पुराना वैर-विरोध ठीक नहीं।' किन्तु युधिष्ठिर अपने भाइयों, कर्ण तथा अन्याय हित-मित्रों के पास जाने का दृढ़तापूर्वक आग्रह करते रहे।

'उनको अपने विचार पर दृढ़ देख देवगण ने एक

दूत द्वारा उन्हें उनके भाइयों के पास भेजा। वह मार्ग घोर अंधकार, बदबू, मांस-रक्त की कीचड़, मच्छरों, दंशों, हिंसक पशुओं, लाशों, हड्डियों, कृमि-कीटों, नाना प्रकार के भयावने प्रेतों से भरा हुआ था। चारों ओर आग जल रही थी। नाना स्थानों पर खौलते हुए पानी की नदियाँ थीं, तेज धारवाली तलवारों तथा कांटेदार वृक्षों के वन, तेल के उबलते हुए कड़ाह, जलती हुई बालू के मैदान और दहकती हुई चट्टानों के ढेर थे। ऐसे दुर्गम मार्ग को देख युधिष्ठिर ने घबराकर पूछा कि अभी कितनी दूर और चलना होगा। देवदूत ने कहा कि आप जहाँ से चाहें लौट सकते हैं। युधिष्ठिर सिहरकर वहीं से लौट पड़े। उनके लौटते ही चारों ओर से यह करुण पुकार आने लगी—'हे धर्मराज! आप कुछ देर यहाँ और ठहर जाइये। आपकी हमपर बड़ी कृपा होगी। आपके आने से हमारी यातनाएं कम होगई हैं। सुगंधित हवा के चलने से हम सुखी हुए हैं।' युधिष्ठिर ने आश्चर्य-चकित हो वहाँ ठहरकर पूछा—'आप कौन हैं?' चारों ओर से आवाज़ आने लगी—'मैं कर्ण हूँ, मैं भीम हूँ, मैं अर्जुन हूँ, मैं द्रौपदी हूँ।'...युधिष्ठिर और भी अधिक विस्मित हो सोचने लगे कि किस पाप के कारण ये लोग ऐसे घोर नरक में गिरकर इतनी यातनाएं भोग रहे हैं? शोक से व्याकुल हो युधिष्ठिर ने धर्म और

देवताओं की निन्दा करते हुए देवदूत से कहा कि तुम जाकर देवगण से कह दो कि युधिष्ठिर अब अपने भाइयों तथा स्वजनों के पास ही रहेंगे। देवदूत के जाने के कुछ ही समय बाद वहाँ धर्मराज, इन्द्र तथा अन्यान्य देवगण आ पहुँचे। उनके आते ही अंधकार, खौलती नदियाँ, बालू की चट्टानें, यातनाएँ, बदबू आदि सभी दूर हो गईं। शीतल मन्द सुगंध पवन चलने लगी।'

अध्याय ३-६

युधिष्ठिर का स्वर्ग को जाना, अर्जुन आदि का दिव्य रूप वर्णन

इन्द्र ने युधिष्ठिर से कहा—'धर्मराज युधिष्ठिर! आपने अश्वत्थामा के मरने की झूठी खबर देकर द्रोणाचार्य से छल किया था। उसी के कारण आप को नरक की इतनी यातना भोगनी पड़ी। द्रौपदी, भीम आदि ने भी जो छल आदि किये थे उनके लिए उन्हें नरक की यातनाएँ भोगनी पड़ी थीं। अब वे सब पूरी हो चुकीं। अब वे स्वर्ग को गये हैं। आप भी चलकर अब अक्षय दिव्य लोकों के सुख भोगिये। राजा को तो अवश्य ही नरक में गिरना पड़ता है। जिनका पुण्य कम रहता है उन्हें पहले स्वर्ग-सुख मिलता है, फिर बाद में नरक में जाना पड़ता है। जिनका पाप कम होता है उनको पहले नरक की यातनाएँ

भोगनी पड़ती हैं, फिर बाद में उन्हें दिव्य लोकों की प्राप्ति होती है। आपके थोड़े से पाप का फल मिला चुका। अब आप मंदाकिनी गंगा में स्नानकर अपने मानुषी भावों को त्याग, स्वर्ग में चलिये। धर्मराज ने कहा कि मैंने तीसरी बार तुम्हारी परीक्षा ली और इस बार भी तुम धर्म पर दृढ़ रहे।

युधिष्ठिर ने मंदाकिनी में स्नान किया। उनको दिव्य शरीर प्राप्त हो गया। ईर्ष्या-द्वेष, शत्रुताका भाव आदि सभी दूर हो गये। वे दिव्य लोक में गये। वहाँ श्रीकृष्णजी चतुर्भुजी ब्रह्म रूप धारण किये हुए थे। कर्ण आदित्यों के समान तेजोमय रूप धारण किये, भीम प्रबल वायुमय रूप धारण किये, नकुल-सहदेव अश्विनीकुमारों का अलौकिक सुन्दर रूप धारण किये, द्रौपदी लक्ष्मी के प्रकाशमान रूप को धारण किये, अभिमन्यु चन्द्रमा के नयनाभिराम रूप को धारण किये देख पड़े। भीष्म, द्रोण, अर्जुन, सात्यकि आदि भी अपने-अपने अनुरूप शरीरों में देख पड़े। तब युधिष्ठिर प्रसन्न हो स्वर्ग-सुख भोगने लगे। स्वर्ग-सुख भोगने के अनन्तर यथासमय भीष्म वसुओं में, द्रोण बृहस्पति में, कृतवर्मा मरुद्गण में, प्रद्युम्न सनत्कुमारों में, विराट, द्रुपद, भूरिश्रवा आदि विश्वेदेवगण में, अभिमन्यु (इन्द्र के पुत्र वर्चा) चन्द्रदेव में, शकुनि द्वापर में, धृष्टद्युम्न अग्निदेव में, युधिष्ठिर और विदुर धर्मराज में, बलदेवजी

अनन्त शेषनाग में, वासुदेव कृष्ण नारायण में प्रविष्ट हो गये। अन्यान्य पाण्डव-कौरव भी विभिन्न देवगण के शरीरों में प्रविष्ट हो गये अथवा अनेकानेक लोकों को चले गये।'

इतनी कथा सुनाकर सौति ने नैमिषारण्य-निवासी शौनक आदि अठारह हज़ार ऋषियों से कहा—'भगवन्! इस प्रकार सर्प-यज्ञ के अवसर पर महाराज जनमेजय ने महाभारत की दिव्य कथा को सुना। यथासमय सर्प-यज्ञ का कार्य समाप्त कर समस्त ऋषि-मुनि राजा से पूजा-दक्षिणा पाकर अपने-अपने स्थानों को चले गये। आस्तीक भी अपनी माता के पक्षवाले नागों की रक्षाकर, प्रसन्न हो, नाग-लोक को चले गये। महाराज जनमेजय सर्प-यज्ञ के अवसर पर वैशम्पायनजी द्वारा महाभारत के इतिहास को [illegible] तक्षशिला से हस्तिनापुर को लौट आये और धर्मपू[illegible] करने लगे।

इस पंचमवेद रूपी महाभारत की [illegible] को जो श्रद्धा-भक्ति के साथ सुनता है, उसके सब पाप दूर हो जाते हैं, उसे सौ अश्वमेध और अन्याय यज्ञों का, हज़ारों गोदानों का, कठोर तप का फल प्राप्त होता है। इस इतिहास के सुनने के बाद दस हज़ार आहुतियाँ देकर हवन करना चाहिए।

स्वर्गारोहणपर्व समाप्त

[illegible]भारत समाप्त